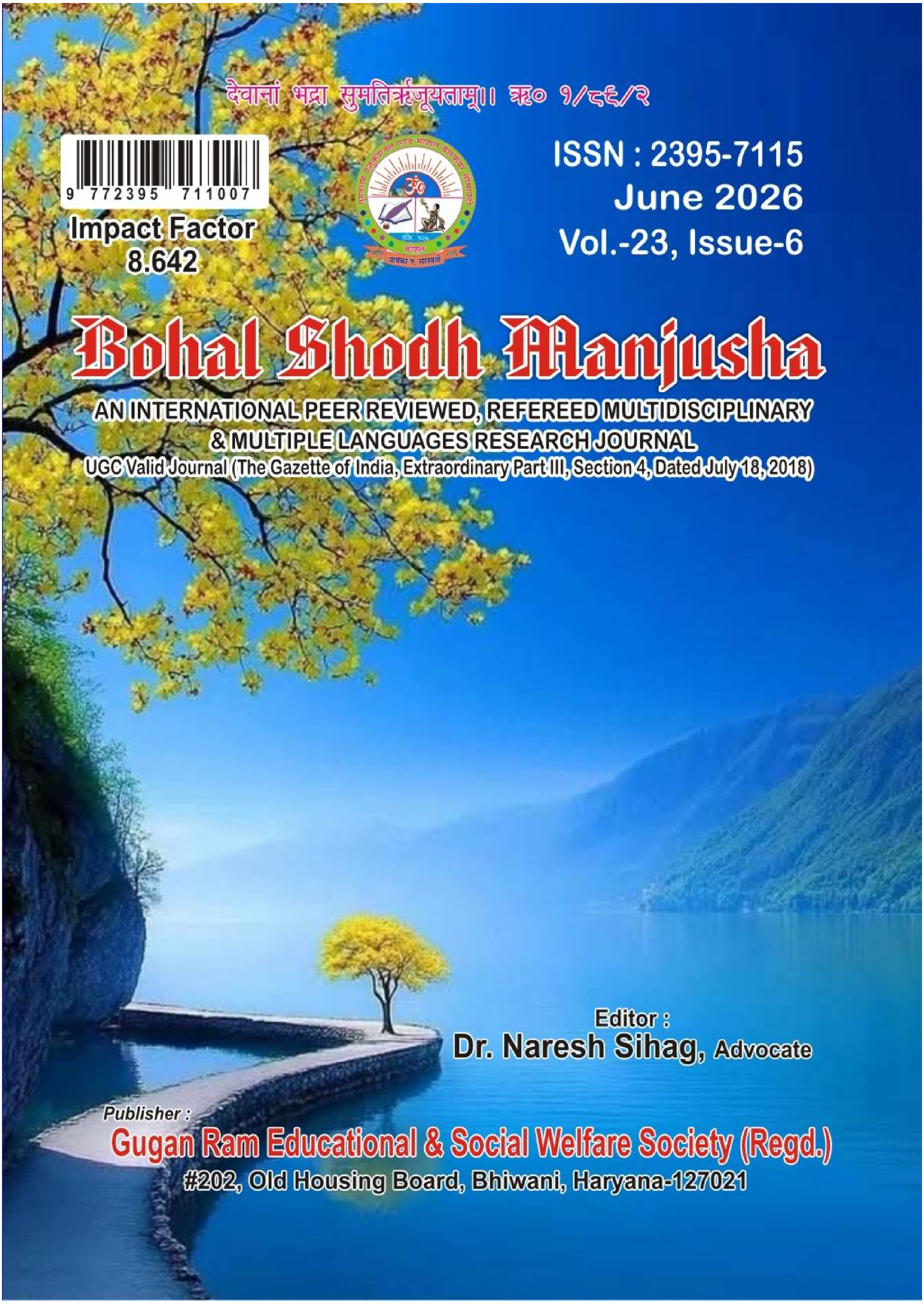

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
June 2026
Vol.-23, Issue-6

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 23 ISSUE-6, Part-2 (जून 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – जून 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–09
2.	मध्य प्रदेश में मतदान व्यवहार का अध्ययन	अंजुलि शुक्ला, डॉ. एस.पी. शुक्ला	10–16
3.	ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिम्बाले के कथा साहित्य में दलित चेतना	रीतू साकेत, डॉ. प्रदीप विश्वकर्मा	17–19
4.	महिला उद्यमियों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास में योगदान (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)	शालिनी श्रीवास्तव, डॉ. मनीष शुक्ला	20–28
5.	**Birsa Munda and the Politics of Land, Identity, and Self-Governance**	**Pooja**	**29-37**
6.	प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी	डॉ सुजाता फातरपेकर	38–40
7.	महिला इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियाँ : परंपरा से समकालीन विमर्श तक	डॉ. स्वर्ण मणि	41–49
8.	**School Libraries as Catalysts for Quality Education : Analysing Their Role in Achieving SDG 4**	**Hanuman Raju Gunturi**	**50-64**
9.	क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) रोगियों में पोषण एवं जीवनशैली प्रबंधन का नैदानिक एवं सामाजिक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	दिव्या सिंह, डॉ० मोनिका गुप्ता, डॉ० शिखा खरे	65–75
10.	'मराठी स्त्रीवादी कांदबरीतील मनोदैहिकता' : एक अभ्यास	कु. प्रगती माणिक बेलखेडे	76–80
11.	हिन्दी उपन्यासों में ट्रांस जीवन : यमदीप और जिंदगी 50–50 के संदर्भ में	**Reshma Nath R**	**81-84**
12.	**Effect of Omkar Chanting on Concentration, Memory Power and Fatigue Level among High School Students**	**Vishal Dhaka, Dr. Surjeet Singh Kaswan**	**85-88**
13.	**COMPARATIVE ANALYSIS OF PHYSICAL CHARACTERISTICS AMONG BATSMEN, PACERS AND SPINNERS IN COMPETITIVE CRICKET**	**Ekta Pramod Singh, Dr. Arun Mathur**	**89-94**
14.	**A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players**	**Manish Kumar Sharma, Dr. Surjeet Singh Kaswan**	**95-99**

15.	लोकगीतों में बसे राम	डॉ. विपुला सिंह	100-102
16.	उत्तर भारत में हरित क्रांति का उत्कर्ष : हरियाणा राज्य के संदर्भ में	के. एम. मोनिका, डॉ. सुनीता कुमारी	103-108
17.	73वें संविधान संशोधन का राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था पर प्रभाव	रामदेव	109-113
18.	भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका : एक आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. अश्विनी राज	114-125
19.	**Dharma in Indian Thought : A Comparative Study of Hindu and Buddhist Context**	**Padma Angmo, Nikhil Kumar Rai**	**126-134**
20.	उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में संलग्न बाल श्रमिक एवं उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन	निधि लोधी, प्रो. कविराज	135-140
21.	**The Pesrspective of Women Empowerment in India : Measuring the Needs, Issues & Policy**	**Ravi Singh**	**141-145**
22.	प्रधानमंत्री पद का नैतिक और लोकतांत्रिक नेतृत्व : अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल का एक समालोचनात्मक अध्ययन	डॉ. विरमा राम देवासी, कांता भाटी	146-148
23.	राजस्थान पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका	रामदेव	149-153
24.	'आधे-अधूरे' नाटक में पारिवारिक विखंडन : वर्तमान संदर्भ में	अमित, प्रो. जगदेव कुमार शर्मा	154-159
25.	**Marxian Historiography : Historical Materialism, Class Analysis, and the Writing of History**	**DIVYA KOTHARI**	**160-165**
26.	दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव-पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में	श्री जनेंद्र कुमार दीवान, प्रो. सीमा पाण्डेय, सुभाष कुमार	166-173
27.	किसान अस्मिता और समकालीन हिंदी गजल	राजश्री सिंह, डॉ. राजश्री शुक्ला	174-180
28.	विनोद कुमार शुक्ल का कथा-साहित्य और वर्तमान चुनौतियाँ	नीरज कुमार चौधरी, डॉ. राजश्री शुक्ला	181-186
29.	**Fragmented Identity and Female Suffering in Sylvia Plath's Poetry: A Study of *The Colossus* and *Ariel***	**Dr Navninder Kaur Grewal, Dr. Arvinder Kaur**	**187-192**
30.	आर्य और वेद	भूमिका पारीक	193-194
31.	**Study of Institutional Inclusivity Perceptions of Secondary School Teachers and their Attitudes toward Inclusive Education**	**Tejveer Singh, Dr. Ritu Bala**	**195-206**
32.	सुरेश्वर त्रिपाठी कृत 'गीली रेत का घरौंदा' में चित्रित नारी पात्र	बी. श्रीहरि, डॉ. बी. संतोषी कुमारी	207-212

संपादकीय...

शोध, समाज और भारतीय ज्ञान परंपरा का समन्वय

प्रिय पाठकों, शोधार्थियों, शिक्षकों एवं विद्वान साथियों,

बोहल शोध मंजूषा के जून 2026 अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यह पत्रिका अपने आरंभ से ही ज्ञान, अनुसंधान और अकादमिक उत्कृष्टता के प्रति समर्पित रही है। बदलते समय के साथ शोध की आवश्यकता और उसकी उपयोगिता निरंतर बढ़ती जा रही है। आज का युग सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है, जहाँ ज्ञान का विस्तार अभूतपूर्व गति से हो रहा है। ऐसे समय में शोध का उद्देश्य केवल नई जानकारी प्राप्त करना नहीं, बल्कि उपलब्ध ज्ञान का सम्यक् विश्लेषण कर समाजोपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत करना भी है।

नई शिक्षा नीति ने बहुविषयक अध्ययन और अनुसंधान को विशेष महत्व दिया है। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न विषयों के बीच संवाद और सहयोग की नई संभावनाएँ विकसित हुई हैं। आज साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण अध्ययन तथा सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विविध क्षेत्रों में अंतर्विषयी शोध को प्रोत्साहन मिल रहा है। यह सकारात्मक परिवर्तन ज्ञान के समग्र विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

बोहल शोध मंजूषा का उद्देश्य शोधार्थियों और विद्वानों को एक ऐसा मंच प्रदान करना है जहाँ वे अपने मौलिक विचारों और शोध निष्कर्षों को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचा सकें। पत्रिका सदैव गुणवत्तापूर्ण, मौलिक तथा समाजोपयोगी शोध कार्यों के प्रकाशन के लिए प्रतिबद्ध रही है। हमारा विश्वास है कि शोध केवल शैक्षणिक उपलब्धि का साधन नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास का प्रभावी माध्यम भी है।

आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल संसाधनों और इंटरनेट के बढ़ते प्रभाव ने शोध की प्रक्रिया को सरल बनाया है। तथापि इसके साथ ही शोध नैतिकता, मौलिकता और प्रामाणिकता की चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। शोधार्थियों का यह दायित्व है कि वे अपने अनुसंधान में सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और प्रमाणिकता को सर्वोच्च प्राथमिकता दें। किसी भी शोध की विश्वसनीयता उसके निष्कर्षों से अधिक उसकी कार्यप्रणाली और नैतिक आधार पर निर्भर करती है।

प्रस्तुत अंक में विविध विषयों पर आधारित शोध आलेख सम्मिलित किए गए हैं। साहित्य, भाषा, संस्कृति, शिक्षा, सामाजिक सरोकारों और समकालीन विमर्शों से संबंधित शोध पत्र इस अंक को बहुआयामी स्वरूप प्रदान करते हैं। हमें विश्वास है कि यह अंक पाठकों को नवीन दृष्टि, चिंतन की नई दिशा और शोध के प्रति सकारात्मक प्रेरणा प्रदान करेगा।

अंत में, मैं सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय मंडल के सदस्यों तथा पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके सहयोग से यह अंक प्रकाशित हो सका है। आपके सुझाव और सहयोग ही हमारी सबसे बड़ी शक्ति हैं। आशा है कि बोहल शोध मंजूषा भविष्य में भी शोध, ज्ञान और अकादमिक उत्कृष्टता के क्षेत्र में अपनी सार्थक भूमिका निभाती रहेगी। आइए, हम सब मिलकर शोध को केवल डिग्री प्राप्ति का साधन न मानकर ज्ञान–सृजन, सामाजिक जागरूकता और राष्ट्र निर्माण का माध्यम बनाएँ। यही शोध की वास्तविक सार्थकता है और यही हमारी सामूहिक जिम्मेदारी भी।

–संपादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 10-16
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्य प्रदेश में मतदान व्यवहार का अध्ययन

अंजुलि शुक्ला, शोधार्थी
डॉ. एस.पी. शुक्ला, प्राध्यापक,
राजनीति शास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश :

प्रत्येक चुनाव में अलग–अलग और जटिल चुनावी रुझान देखने को मिलते हैं, इसलिए इसका अत्यधिक महत्व है। भारत में कई चुनावी विश्लेषक हैं जिन्होंने मतदान व्यवहार के अध्ययन में योगदान दिया है और इसे समकालीन राजनीतिक अनुसंधान और सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण पहलू माना जाता है। इनमें से अधिकांश अध्ययन विश्लेषणात्मक हैं और न केवल दलों की चुनावी प्रक्रियाओं पर बल्कि मतदान के पैटर्न पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं। ऐसे अध्ययनों का उद्देश्य डेटा एकत्र करना है।

मतदान के रुझानों और आंकड़ों की तुलना, चुनावी बदलावों और उतार–चढ़ावों का रिकॉर्ड और गणना। यहां, 2018 और 2023 के मध्य प्रदेश विधानसभा चुनावों में मतदान व्यवहार का अनुभवजन्य और तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। पार्टी पहचान, राजनीतिक मुद्दे, उम्मीदवार, अभियान, मतदाताओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और अन्य क्षेत्रों को मतदान व्यवहार के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में मान्यता दी गई है। इनके अलावा, जाति और सांप्रदायिक कारक भी मध्यप्रदेश में लोकसभा और विधानसभा चुनावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। क्षेत्र अध्ययन और एकत्रित एवं विश्लेषित आंकड़ों ने हमें 2018 और 2023 के मध्य प्रदेश विधानसभा चुनावों में चुनावी राजनीति और मतदान व्यवहार के बदलते आयामों पर प्रकाश डालने में सक्षम बनाया है।

प्रमुख शब्द : मतदाता वर्ग, चुनावी विश्लेषक।

परिचय :

मतदान व्यवहार लोकतंत्र की स्थिति से गहराई से जुड़ा हुआ है। मतदाता भागीदारी के स्तर को आम तौर पर लोकतंत्र का एक प्रमुख मापक माना जाता है। उच्च मतदान स्तर एक सहभागी राजनीतिक संस्कृति का संकेत देता है। यह चुनावी प्रणाली में विश्वास को दर्शाता हैय निम्न मतदान स्तर एक उदासीन राजनीतिक संस्कृति या इस बात का संकेत हो सकता है कि दल और सरकारें मतदाताओं की इच्छा के अधीन नहीं हैं। मतदान व्यवहार का अध्ययन इस विचार पर आधारित है कि मतदाताओं की सामाजिक विशेषताएं उनके मतदान के तरीके को निर्धारित करती हैं। महत्वपूर्ण विशेषताएं आयु, लिंग, जाति, वर्ग, शिक्षा और स्थान हैं। ये विशेषताएं मतदाताओं की परिस्थितियों को निर्धारित करती हैं और उन मुद्दों को परिभाषित करती हैं जो उनके लिए सबसे

अधिक मायने रखते हैं। मतदान लोकतांत्रिक राजनीति के समकालीन युग में सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले शब्दों में से एक है।

भारत में मतदान व्यवहार का अध्ययन 1967 में छह संस्थानों में छोटे पैमाने पर शुरू हुआ और 1971 से बड़े पैमाने पर होने लगा। इकबाल नारायण, रजनी कोठारी, रामेशराय रॉय और डी.एल. सेठ आदि ने इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया। लेकिन उससे बहुत पहले, मतदान व्यवहार पर पहली पुस्तक 1944 में अमेरिका में प्रकाशित हुई थी, जिसका शीर्षक था 'द पीपल्स चॉइस' (लेजर्सफेल्ड, बेरेलसन और गौडेट द्वारा लिखित)। इसके बाद 'वोटिंग' (1954) और 'द वोट डिसाइड्स' (1954) प्रकाशित हुईं। सबसे परिष्कृत अध्ययन कैम्पबेल, कॉन्वर्स और स्टोक्स द्वारा लिखित 'द अमेरिकन वोटर' (1960) है।

सैमुअल एस. एल्डर्सवेल्ड ने अपने लेख 'मतदान व्यवहार अनुसंधान में सिद्धांत और पद्धति' में लिखा है : मतदान व्यवहार शब्द नया नहीं है। लेकिन हाल ही में इसका उपयोग अध्ययन के कुछ क्षेत्रों और राजनीतिक घटनाओं के प्रकारों का वर्णन करने के लिए किया गया है, जिन्हें पहले या तो समझा नहीं गया था या प्रासंगिक नहीं माना जाता था (घई यू आर. 2002)। मतदान व्यवहार केवल मतदान सांख्यिकी, अभिलेखों और चुनावी बदलावों की गणना तक ही सीमित नहीं है।

मतदान व्यवहार में व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं (धारणा, प्रेरणा और भावना) और राजनीतिक कार्रवाई से उनके संबंध के साथ–साथ संस्थागत पैटर्न, जैसे संचार प्रक्रिया और चुनावों पर उनके प्रभाव का विश्लेषण शामिल है। मतदान व्यवहार में चुनावों में मतदान के संदर्भ में मानव राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन शामिल है। मतदान व्यवहार उन लाखों लोगों के मन का अध्ययन करता है जो मतदाताओं के रूप में राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल होते हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा कार्यरत संसदीय लोकतंत्र है। भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में, मतदान व्यवहार कई जटिल मुद्दों से निर्धारित होता है। यह बार–बार सिद्ध हुआ है कि भारत में राजनीतिक दल मतदाताओं का विश्वास और भरोसा जीतने के लिए किसी एक विशेष कारक पर निर्भर नहीं रह सकते। भारत में किए गए मतदान व्यवहार अध्ययनों ने कुछ राजनीतिक और सामाजिक–आर्थिक कारकों की पहचान की है जो मतदान व्यवहार के निर्धारक के रूप में कार्य करते हैं। भारत में, जाति, धर्म, लिंग, व्यक्तित्व कारक, पारिवारिक प्रभाव, पार्टी संबद्धता, राजनीतिक मुद्दे, शिक्षा, उदासीनता आदि जैसे विभिन्न कारक मतदाताओं के मतदान व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

लक्ष्य और उद्देश्य :

यह शोध पत्र उन मतदान व्यवहारों पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है जिन्होंने 2023 विधानसभा चुनावों को प्रभावित किया।

यह शोध कार्य तीन महत्वपूर्ण उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया था।

1. मध्यप्रदेश के मतदाताओं के मतदान व्यवहार में आए बदलाव के कारणों और कारकों का विश्लेषण करना।
2. मध्यप्रदेश में 2023 से सरकार परिवर्तन का विरोध कर रहे लोगों के आक्रोश को दूर करने के लिए।
3. हम अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था में सुधार के तरीके खोज रहे हैं।

धारणाएँ :

इस शोध कार्य का आधार बनने वाली मूलभूत मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

- मध्यप्रदेश 2018 के विधानसभा चुनावों की तुलना में 2023 के विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी अधिक थी।
- 2023 के चुनावों में मतदान व्यवहार पर सांप्रदायिकता और जातिवाद का प्रभाव कम था।
- मध्यप्रदेश में महिलाएं अब नीति निर्माण में अधिक सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं।

कार्य प्रणाली :

यह शोध कार्य प्राथमिक और माध्यमिक दोनों विधियों पर आधारित एक अनुभवजन्य अध्ययन था। प्राथमिक विधि के अंतर्गत 15 प्रश्नों का एक समूह तैयार किया गया था। ये प्रश्न समस्या से संबंधित मुद्दों पर आधारित थे। आम लोगों के विचारों को जानने के लिए अनुसूचित साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया। विषय–विश्लेषण के लिए शोधकर्ताओं ने कॉलेज पुस्तकालय और विभागीय पुस्तकालय का दौरा किया तथा इंटरनेट से नवीनतम डेटा एकत्र किया। नमूनाकरण विधि आकस्मिक सह उद्देश्यपूर्ण थी और नमूना आकार 100 था। रीवा शहर अध्ययन का केंद्र बिंदु थी। अध्ययन में पुस्तकों और पत्रिकाओं का भी उपयोग किया।

मध्यप्रदेश मतदान व्यवहार 2023 :

230 सदस्यीय विधानसभा के लिए मतदान। मध्य प्रदेश विधानसभा चुनाव 17 नवंबर, 2023 को एक ही चरण में आयोजित किए जाएंगे। उम्मीदवारों के नामांकन की अंतिम तिथि 20 अक्टूबर है। उनकी उम्मीदवारी की जांच 21 अक्टूबर को की जाएगी। भारत निर्वाचन आयोग के नियमों के अनुसार, उम्मीदवार 23 अक्टूबर तक अपनी उम्मीदवारी वापस ले सकते हैं। मतगणना के परिणाम 3 दिसंबर को घोषित किए जाएंगे।

मध्य प्रदेश उन पांच राज्यों में शामिल है जहां इस साल विधानसभा चुनाव होने हैं, जो 2024 के लोकसभा चुनावों से पहले अंतिम बड़े चुनावी अभ्यास के लिए मंच तैयार कर रहा है।

मध्य प्रदेश में विधानसभा की 230 सीटें हैं। राज्य संसद में 40 प्रतिनिधि भेजता है – 29 लोकसभा में और 11 राज्यसभा में। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के शिवराज सिंह चौहान वर्तमान मुख्यमंत्री हैं और मंगूभाई सी पटेल मध्य प्रदेश के वर्तमान राज्यपाल हैं।

राज्य में भाजपा और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) दो सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक दल हैं। स्वतंत्रता के बाद 1950 में मध्य प्रदेश को एक अलग राज्य के रूप में स्थापित किया गया था। नवगठित मध्य प्रदेश में पहले विधानसभा चुनाव 1952 में हुए थे।

आजादी के बाद कई वर्षों तक मध्य प्रदेश के राजनीतिक परिदृश्य पर कांग्रेस का दबदबा रहा। समय बीतने के साथ–साथ बहुजन समाज पार्टी (बसपा), जनता पार्टी और भाजपा जैसे विपक्षी दल प्रमुखता में आए और कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती देने लगे।

1980 और 1990 के दशकों के दौरान, भाजपा मध्य प्रदेश में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरी। वर्षों से, कांग्रेस और भाजपा ने अलग–अलग समय पर सत्ता संभाली है, और भाजपा 21वीं सदी की

शुरुआत में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के नेतृत्व में सत्ता में आई। नवंबर 2018 में हुए पिछले विधानसभा चुनाव में, कांग्रेस ने सरकार बनाई और कमल नाथ मुख्यमंत्री बने। मार्च 2020 में, कांग्रेस के 22 विधायकों ने विधानसभा से इस्तीफा दे दिया और ज्योतिरादित्य सिंधिया के साथ भाजपा में शामिल हो गए, जिसके परिणामस्वरूप कमल नाथ सरकार गिर गई। इसके बाद, भाजपा ने सरकार बनाई।

उपचुनाव में दलबदल करने वाले अधिकांश विधायक भाजपा के चुनाव चिन्ह पर फिर से निर्वाचित हो गए, जिससे भाजपा सरकार को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। मध्य प्रदेश विधानसभा का कार्यकाल 6 जनवरी 2024 को समाप्त होने वाला है।

विधानसभा चुनाव के दौरान मतदाताओं को लुभाने के लिए जब्त की गई नकदी, नशीली दवाओं और मुफ्त उपहारों का रिकॉर्ड रखने के लिए चुनाव आयोग ने एक प्रौद्योगिकी–आधारित तंत्र विकसित किया है। मुख्य चुनाव आयुक्त राजीव कुमार ने बताया कि इस प्रणाली का उपयोग राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, तेलंगाना और मिजोरम में होने वाले विधानसभा चुनावों में पहली बार किया जाएगा। उन्होंने कहा कि श्चुनाव जब्ती प्रबंधन प्रणालीश एक नया प्रौद्योगिकी–आधारित मंच है, जो विभिन्न राज्य और केंद्रीय प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा जमीनी स्तर पर की गई जब्तियों की वास्तविक समय में जानकारी प्रदान करता है।

परिणाम और चर्चाएँ :

इस शोध कार्य में इस मुद्दे पर तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यक रणनीतियाँ अपनाई गईं। अध्ययन का क्षेत्र रीवाशहर था और प्रस्तुतीकरण के लिए नमूनों के रूप में अनुसूचियों का उपयोग किया गया। उत्तरदाताओं को प्रश्नावली दी गई और उनकी प्रतिक्रियाएँ दर्ज की गईं। कुछ उत्तरदाताओं ने शोधकर्ताओं की उपस्थिति में अनुसूचियाँ भरीं।

मध्यप्रदेश विधानसभा चुनावों में मतदान की बात करें तो, 2018 और 2023 दोनों वर्षों में 60% उत्तरदाताओं ने मतदान किया। कुल उत्तरदाताओं में से 38% ने केवल 2019 में और 42% ने केवल 2023 में मतदान किया, जिसका अर्थ है कि मध्यप्रदेश के लोग अपने मतदान अधिकारों के प्रति जागरूक हो गए हैं। मध्यप्रदेश जैसे राज्य के लिए यह एक स्वागत योग्य बदलाव है। जब लोगों से पूछा गया कि वे किस आधार पर अपना वोट डालते हैं, तो 50% उत्तरदाताओं ने उत्तर दिया कि वे राजनीतिक दल के आधार पर वोट डालते हैं क्योंकि लोग, विशेष रूप से निरक्षर वर्ग, पार्टी चिन्हों से अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं और उसी के अनुसार मतदान करते हैं। 47% उत्तरदाता उम्मीदवार द्वारा किए गए कार्यों के आधार पर वोट देते हैं, जबकि केवल 2% और 1% उत्तरदाता क्रमशः धर्म और जाति के आधार पर वोट देते हैं। मतदान से पहले उम्मीदवारों के विवरण की जांच के संबंध में, 54% उत्तरदाताओं ने वोट डालने से पहले उम्मीदवारों के विवरण को पढ़ा, यह एक बार फिर दर्शाता है कि मध्यप्रदेश के लोग जागरूक और परिपक्व हो गए हैं।

जब उत्तरदाताओं से मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव 2018 के पूर्णतः स्वतंत्र और निष्पक्ष होने के दावे की प्रामाणिकता के बारे में प्रश्न किया गया, तो अधिकांश उत्तरदाताओं ने सहमति व्यक्त की, जबकि 7% उत्तरदाता इस पर अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ थे और 15% इस कथन से असहमत थे। चुनाव आयोग और सुने सरकार दोनों ही धांधली या गबन के किसी भी प्रकार को रोकने के लिए काफी सतर्क थे। मध्यप्रदेश में सरकार

परिवर्तन के कारणों के संबंध में, अधिकतम प्रतिशत यानी 40% उत्तरदाताओं ने असुरक्षा को सरकार परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण बताया, जबकि 24%, 20% और 16% उत्तरदाताओं ने क्रमशः भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और सत्ता विरोधी लहर को सरकार परिवर्तन का कारण माना। जब उत्तरदाताओं से युवा मतदाताओं पर परिवार के बुजुर्गों के प्रभाव के बारे में पूछा गया, तो 47% उत्तरदाताओं ने सहमति व्यक्त की कि युवा मतदाता परिवार के बुजुर्गों से प्रभावित होते हैं, अर्थात् वे परिवार के बुजुर्गों की पसंद के अनुसार अपना वोट डालते हैं, 40% उत्तरदाता इस कथन से सहमत नहीं थे और 13% इस पर अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ थे, इस प्रकार पार्टी पहचान के निर्माण में परिवार ने एक प्रभावशाली भूमिका निभाई।

मध्यप्रदेश विधानसभा में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों के संबंध में, कुल उत्तरदाताओं में से आधे का मानना था कि मध्यप्रदेश विधानसभा में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटें होनी चाहिए, 29% का मानना था कि आरक्षित सीटें नहीं होनी चाहिए और 20% उत्तरदाता इस पर अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ थे। आरक्षण का यह प्रावधान महिलाओं को नीति निर्माण प्रक्रिया में अधिक भागीदारी करने में सक्षम बनाएगा और महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता और सशक्तिकरण को गति देगा।

उदासीनता मतदान व्यवहार के निर्धारकों में से एक है, जिसके परिणामस्वरूप मतदान प्रतिशत में कमी आती है।

पहले मध्यप्रदेश में उदासीनता के कारण मतदान में कमी आई थी, लेकिन अब मतदाता सरकार के प्रदर्शन से संतुष्ट हैं और चुनावी प्रक्रिया में भाग लेने के लिए तैयार हैं। 52% उत्तरदाताओं ने इस कथन से असहमति जताई, 22% का मानना था कि उदासीनता के कारण मध्यप्रदेश में मतदान में कमी आई है और 26% इस पर अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ हैं। पहले मध्यप्रदेश में जाति और समुदाय मतदान के पैटर्न पर हावी थे, लेकिन जब उत्तरदाताओं से इस बारे में पूछा गया, तो 50% मतदाताओं ने राय व्यक्त की कि लोगों ने जाति की बाधाओं को तोड़कर विकास के लिए मतदान किया है, जबकि 22% लोगों का मानना था कि पूर्व कारक अभी भी मध्यप्रदेश में मतदान के पैटर्न पर हावी हैं और 28% इस पर अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ थे।

अन्ना हजारे द्वारा प्रस्तावित अस्वीकृति का अधिकार और वापस बुलाने का अधिकार के संबंध में मतदाताओं की राय इस प्रकार है कि 73% उत्तरदाताओं ने अस्वीकृति का अधिकार और वापस बुलाने का अधिकार जैसे चुनावी सुधारों के लिए अपनी सहमति व्यक्त की, 16% लोगों ने इस प्रस्ताव से असहमति जताई क्योंकि उनके अनुसार उपचुनाव व्यावहारिक रूप से संभव नहीं हैं और 11% लोग इस प्रस्ताव पर अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ हैं। ये उत्तरदाताओं की राय हैं जिन्हें शोधकर्ताओं ने अनुभवजन्य अध्ययन से दर्ज किया है।

निष्कर्ष :

मतदान व्यवहार का अध्ययन इस बात से संबंधित है कि लोग सार्वजनिक चुनावों में किस प्रकार मतदान करते हैं। मध्यप्रदेश एक अल्पविकसित राज्य है, जहाँ जाति और समुदाय चुनावी प्रक्रिया पर हावी रहते हैं। लेकिन, 2023 के मध्यप्रदेश चुनाव के बाद, जाति और समुदाय की दीवार कुछ हद तक टूटती हुई प्रतीत हुई और 'विकास' प्रमुख चुनावी कारक बन गया। 2023 के विधानसभा चुनाव ने मध्यप्रदेश में लोगों के मतदान पैटर्न

में एक बड़ा बदलाव लाया, जिसमें समाज के हर वर्ग या वर्ग ने भाग लिया। यह एक प्रशंसित विकास था। पार्टी पहचान के निर्माण में परिवार का प्रभाव रहा और महिला मतदाताओं ने अपनी इच्छा और पसंद के अनुसार मतदान करने के लिए पर्याप्त संख्या में मतदान नहीं किया। मुस्लिम, ईसाई, अमीर, गरीब, निरक्षर, शिक्षित और अन्य समूहों ने कांग्रेस पार्टी से अपना समर्थन हटाकर अन्य पार्टियों को दे दिया है।

ई–वोटिंग और मोबाइल वोटिंग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यूआईडी (पहचान पत्र) अनिवार्य किया जाना चाहिए और वोट डालते समय इसे प्रस्तुत करना अनिवार्य है। इससे चुनाव प्रक्रिया अधिक निष्पक्ष हो जाएगी क्योंकि इससे त्रुटियाँ और त्रुटियाँ कम होंगी। फर्जी मतदान और धांधली को रोकने के लिए बायोमेट्रिक प्रणाली और अंगूठे के निशान की प्रणाली शुरू की जानी चाहिए। हमारी चुनाव प्रणाली को एफपीटीपी (फर्स्ट पास द पोस्ट सिस्टम) से बदलकर आनुपातिक प्रतिनिधित्व (पीआर) प्रणाली के किसी रूप में लागू किया जाना चाहिए। इससे यह सुनिश्चित होगा कि दलों को उनके द्वारा प्राप्त वोटों के अनुपात में सीटें मिलें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

पुस्तकें :

- अशरफ, अली और शर्मा, एल.एन. (2003) राजनीति का एक नया व्याकरण, यूनिवर्सिटी प्रेस, हैदराबाद। पृष्ठ संख्या 143–144।
- चक्रवर्ती, सत्यब्रत (2005) राजनीतिक समाजशास्त्र, राजीव बेरी, नई दिल्ली। पृ. नहीं। 361–367.
- दास हरि हर और चौधरी बी.सी. (2002) राजनीति समाजशास्त्र का परिचय, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या 146–156।
- घई, यू.आर. (2002) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- जयपालन, एन. (2000) राजनीतिक समाजशास्त्र। अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 93–99।
- केसमैन, मार्कय क्रीगर, जोएलय विलियम ए., जोसेफ (2009) तुलनात्मक राजनीति का परिचय : राजनीतिक चुनौतियाँ और बदलते एजेंडा, सेंगेज लर्निंग।
- मिश्रा, एस.एन., प्रसाद, एल.एम. और शर्मा कुशल (1982) जनजातीय मतदान व्यवहार : बिहार जनजातियों का एक अध्ययन, नई दिल्ली।
- गांगुली बागेंदु और गांगुली मित्रा (1975) विकासशील समाज में मतदान व्यवहार, पश्चिम बंगाल : एक केस स्टडी, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 1
- एल्किंस, डेविड जे. (1975) : दक्षिण भारतीय संदर्भ में चुनावी भागीदारी, विकास, दिल्ली, पृष्ठ अ
- एल्डर्सवेल्ड, सैमुअल जे. (1972) : मतदान व्यवहार अनुसंधान में सिद्धांत और विधि, हेन्ज ईलन, सैमुअल जे. एल्डर्सवेल्ड और मॉरिस जोनोविट्ज (संपादक) द्वारा संपादित "राजनीतिक व्यवहार", नई दिल्ली, अमरिंद पब्लिशिंग कंपनी, पृष्ठ 267।
- सिकरी, एस.एल. (1989) : भारतीय सरकार और राजनीति, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 108.
- एप्पलबी, पॉल एच. (1949) : नीति और प्रशासन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा प्रेस, टस्कालूसा 1949,

पृ.168.

- राजकुमार पी. (2007) एनसीईआरटी, नई दिल्ली।

पत्रिका :

- प्रतियोगिता दर्पण।

वेबसाइटें :

- www.expressindia.com/news/fullstory
- www.rediff.com/news/2005/mar
- www.finacialexpress.com/news/bihar-assembly-dissolved-presidents-ruel-imposed
- www.tutor2u.net/sociology/power-voting-behaviour
- www.enotes.com/voting-behaviour-article
- www.saptarshinag.blogspot.com/2009/06/determinant-of-voting-behaviour-in 2

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 17-19

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिम्बाले के कथा साहित्य में दलित चेतना

रीतू साकेत
शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
डॉ. प्रदीप विश्वकर्मा
सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह, महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

दलित साहित्य भारतीय साहित्य की वह सशक्त धारा है, जिसने हाशिये पर धकेले गए समाज के यथार्थ, संघर्ष और चेतना को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान की है। ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिम्बाले इस साहित्यिक आंदोलन के दो ऐसे महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से दलित जीवन की पीड़ा, अपमान, शोषण और प्रतिरोध को अनुभवजन्य यथार्थ के आधार पर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इन दोनों लेखकों के कथा साहित्य में निहित दलित चेतना का तुलनात्मक अध्ययन करना है। वाल्मीकि का कथा साहित्य उत्तर भारतीय सामाजिक संरचना में व्याप्त जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता और संस्थागत अन्याय को उजागर करता है, जबकि लिम्बाले का कथा संसार महाराष्ट्र की दलित चेतना को आत्मकथात्मक तीव्रता और वैचारिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करता है। दोनों रचनाकारों की कथाओं में दलित चेतना केवल पीड़ा का बयान नहीं है, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन, आत्मसम्मान और प्रतिरोध की चेतना के रूप में उभरती है। यह शोध पत्र इस तथ्य को रेखांकित करता है कि दलित चेतना किसी एक भू–भाग या अनुभव तक सीमित न होकर अखिल भारतीय सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई है। वाल्मीकि और लिम्बाले की कथाएँ दलित समाज को आत्मबोध प्रदान करने के साथ–साथ मुख्यधारा समाज को आत्मालोचन के लिए विवश करती हैं। इस प्रकार, यह अध्ययन दलित साहित्य की वैचारिक प्रासंगिकता और सामाजिक भूमिका को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

मुख्य शब्द – दलित चेतना, कथासाहित्य, जाति–व्यवस्था, सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध, आत्मसम्मान।

प्रस्तावना –

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में सामाजिक समानता और न्याय की अवधारणा को संवैधानिक मान्यता मिली, किंतु व्यवहारिक स्तर पर जाति–आधारित भेदभाव और सामाजिक विषमता बनी रही। इसी सामाजिक पृष्ठभूमि में दलित साहित्य का उद्भव हुआ, जिसने साहित्य को अभिजन वर्ग की सीमाओं से बाहर निकालकर शोषित और वंचित समाज की आवाज बनाया। दलित साहित्य केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति न होकर

एक सामाजिक आंदोलन के रूप में विकसित हुआ, जिसका केंद्रीय तत्व 'दलित चेतना' है। दलित चेतना से आशय उस वैचारिक और सामाजिक जागरूकता से है, जो दलित समाज को अपने शोषण के कारणों को समझने, उनके विरुद्ध प्रतिरोध करने और आत्मसम्मान के साथ जीने की प्रेरणा देती है। इस चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति कथा साहित्य में विशेष रूप से सशक्त दिखाई देती है, क्योंकि कथा समाज के यथार्थ को प्रत्यक्ष और संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिम्बाले दलित कथा साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी रचनाएँ आत्मानुभव पर आधारित हैं। वाल्मीकि का कथा साहित्य उत्तर भारत के ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी समाज में व्याप्त जातिगत उत्पीड़न को उजागर करता है। उनकी कथाओं में दलित जीवन का यथार्थ किसी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और प्रतिरोध की चेतना के साथ प्रस्तुत होता है।

दूसरी ओर शरण कुमार लिम्बाले का कथा साहित्य महाराष्ट्र की दलित चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। लिम्बाले की कथाओं में अंबेडकरवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है, जहाँ दलित चेतना आत्मकथात्मक अनुभवों के माध्यम से वैचारिक रूप ग्रहण करती है। उनके पात्र सामाजिक अन्याय को स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसे चुनौती देते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में इन दोनों लेखकों के कथा साहित्य का अध्ययन इस दृष्टि से किया गया है कि किस प्रकार उनकी रचनाओं में दलित चेतना सामाजिक यथार्थ, संघर्ष और प्रतिरोध के रूप में अभिव्यक्त होती है। यह अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक चेतना के विकास की प्रक्रिया को समझने में भी सहायक है।

विश्लेषण –

ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में दलित चेतना सामाजिक यथार्थ की कठोर सच्चाइयों से उत्पन्न होती है। उनकी कहानियों में दलित जीवन की पीड़ा, अपमान और संघर्ष को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत किया गया है। वाल्मीकि की कथाएँ जाति–व्यवस्था की अमानवीयता को उजागर करती हैं, जहाँ दलित व्यक्ति को केवल उसकी जाति के कारण सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है।

वाल्मीकि की दलित चेतना अनुभवजन्य है। उनके पात्र अपने शोषण को पहचानते हैं और उसके विरुद्ध प्रतिरोध की भावना विकसित करते हैं। यह चेतना केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामूहिक सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को जन्म देती है। उनकी कथाओं में शिक्षा, चेतना और आत्मसम्मान को मुक्ति के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शरण कुमार लिम्बाले के कथा साहित्य में दलित चेतना अधिक वैचारिक और आत्मकथात्मक स्वरूप ग्रहण करती है। लिम्बाले की रचनाओं में दलित जीवन का यथार्थ केवल पीड़ा का दस्तावेज नहीं है, बल्कि वह सामाजिक संरचना पर तीखा प्रहार है। उनकी कथाओं में दलित पात्र अपनी पहचान को लेकर सजग हैं और सामाजिक अन्याय को चुनौती देने की क्षमता रखते हैं।

लिम्बाले की दलित चेतना अंबेडकरवादी विचारधारा से गहराई से जुड़ी हुई है। उनकी कथाओं में शिक्षा, संगठन और संघर्ष के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा स्पष्ट रूप से उभरती है। दलित पात्र आत्मग्लानि से मुक्त होकर आत्मसम्मान के साथ जीने की आकांक्षा रखते हैं।

यदि दोनों लेखकों की तुलना की जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि की दलित चेतना सामाजिक यथार्थ की पीड़ा से जन्म लेती है, जबकि लिम्बाले की चेतना वैचारिक स्पष्टता और आत्मबोध से सशक्त होती है। दोनों ही रचनाकारों की कथाएँ दलित समाज को जागरूक करने और मुख्यधारा समाज को आत्ममंथन के लिए विवश करती हैं। इस प्रकार, इनके कथा साहित्य में दलित चेतना सामाजिक परिवर्तन की सशक्त आवाज बनकर उभरती है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिम्बाले के कथा साहित्य में दलित चेतना एक केंद्रीय तत्व के रूप में विद्यमान है। दोनों रचनाकारों ने अपने–अपने सामाजिक और भौगोलिक संदर्भों में दलित जीवन के यथार्थ को सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। वाल्मीकि की कथाओं में दलित चेतना सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना से विकसित होती है, जबकि लिम्बाले की कथाओं में यह चेतना वैचारिक स्पष्टता और आत्मसम्मान की आकांक्षा के रूप में प्रकट होती है। दोनों की कथाएँ यह सिद्ध करती हैं कि दलित चेतना केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति है। इस प्रकार यह अध्ययन दलित साहित्य की सामाजिक भूमिका और वैचारिक प्रासंगिकता को रेखांकित करता है तथा यह सिद्ध करता है कि दलित कथा साहित्य भारतीय समाज में समानता, न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

संदर्भ –

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001.
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. सफाई देवता. वाणी प्रकाशन, 1997.
3. लिम्बाले, शरण कुमार. दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की ओर. ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004.
4. लिम्बाले, शरण कुमार. अक्करमाशी. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.
5. आंबेडकर, भीमराव रामजी. जाति का विनाश. वर्सो प्रकाशन, 2014.
6. डांगले, अर्जुन (सम्पादक). विषाक्त रोटी. ओरिएंट ब्लैकस्वान, 1992.
7. जेलियट, एलेनॉर. अछूत से दलित तक. मनोहर प्रकाशन, 1996.
8. कुमार, राज. दलित साहित्य और आलोचना. ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2010.
9. गुरु, गोपाल. "दलित सांस्कृतिक आंदोलन." इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 30, अंक 14, 1995.
10. मुखर्जी, आलोक. दलित साहित्य : समाज और चेतना. वाणी प्रकाशन, 2008.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 20-28

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला उद्यमियों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास में योगदान (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

शालिनी श्रीवास्तव, शोधार्थी
डॉ. मनीष शुक्ला, प्राध्यापक
वाणिज्य विभाग, शासकीय टी.आर.एस. महाविद्यालय रीवा (म0 प्र0)

सारांश :

''भारत की सामाजिक मान्यताओं के अनुसार महिला का स्थान एवं कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित है, किन्तु आदिकाल से ही वह पुरुषों से आवश्यकता पड़ने पर पीछे नहीं रही। यह सर्वमान्य तथ्य है कि कोई भी देश उपलब्ध मानव संसाधनों का पूर्ण उपयोग करके ही आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। चूकिं मानव का आधा भाग महिलाएं होती है। इसलिये कोई राष्ट महिलाओं की सहभागिता के बिना आर्थिक विकास का सपना पूरा नही कर सकता है। इसलिये प्रत्येक राष्ट में आर्थिक विकास की गति को प्रोत्साहित करने में महिलाओं की भूमिका बढ़ती जा रही है। विकसित देशों में महिलाओं पुरुषों के साथ बना भेदभाव के कार्य करती रहती है, जबकि भारत जैसे विकासशील देश में प्रयासरत है। शिक्षा प्रशिक्षण एवं आवश्यक दिशा निर्देश जैसे–जैसे महिलाओं में विकसित हो रहा है। क्रमशः कृषि, पशुपालन के अतिरिक्त औद्योगिक एवं अन्य क्षेत्रों में भी महिला उद्यमियों की भागीदारी बढ़ी है।''

मुख्य शब्द : महिला उद्यमी, आर्थिक स्वावलंबन, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति।

भूमिका :–

महिलाओं में समानता की भावना विकसित करने एवं चेतना जागृत करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की घोषणा की गई। आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे महिलाओं की भागीदारी देखी जा सकती है। फिर भी भारत जैसे पुरुष प्रधान देश में महिलाओं की आकांक्षाओं को सामाजिक बंधन के कारण साकार रूप नहीं मिल सका है। आर्थिक तंगी के कारण महिलाओं को मानसिक श्रम के अलावा शारीरिक श्रम भी करने को बाध्य होना पड़ता है, जिसके लिये उनकी अशिक्षा, प्रशिक्षण और दिशा निर्देश का अभाव है। अंततः महिलायें कई तरह के शारीरिक श्रम कार्य जैसे कि भवन निर्माण कार्य में बतौर उद्यमी कार्य करने के लिये विवश होती है, जिसके लिये पढ़ाई और योग्यता की जरूरत नहीं होती है। महिला उद्यमियों के श्रम को कई तत्व प्रभावित करते हैं। जिसका प्रभाव उनकी कार्यक्षमता पर पड़ता स्वाभाविक है। महिला उद्यमियों को कठोर शारीरिक श्रम करना पड़ता है, जिसमें कई कठिनाइयाँ आती है। भारतीय समाज में महिला–पुरुष दोनों को समान दर्जा प्राप्त है, फिर भी पढ़ी–लिखी व स्वावलम्बी महिला को न तो भारतीय समाज

ने बराबरी का दर्जा दिया है और न स्वयं महिला को खुद को बराबर समझने की मानसिकता बन पाई है।

भारत सरकार ने महिला उद्यमिता को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया है कि महिला के अधिपत्य एवं नियंत्रण वाली कोई भी संस्था जिसका कम से कम पूंजी का 51 प्रतिशत लाभ महिला को प्राप्त हो तथा संस्था द्वारा उपलब्ध रोजगार का 51 प्रतिशत महिलाओं को प्राप्त हो तो इस संस्था को महिला उद्यमिता से संबंधित माना जा सकता है। महिलाएं परिवार की धुरी होती है, उन्हे आर्थिक स्वावलंबन प्रदान करने और विकास में हिस्सेदारी बनाये रखने के लिये उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश करना अंत्यत आवश्यक है उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता निश्चित रूप में भारत के औद्योगिक व आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होगी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,210,854,977 है इसमें महिलाओं की जनसंख्या करीब 58.65 करोड़ है। म.प्र. की कुल जनसंख्या 72,626,809 है जिसमें महिलाएं 35,014,503 है। महिलाओं की इस विशाल जनसंख्या को अनदेखा कर देश एवं प्रदेश के आर्थिक समृद्धि की कल्पना नही की जा सकती है।

मानवीय संसाधन के इस बडे भाग को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक हर दृष्टि से समर्थ करके ही विकास के लक्ष्यों को पाया जा सकता है। 2011 की जनगणना के अनुसार 59.24 प्रतिशत महिलाएं साक्षर है। यह आंकडा 1971 में 22 प्रतिशत तथा 1991 में 39 प्रतिशत था। 31 महिलाएं 2008 में भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिये चुनी गई जबकि 2007 में यह आंकडा 18 प्रतिशत तक सीमित था। 2014 में हुये आम चुनाव में 12. 15 प्रतिशत महिलाएं बतौर सांसद चुनी गई। अब तक चुनी गई महिला सांसदो में 66 महिला सांसद की यह सबसे बड़ी संख्या है। आज महिलायें प्रत्येक क्षेत्र में अपने को साबित कर रही है। आज महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिये एवं देश के आर्थिक विकास के लिये महिलाओं की भागीदारी बहुत आवश्यक हो गई है सरकार महिलाओं के प्रोत्साहन के लिये समय–समय पर विशेष योजनायें भी बनाती है।

''महिलाओं की सृजनात्मक ऊर्जा विभिन्न सहायता व प्रेरणात्मक योजनाओं से आर्थिक विकास की नई दिशा का दिग्दर्शन कराती है।'' महिलाओं के लिये विशिष्ट प्रेरणायें व योजना महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं को देखते हुये तथा महिलाओं की उद्योग/स्वरोजगार के क्षेत्र में अधिकाधिक भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा केवल महिलाओं हेतु कुछ विशिष्ट योजनायें प्रतिपादित की जाती है। प्रेरणात्मक मार्गदर्शन सहायता तथा अनुदान कार्यक्रमों से बदलाव भी आया है।

उद्देश्य एवं उपयोगिता :–

उद्यमी महिलाओं के शोषण की जिम्मेदारी हमारे समाज की है और यदि समाज उनकी समस्याओं को ध्यान दे, तो यह भी सम्मानपूर्वक, अधिकार पूर्ण जीवन जी सकती है। भारत में अनेक कानूनी प्रावधान है, फिर भी उद्यमी महिलाओं के शोषण की चर्चाएं गोष्ठी एवं पत्र–पत्रिकाओं में होती है। महिला उद्यमियों का आर्थिक, शारीरिक शोषण न होने पाये, इसके लिये इतने कानून बने हैं, फिर भी महिलाओं के श्रम शोषण की प्रक्रिया में कोई सुधार नहीं दिख रहा है, पुरुष उद्यमियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर बराबर से उद्यमी महिलायें भी कार्य करती हैं। आजकल भवन निर्माण का कार्य निरन्तर हो रहा है, जिसमें अनेक ग्रामीण महिलायें कार्यरत हैं। उद्यमी महिलाओं को भवन निर्माण जैसे कठिन काय में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन उद्यमी महिलाओं का शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक, शोषण निरन्तर हो रहा है और इनकी समस्याओं को कोई न सुनने वाला है और न ही समस्याओं का समाधान करने वाला है। इन्हें किसी प्रकार की कोई सरकारी सहायता प्राप्त

नहीं है। इन उपरोक्त पक्षों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन उद्देश्य इस प्रकार निश्चित किया गया है–

- आयु एवं शिक्षा के आधार पर महिला उद्यमियों की समस्याओं का अध्ययन करना।
- महिला उद्यमियों की विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करना।
- आयु एवं शिक्षा के आधार पर तनाव एवं जोखिम प्रबंधन का अध्ययन करना।
- उद्यमी महिलाओं पर हो रहे शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक शोषण का अध्ययन करना।
- महिला उद्यमियों के समाज में स्थान का एवं परिवार में स्थान का अध्ययन करना।
- महिला उद्यमियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
- महिला उद्यमियों को जागरूक कर समाज में बराबरी के दर्जे में खड़ा करना आदि।

पूर्व शोध की समीक्षा :–

ग्रीन कार्टर, नैंसी एम. (2003) ने महिला उद्यमिता के क्षेत्र में हुए अनुसंधान एवं प्रकाशनों का मूल्यांकन किया। अध्ययन में विभिन्न अध्ययनों एवं प्रकाशनों को महिला उद्यमिता से संबंधित कुछ मापदंड जैसे लिंग भेदभाव, व्यक्तिगत विशेषताएं, वित्तीय समस्याओं, व्यापार इकाई एवं नारीवादी दृष्टिकोण के आधार पर वर्गीकृत किया।

गणेशन एस. (2003) तमिलनाडु राज्य के 10 जिलों में पंजीकृत 124 महिला उद्यमियों के स्तर का अध्ययन किया। अध्ययन में यह पाया गया कि न्यादर्श महिला उद्यमियों में 94.4 प्रतिशत एकल स्वामित्व, 70.2 प्रतिशत 26 से 45 वर्ष आयु समूह, 71.8 प्रतिशत एकल परिवार, 87.1 प्रतिशत विवाहित एवं 83 से 90 प्रतिशत स्कूल स्तर तक शिक्षा प्राप्त थी। अध्ययन के उपरान्त यह सुझाव दिया कि जिला उद्योग केन्द्र द्वारा जिले में कुशल व बेरोजगार महिलाओं को उद्यम स्थापना के लिये प्रेरित किया जाये।

लाल व सहाय (2008) ने महिला उद्यमिता एवं घरेलू व्यवसाय के संदर्भ में बहुआयामी घटकों एवं चुनौतियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया। अध्ययन हेतु लखनऊ शहर में कार्यरत महिला उद्यमियों का चयन स्तरीय निदर्शन पद्धति द्वारा किया। अध्ययन में पाया किये महिलाएं आत्मविश्वास से पूर्ण, उद्यमीय प्रकृति से युक्त थीं तथा सुझाव दिया कि यद्यपि घरेलू व्यवसाय में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है, किन्तु फिर भी अभी इनकी स्थिति निम्न है तथा इन्हें पुरूषों की तुलना में अधिक चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

एंटोनी, एस. वर्गिस (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि उद्यमिता विकास में पति, पिता या पारिवारिक सदस्यों की प्रेरणा काफी सहायक हो सकती है तथा पति एवं पिता उद्यमिता हेतु प्रमुख प्रेरक घटक रहे है। उन्हें महिला उद्यमियों की क्षमता पर विश्वास होने पर उनके दृष्टिकोण एवं व्यवहार में परिवर्तन हो सकता है।

उषा किरण वी. (2012) ने हैदराबाद की 60 महिला उद्यमियों के प्रेरक घटकों, समस्याओं व चुनौतियों का अध्ययन किया तथा अध्ययन में यह पाया कि सर्वाधिक 50 प्रतिशत महिलाएं स्वप्रेरित होकर उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। 93 प्रतिशत महिलाओं को परिवार एवं कार्यक्षेत्र के मध्य गतिरोध की समस्या थी। मुख्य चुनौतियों के रूप में 39 प्रतिशत महिलाओं को बाजार एवं 7 प्रतिशत महिलाओं को पर्याप्त जानकारी का अभाव एवं उत्पादन लागत वृद्धि का सामना करना पड़ा। अध्ययन के अंत में यह सुझाव दिया कि सरकार एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा एकल खिड़की योजना के माध्यम से अधिक से अधिक सुविधा दी जानी चाहिए।

अध्ययन पद्धति :–

ज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्य अपरिहार्य है। वर्तमान युग में शोध का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र में संबंधित तथ्यों का प्रमाणीकरण, नवीनीकरण एवं सत्यापन शोध के द्वारा ही किया जा सकता है।

शोध कार्य में महिला उद्यमियों से संबंधित वास्तविक एवं विश्वसनीय आंकड़ों को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों के एकत्र कर पूर्ण किया गया है। प्राथमिक आंकड़े स्वंय कार्य स्थल पर जाकर मूल स्त्रोतों एवं साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्र किये गये हैं। जबकि द्वितीयक आंकड़े विभिन्न प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तकों, शोध पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, आदि से एकत्र कर प्रयोग किये गये हैं।

उपकल्पना का निर्माण :–

चिंतन और जिज्ञासा मानव की दो, मूल प्रवृत्तियां हैं और इसके वैज्ञानिक आधार केन्द्र बिन्दु भी हैं उपकल्पना सामाजिक शोध की प्रथम सीढ़ी है। शोध कार्य प्रारंभ करने के पूर्व शोध के कारणों समस्याओं के सामाधान एवं परिणाम के बारे में हम जो एक निश्चित रूपरेखा बना लेते हैं उसे उपकल्पना कहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में परीक्षण के लिए निम्न उपकल्पनाओं का पालन किया गया है :–

- शिक्षित महिला उद्यमियों की अपेक्षा साक्षर उद्यमियों को अधिक समस्याएं है।
- अत्यधिक सदस्य होने के कारण मूलभूत सुविधा में जुटाने की समस्या है।
- महिला उद्यमियो शिक्षा, प्रशिक्षण तथा दिशा–निर्देश की कमी है।
- महिला उद्यमियो के तनाव प्रबंध और जनसांख्यिकी चरों के बीच महत्वपूर्ण संबंध है।
- महिला उद्यमियो के प्रति परिवार और समाज का सहयोगात्मक दृष्टिकोण नहीं होता है।

अध्ययन क्षेत्र :–

चूँकि शोधार्थी का अध्ययन क्षेत्र रीवा जिले को लिया गया है। रीवा जिले में उत्खनन के कारण घनत्व है। 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 2,228,935 है, जिसमें पुरूषों की संख्या 1,157,495 तथा महिलाओं की संख्या 1,071,440 है। रीवा जिले में जनसंख्या का घनत्व 297 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जिले की साक्षरता प्रतिशत 72.26 प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित है जिसमें पुरूष का साक्षरता प्रतिशत 81.37 एवं महिलाओ का साक्षरता प्रतिशत 62.45 है। रीवा जिले की 50 महिला उद्यमियों का चयन उद्देश्यपूर्ण दैव निदर्शन पद्धति के द्वारा किया गया है।

आंकड़ों का वर्गीकरण और सारणीयन :–

शोध द्वारा तथ्यों को प्राप्त करने के बाद संकलित तथ्यों को सारणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है और सांख्यिकी विश्लेषण किया गया है–

तालिका क्रमांक–1

महिला उद्यमियों के कार्य

क्र.	महिला उद्यमी के कार्य	संख्या	प्रतिशत
1.	भवन निर्माण	15	30
2.	सड़क निर्माण	10	20
3.	लघु एवं कुटीर उद्योग	25	50
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत महिलायें लघु एवं कुटीर उद्योग में 30 भवन निर्माण के कार्य में व 20 प्रतिशत महिलायें सड़क निर्माण के कार्य में कार्यरत हैं। ज्यादातर महिलाएँ लघु एवं कुटीर उद्योग में इसलिये संलग्न रहती है, क्योंकि अन्य क्षेत्रों की तुलना में आय ज्यादा प्राप्त होती है।

तालिका क्रमांक–2

परिवार का स्वरूप

क्र.	परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1.	संयुक्त	15	30
2.	एकल	35	70
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 30 प्रतिशत परिवार संयुक्त परिवार है, शेष 70 प्रतिशत महिला उद्यमियों के परिवार एकाकी है। ग्रामीण क्षेत्र से शहरों में आकर कार्य करती हैं जिसके कारण एकाकी परिवार ज्यादा पाये गये।

तालिका क्रमांक–3

परिवार में महिला उद्यमियों का स्थान

क्र.	परिवार में स्थान	संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च स्थान	25	50
2.	मध्यम	15	30
3.	निम्न	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत महिला उद्यमियों का परिवार में उच्च स्थान है। 20 प्रतिशत महिला उद्यमियों का मध्यम तथा 50 प्रतिशत महिला उद्यमियों का स्थान परिवार में निम्न है।

तालिका क्रमांक–4

महिला उद्यमियों की वैवाहिक स्थिति

क्र.	वैवाहिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	विवाहित	25	50
2.	अविवाहित	15	30
3.	विधवा	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत महिला उद्यमी विवाहित है तथा 30 प्रतिशत अविवाहित है और विधवा महिला उद्यमियों का प्रतिशत 20 है। अतः स्पष्ट है कि महिला उद्यमियों में विवाहित महिला उद्यमियों का प्रतिशत सबसे अधिक है।

तालिका क्रमांक–5

परिवार की आर्थिक स्थिति

क्र.	आर्थिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	अच्छी	15	30
2.	खराब	25	50
3.	सामान्य	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि परिवारों की आर्थिक स्थिति में 30 प्रतिशत अच्छी, 50 प्रतिशत खराब तथा 20 प्रतिशत सामान्य आर्थिक स्थिति में अपना जीवन यापन कर रहे हैं अतः स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत महिलायें आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उद्यमी बन गये।

तालिका क्रमांक–6

महिलाओं का समाज में पुरूषों के बराबरी के अधिकार के पक्ष में विचार

क्र.	विचार	संख्या	प्रतिशत
1.	सहमत	25	50
2.	असहमत	15	30
3.	कोई वक्तव्य नहीं	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिला उद्यमी पुरुषों के बराबरी में अपने आपको खड़ा करना चाहती है, अध्ययन में 50 प्रतिशत महिलाओं ने अपनी सहमति जताई शेष 50 प्रतिशत में 30 प्रतिशत असहमति जताई और शेष 20 प्रतिशत महिलाओं ने कोई मत व्यक्त नहीं किया है।

रीवा जिले में प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम की स्थिति :–

प्रदेश के अन्य जिलों की भॉति रीवा जिले में भी प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम 1 अप्रैल 2008 से संचालित है। यह वास्तव में 31.03.2008 तक दो योजनाओं प्रधानमंत्री रोजगार योजना और ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम का मिश्रित स्वरूप है।

सारणी क्र. 7

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम की लक्ष्य एवं पूर्ति

(राशि लाख रूपये में)

वर्ष	लक्ष्य		पूर्ति	
	भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय
1	2	3	4	5
2018—19	40	148.20	30	135.91
2019—20	42	158.80	39	162.10
2020—21	35	149.00	30	169.59
2021—22	39	193.10	34	188.19
2022—23	72	191.85	80	143.42
योग	228	840.95	213	799.21

स्त्रोत – जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र रीवा (म.प्र.)

जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र रीवा से प्राप्त जानकारी के अनुसार अभी विगत पॉच वर्षो के दौरान 226 में 213 हितग्राहियों द्वारा उद्यमिता सम्बन्धी लघु एवं मध्यम स्तर के उद्योगों की स्थापना जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र रीवा के माध्यम से स्थापित कर चुके है। जिनमें से 799.21 लाख रूपये की आर्थिक मदद बैंकों के माध्यम से प्रदान की जा चुकी है। विगत पॉच वर्षो की लक्ष्य प्राप्ति को यदि देखा जाय तो अभी तक निर्धारित भौतिक लक्ष्यों में से 65.92 प्रतिशत औसत लक्ष्य प्राप्त किया जा चुका है। इसी प्रकार वित्तीय प्रतिपूर्ति की लक्ष्य 95.03 रहा है।

दीन दयाल रोजगार योजना :–

योजना का उद्देश्य :–

उद्योग सेवा एवं व्यवसाय के क्षेत्र में केवल नवीन इकाइयों/गतिविधियों के माध्यम से उद्योग की स्थापना को प्रोत्साहन देने हेतु बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से लक्ष्य निश्चित कर ऋण उपलब्ध कराना एवं मार्जिन मनी की सहायता अनुदान के रूप में देना।

सारणी क्र. 8

क्र.	वर्ष	लक्ष्य		उपलब्धि	
		भौतिक	वित्तीय (रू. लाख मे)	भौतिक	वित्तीय (रू. लाख मे)
1.	2.	3.	4.	5.	6.
1.	2018.19	181	28.72	52	28.72
2.	2019.20	160	6.89	70	6.89
3.	2020.21	84	7.80	84	7.80
4.	2021.22	84	4.97	80	4.97
5.	2022.23	70	2.43	31	2.43
	योग	579	50.81	1317	50.81

प्राप्त पाँच वर्षो के आकड़ो से स्पष्ट है कि शासन द्वारा जिले में रखे गयें 579 भौतिक लक्ष्य मे से मात्र 1317 भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति हो पाई है, जबकि वित्तीय लक्ष्य एवं पूर्ति पूरे 50.81 लाख रूपये ही है।

महिला उद्यमिता की समस्यायें –

- देश का सामाजिक ढाँचा महिला उद्यमियों के प्रति कठोर, संवेदनहीन है।
- सामान्यतः महिलाओं में अपने आप निर्णय लेने की क्षमता का अभाव होता है।
- भारतीय महिला उद्यमियों की प्रमुख समस्या भारतीय पुरूषों की दोहरी मानसिंकता है।
- पुरूष श्रमिको एवं कर्मचारियें के साथ काम न कर पाना।
- महिला उद्यमी कभी–कभी नवीनतम तकनीक से पूर्णतः जानकारी नहीं ले पाती है जिससे उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है।
- भारत में महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत पुरूष की तुलना में कम है शिक्षा के अभाव में वह

तकनीकी ज्ञान एवं विपणन के सम्बन्ध में सजग नहीं रह पाती जिसका विपरीत प्रभाव उनके व्यवसाय के विकास पर पड़ता है।

- महिला उद्यमियों को सामान्यतः ऋण की प्राप्ति में अनेक कठिनाओं का सामना करना पड़ता है।

निष्कर्ष :–

औद्योगिक विकास के साथ–साथ यह बात देखी गई कि पूंजीपति इस बात के लिये बहुत उत्सुक थे कि शीघ्र ही अधिक लाभ हो, जिससे उन्होंने स्त्री, पुरुष तथा असहाय बच्चों तक को काम में लगा दिया।

रीवा जिले की उद्यमी महिलाओं का अध्ययन करने से यह पाया गया कि कई महिलायें भवन निर्माण तथा सड़क निर्माण के कार्य में लगी हैं और अधिक संख्या में एकल परिवार से हैं और 10 प्रतिशत महिला शिक्षित पाई गई और परिवारिक अध्ययन से पता चला कि परिवारिक और आर्थिक स्थिति निम्न है। इन्हें परिवार में बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है। इन महिलाओं का 18 वर्ष से कम आयु में ही विवाह हो जाता है, जिससे इनके बच्चे भी अधिक रहते हैं। जीवन के लिये भोजन के साथ–साथ वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि की भी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु इन महिला उद्यमियों की मासिक आय इतनी नहीं रहती कि जिससे कि ये अपना तथा अपने बच्चों का गुजारा अच्छे से कर पायें और उन्हें पुरुषों से कम मजदूरी भी दिया जाता है।

सुझाव :–

महिला उद्यमियों की स्थिति काफी खराब है। अतः यह देखते हुये सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिये तथा उनके शारीरिक, आर्थिक व समाजिक शोषण को रोकने के लिये काननू को सक्त होना चाहिये और महिलाओ को शिक्षित करने के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये तथा पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता प्रदान की जानी चाहिये तथा उन्हे उचित प्रशिक्षण तथा दिशा निर्देश दी जानी चाहिए। महिलाओं का शोषण करने वाले को दण्डित किया जाना चाहिय, ताकि उन्हें सबके मिल सके। महिलाओं को रोजगार हेतु विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान किये जाने चाहिये, ताकि वे स्वावलम्बी बन सके तथा सबसे महत्वपूर्ण बात ये होनी चाहिये कि महिला उद्यमियों को भी पुरुषों के बराबर वेतन दिया जाना चाहिए अर्थात् समान कार्य का समान वेतन मिलना चाहिये।

संदर्भ :–

1. सक्सेना, एस.सी. (1992), 'श्रम समस्याएं एवं सामाजिक सुरक्षा', रस्तोगी पब्लिकेशन शिवाजी रोड, मेरठ।
2. शर्मा, डॉ. एम.के. (2010), 'भारतीय समाज में नारी', पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।
3. आहुजा राम (2000), 'सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली।
4. कुमार, मनीष; ''महिला सशक्तिकरण, दशा और दिशा'', मधुर बुक्स, दिल्ली 2006 पृष्ठ–33,
5. यादव, उत्तरा; ''ग्रामीण नारी परिवर्तन की ओर'', साहित्य संगम, इलाहाबाद 2004, पृष्ठ–16,
6. सिंह, अरूण कुमार सिंह, आशीष कुमार (2004) ''व्यक्तित्व का मापन'', तृतीय संशोधित संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
7. डॉ. मरवाह, सरूप सिंह (2011) शारीरिक और मानसिक तनाव क्यों होता है और कैसे बचे'' पुस्तक महल दिल्ली।

8. Ganshen, S.-Status of woman enterprises in India, Knaishka Publishing, New Delhi, pp-153-159 37

9. Krishna,M.K (2003), Women Enter primary in Kerala, Ph.d. thesis, Mahatma Gandhi University Kerala.(2003)

10 Lal, Madhurima and Sahai Shikha, 2008, „Women in Family Business?, Presented at first invitational conference on family business at Indian Xchool of Business, Hyderabad (2008)

11. Ushakiran V., Rajeshwari, Karunashree, M.V. (2012) „Business women and microenterprises? ,Zenith, International Journal of multidisciplinary Research, Vole. 2, Issue – 2, Feb 2012, PP-172-180.

12. Greene, Patrica G., Hart, Myra M, Brush, Candida G. & Carter, Nancy M. (2003) – „Women Entrepreneurs Moving Front and Center: An Overview of Research and Theory, White paper at limited states ,Association for small Business and Entrepreneurship.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 29-37
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Birsa Munda and the Politics of Land, Identity, and Self-Governance

Pooja
Ph.D Research Scholar,
Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur, Rajasthan.

Abstract :

As a tribal leader and social reformer during the late 19th century Birsa Munda championed theestablishment of a more just society on grounds which included self-determination and territorial sovereignty and cultural defense. The popular name for his movement was Ulgulan (Great Rebellion) which he launched against British colonial exploitation and feudal oppression of indigenous communities. Birsa's ideology spread three main points which included tribal land protection and native religious practice revival as well as opposition to forced conversion activities. Through his enduring influence Birsa Munda motivates Indian tribal movements in their fight against land confiscation as well as displacement and economic and social deprivation. Tribal groups in the present-day fight for land rights and environmental justice through adopting Birsa Munda's concepts as they preserve political self-governance .The Forest Rights Act (2006) together with PESA Act (1996) demonstrate how he advocated for indigenous self-empowerment. Various hurdles including industrial development and poor policy enforcement and social exclusion continue to threaten the welfare of tribal people. This paper investigates how Pathalgadi activists and Niyamgiri protesters continue Birsa Munda's legacy of resistance while showing the requirement for policy changes that integrate his ideas to improve tribal sustainability while safeguarding culture and creating an inclusive society. A complete society based on equality and inclusion must make an effort to identify and remedy both historic and present-day injustices which tribal communities have experienced.

Keywords : Birsa Munda, Ulgulan, tribal rights, land protection, self-governance, Forest Rights Act, PESA Act.

Introduction :

Indian history has recognized Birsa Munda as one of its most impactful tribal leaders for his

praiseworthy fight against British colonialism and the excessive control of landlords and social oppression. The birthplace of Birsa Munda was Ulihatu which today comprises Jharkhand during 1875. As he grew older he observed how the Munda community endured suffering because of Zamindari rule and Beth Begari and loss of their ancestral landholdings. British governance established abusive practices that tore indigenous groups from their traditional territory after which they became forced laborers to landlords who belonged to the upper caste and benefited from colonial regulations.

Birsa Munda led the Munda community in a rebellion against their oppression by fighting for their rights to land ownership combined with governance power and social equality development. During 1899-1900 he led the Ulgulan Great Rebellion to dismantle both colonial power and feudal regimes while fighting for Munda Raj self-rule rule. Because his armed uprising failed to continue he managed to contribute substantially to the development of policies about tribal land rights. Due to his legacy the Chotanagpur Tenancy Act (1908) passed into law to protect tribal lands from being given to non-tribal people. Along with his political work as a freedom fighter Birsa engaged in spiritual leadership while reforming society to encourage tribal preservation of their faith traditions and to fight against Christian missionary conversion efforts. His vision of a better world included self-governance with economic freedom while protecting tribal cultures which encourages modern indigenous resistance groups.

The fundamental issues which Birsa Munda faced in India continue persisting during contemporary times despite constitutional defenses alongside legal safeguards and policy mechanisms for tribal rights protection. The tribal communities continue today to rank as the least privileged population in the country because they face the dual threats of losing their ancestral lands and cultural determination as well as environmental destruction and societal and governmental discrimination. Through the Fifth and Sixth Schedules of India's constitution along with the Forest Rights Act (2006) and Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act (PESA, 1996) indigenous populations should have protection yet their execution is frequently inadequate since they remain exposed to corporate exploitation as well as encroachment by state officials and non-tribals.

During the time period of 2017-2018 the Pathalgadi Movement in Jharkhand adopted Birsa's vision by championing indigenous self-rule while protecting tribal lands just like his contemporary movement. Tribal villages implemented pathalgadis containing legal rights for self-governance after adopting provisions from the PESA constitution. The movement met severe reaction from the state through police actions and sedition prosecutions and suppression of all forms of disagreement . State development initiatives keep creating conflicts with tribal self-governance efforts throughout different regions of India.The situation of economic neglect endures as a primary problem affecting

tribal populations throughout modern-day India. Resources from their regions should provide Adivasis with opportunities instead they face extreme poverty along with poor development and limited access to education and healthcare and work opportunities.

Scope of the Study :

The study analyzes Birsa Munda's historical and socio-political and legal vision of a just society along with its contemporary impact on tribal movements in India. Research has shown how Bandanima fought British colonial oppression to gain self-rule and land rights and cultural survival in order to motivate current indigenous resistance movements. This research esimalates recent tribal movements starting with Pathalgadi Movement and Niyamgiri Protests to show their relation with Birsa Munda's legacy. The research analyzes how well the Forest Rights Act (2006) together with the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act (1996) address concerns of tribal populations. The research examines how displacement of tribal people alongside industrial growth projects and social economic exclusion are ongoing challenges for indigenous populations. A comparative study of historical and contemporary scenarios creates policy recommendations about tribal self-determinacy with sustainable development practices and cultural safeguarding. The research findings deliver specific value to politicians alongside academic researchers as well as community champions who dedicate their efforts toward tribal empowerment in India.

Birsa Munda's Vision of a Just Society :

Birsa Munda dedicated his life to establishing a society which followed the fundamental principles of Munda Raj self-rule and indigenous land rights and cultural protection and social justice for tribal communities. The Ulgulan (Great Rebellion) of 1899-1900 started as a tribal response against British colonial exploitation together with feudal oppression of indigenous lands and their means of survival. The tribal activist Birsa attempted to gain self-rule through his political efforts against domination while striving to establish indigenous leadership responsible for their resources and cultural preservation.

Birsa Munda focused his beliefs on two fundamental points which included tribal landownership and protection of their ancestral territories. His stance against the Zamindari system along with rising non-tribal land appropriation became major parts of his activism because these practices stripped indigenous people from their ancestral territories. The battle led him to help obtain the Chotanagpur Tenancy Act of 1908 when it provided tribals within Jharkhand with some protection against land grabbing.

Tribal Movements in Contemporary India :

The Indian tribal movements have developed historically from their opposition to colonial

administration toward seeking land rights and environmental protection and socio-political legitimacy today. The indigenous people remain vulnerable to displacement and land seizure and cultural destruction because the government backs industrial activities and mining operations alongside weak execution of protection laws. Tribal communities in Jharkhand launched the Pathalgadi movement by writing constitutional provisions on stone plaque inscriptions to protect their self-governance authority. Tribal communities achieved authority over their self-governance due to the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 (PESA). The government declared this tribal resistance dangerous so police carried out seizures that led to charges against tribal leaders. The Niyamgiri movement guided by the DongriaKondh tribe brought victory as they blocked Vedanta Resources from extracting bauxite from their spiritual hills in Odisha. A landmark victory for indigenous rights was reached when the Supreme Court of 2013 supported the DongriaKondh tribe's entitlement to decide their land usage pursuant to the Forest Rights Act of 2006.

The fight in Hasdeo Aranya Chhattisgarh keeps ongoing as the Gond tribe stands against coal mining operations threatening their forests alongside their survival. National attention focused on the tribals who walked 300 km across 2022 to seek the end of all mining permissions. The tribal residents of Hasdeo Aranya continue to protest against coal extraction even though the state government maintains its support for mining operations which threatens environmental and tribal land protections . The people of Tamil Nadu in Thoothukudi united to fight against Sterlite Copper plant's pollution issues in a movement that protected their environment and community rights. A total of 13 people lost their lives when police used violent tactics to suppress protestors demonstrating against environmental injustices in tribal areas.

Every tribal movement in north eastern Indian states develops as a political platform that fights for both autonomy and indigenous self-governance. Tribes throughout Assam demand Bodoland sovereignty while Naga tribes pursue Greater Nagalim sovereignty to restore indigenous control of their ancestral territories. The North eastern tribes continue their movements because the sixth schedule of the Constitution remains unfully implemented for granting special autonomy. Tribal communities throughout central India defend their land rights by opposing state bills that amend both the Chotanagpur Tenancy Act of 1908 (CNT Act) and the Santhal Pargana Tenancy Act of 1949 (SPT Act). The state introduced these acts to safeguard tribal lands although their original purpose was generally to protect these rights they continue to face challenges from industrial development-friendly state policies.

Relevance of Birsa Munda's Ideas in Present-Day Tribal Struggles :

Component timeline during the late 1800s Birsa Munda functioned as a major activist leader who fought against British control and local elite domination of Adivasi communities who faced

social discrimination. The Great Rebellion of 1899-1900 launched by Birsa Munda fought for indigenous land rights besides demanding self-rule as well as tribal traditions preservation. His ideas actively inspire modern tribal resistance groups as indigenous Indian groups currently defend their territory from loss and struggle to protect their soil against dispossession and environmental destruction and cultural decay. Through their current land-related disputes Indians continue to practice the ideals Birsa Munda promoted including indigenous self-rule and identity protection combined with economic justice for tribal people.

The main focus of Birsa Munda's political movement centered on defending tribal territories from non-tribal intruders. He vehemently fought against both Zamindari system and British land policies that caused numerous Adivasis to lose their heritage possessions of land. Through his Munda Raj movement Birsa established principles that later led to the adoption of the Chotanagpur Tenancy Act (1908) to protect tribal land from non-tribal owners. Tribal communities of modern India face ongoing challenges from land alienation because of industrial development along with mining ventures and large infrastructure construction. The current Hasdeo Aranya movement in Chhattisgarh that the Gond tribe carries out against land encroachment directly follows in Birsa's footsteps. Local populations of Hasdeo forests oppose coal mining operations because their government supports private sector companies which break Forest Rights Act (2006) by carrying out forced displacement without tribal consent (Banerjee, 2022). The Niyamgiri movement in Odisha followed a similar path to Birsa as it defended tribal land sovereignty by stopping Vedanta Resources from mining bauxite.

The ideology of Birsa Munda encompassed demands for self-government authority that present-day advocates use to push for Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 (PESA) and Sixth Schedule provisions implementation. Tribal communities in Jharkhand (2017-present) started building stone plaques with constitutional rights as a means of exercising self-rule while preventing external interventions through the Pathalgadi movement. The movement demonstrates indigenous self-determination principles of Birsa because its supporters insist tribal communities should govern themselves rather than state-imposed bureaucratic systems. State intervention against local governance movements confirms the historical colony-like suppression of Birsa's Ulgulan which persists as modern tribal India fights for self-governance.

Tribal cultural identity along with their heritage preservation became fundamental aspects that Birsa Munda fought for within his movement. He opposed Christian religious conversion of Adivasis while working to restore traditional indigenous cultural and religious customs during his leadership phase. The Birsait sect which he established worked toward rejecting any outside religious teachings while advocating tribal ancestral customs. The Adivasi groups of present-day India maintain active

campaigns for protecting their native culture while opposing assimilation efforts from national authorities. Activists in tribal communities have worked against Scheduled Tribe status dilution when they protested about religious classifying criteria and Hindu membership decisions regarding Adivasis. The Adivasi demand for independent religious categorization in Census reports continues the fight launched by Birsa for tribal self-identification.

Challenges Faced by Contemporary Tribal Movements :

Tribal movements in India actively shield against domination while standing for their territory ownership and securing their autonomy and working to protect their cultural heritage. The tribal communities endure multiple difficulties because of the existing constitutional safeguards and legal provisions including the Fifth and Sixth Schedules and the Forest Rights Act (2006) and Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act (PESA, 1996). Tribal communities face multiple challenges from which state authorities react by employing repressive measures together with land dispossession as well as environmental destruction and economic discrimination. Present-day tribal movements face survival threats because of various intersecting issues which create obstacles to their advancement.

1. Land Alienation and Displacement :

Industrial projects together with mining and infrastructure development interfere with tribal land and forest connections through the practice of forcibly displacing tribal people. The ancestral lands have been lost because of coal mining in Hasdeo Aranya (Chhattisgarh) and bauxite mining in Niyamgiri (Odisha) and hydroelectric projects in Arunachal Pradesh despite legal protections according to Banerjee (2022). Displaced tribal people neither receive enough payment for their losses nor receive suitable rehabilitation services which results in both economic challenges and cultural dissolution. A broken application of the Forest Rights Act (FRA) causes additional insecurity about land ownership since numerous individual and community forest right claims encounter prolonged waiting times and repeated denials.

2. Weak Implementation of Tribal Governance Laws :

The PESA Act of 1996 gives Gram Sabhas decision-making authority through local resource management and village governance responsibilities although its execution remains inadequate. State employees along with corporate powers systematically violate tribal governance by stripping away their autonomous leadership capabilities throughout various states. The Pathalgadi movement in Jharkhand struggled to enforce self-rule through constitutional provisions because police forces subjected leaders to harsh treatment including undue arrests while labelling them anti-national. The political intervention and contrasting state policies in north eastern states are responsible for weakening the provisions under the Sixth Schedule.

3. State Violence and Criminalization of Tribal Movements :

Adivasi activists together with their leaders experience unjustified detentions and treason allegations alongside police violence during their opposition to land confiscations and government directives. Under the state doctrine of battling Maoists the government has sent in military forces to colonize the tribal zones in Bastar (Chhattisgarh) and Gadchiroli (Maharashtra) as well as certain areas of Jharkhand and Odisha. The situation has led to human rights abuses alongside fake police encounters and forced evictions of people. The Tamil Nadu anti-Sterlite movement demonstrates state violence against resistance because authorities killed 13 protestors when police fired on demonstrators.

4. Economic Marginalization and Unemployment :

The local population does not receive benefits from industrial projects which the state actively promotes through these development initiatives in tribal regions. The project infrastructure brings harm to native lands through eviction and detrimental damage to environmental systems. Most employment opportunities in the unorganized sector present workers with both abysmal pay as well as harsh working environments. High levels of poverty together with malnutrition and limited access to quality education and healthcare remain important issues faced by tribal communities today. The Scheduled Tribe (ST) reservation policy exists as an affirmative action but tribal student dropout rates remain high because of language differences combined with insufficient schools outside urban areas and economic and social problems.

5. Cultural Erosion Identity Crisis :

When Adivasi communities maintain their autonomous identity today they are under mounting pressure while Birsa Munda led his movement to defend tribal heritage.Traditional ways of life earned from their original occupations along with religious conversions and exposure to modern media and education forced tribal communities to lose their native languages and ancestral practices. People continue to fight for an independent Adivasi religious category in the census as a method to defend their unique indigenous heritage. Commercial agriculture combined with deforestation brought great changes to traditional lifestyles by causing resource conflicts and damaging the environment.

6. Legal Loopholes and Weak Implementation of Protective Laws :

Administrative delays as well as corruption and the political relationship between corporations and state institutions render the Forest Rights Act (2006) and PESA (1996) dysfunctional in their effort to give power to tribal communities. Government actions to modify land acquisition legislation have generally benefitted corporate organizations by reducing tribal protections in the consent approval process. Through EIA standard exemptions for industrial projects environmental regulations have

weakened thus diminishing tribal influence during decision-making processes.

Conclusion :

Modern tribal movements face various obstacles in India which stem from fundamental structural differences and economic poverty and cultural diversity reduction that affect native peoples. Trials of implementing significant legislation like the Forest Rights Act (2006) and Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act (1996) have led to weak protection of tribal land along with their governance rights. The emergency displacement of peoples caused by industrial development combined with mining operations and infrastructure expansion creates further distress by pushing numerous tribal groups into economic deprivation. The state performs counter-insurgency operations in tribal territories through military suppression which results in numerous human rights abuses. Even with these unfavourable circumstances tribal movements fight for their rights alongside protecting their territory. Today tribal communities fight for dignity and identity together with self-determination because of leaders including Birsa Munda, Tantia Bhil, and Tilka Manjhi. Through the Niyamgiri resistance the success proves that tribal rights can be secured when communities band together and combine legal actions. The urgent need exists for active policy solutions together with enhanced political support and stronger community-based leadership to solve ongoing difficulties which tribal communities encounter.

References

- Guha, R. (1999). *Savaging the Civilized: Verrier Elwin, His Tribals, and India.* Oxford University Press.
- Xaxa, V. (2008). *State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India.* Pearson.
- Ekka, A. (2011). *Impact of the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 on Tribal Self-Governance.* Economic and Political Weekly, 46(14), 72-78.
- Sundar, N. (2016). *The Burning Forest: India's War in Bastar.* Juggernaut Publications.
- Kumar, K. (2020). *Tribal Land Rights and Resistance: A Study of Jharkhand and Odisha Movements.* Social Change, 50(3), 281-298.
- Ramnath, N. (2018). *Environmental Justice and the Anti-Sterlite Protest in Tamil Nadu.* Seminar Journal, 703, 20-30.
- Banerjee, S. (2022). *The Struggle for Hasdeo: Tribal Resistance Against Coal Mining in Chhattisgarh.* Economic and Political Weekly, 57(9), 48-56.
- Ekka, A. (2011). *Impact of the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 on Tribal Self-Governance.* Economic and Political Weekly, 46(14), 72-78.

- Kumar, K. (2020). *Tribal Land Rights and Resistance: A Study of Jharkhand and Odisha Movements.* Social Change, 50(3), 281-298.
- Ramnath, N. (2018). *Environmental Justice and the Anti-Sterlite Protest in Tamil Nadu.* Seminar Journal, 703, 20-30.
- Sundar, N. (2016). *The Burning Forest: India's War in Bastar.* Juggernaut Publications.
- Xaxa, V. (2008). *State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India.* Pearson.
- Banerjee, S. (2022). *The Struggle for Hasdeo: Tribal Resistance Against Coal Mining in Chhattisgarh.* Economic and Political Weekly, 57(9), 48-56.
- Ekka, A. (2011). *Impact of the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 on Tribal Self-Governance.* Economic and Political Weekly, 46(14), 72-78.

- Kumar, K. (2020). *Tribal Land Rights and Resistance: A Study of Jharkhand and Odisha Movements.* Social Change, 50(3), 281-298.
- Ramnath, N. (2018). *Environmental Justice and the Anti-Sterlite Protest in Tamil Nadu.* Seminar Journal, 703, 20-30.
- Sundar, N. (2016). *The Burning Forest: India's War in Bastar.* Juggernaut Publications.
- Xaxa, V. (2008). *State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India.* Pearson.

- Christoph von Fürer-Haimendorf – *Tribes of India: The Struggle for Survival*

Mob no.- 9205231013

Email- spawan013@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 38-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी

डॉ सुजाता फातरपेकर
असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
एम. एम. कला और विज्ञान महाविद्यालय, सिरसी, कर्नाटक–581402

हिंदी साहित्य की विकास परंपरा में प्रभा खेतान अद्वितीय साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी सहज शैली में नारी के विविध रूपों के साथ जीवन की समस्याएं तथा नारी विमर्श को खुलकर व्यक्त किया है। प्रभा जी ने आधुनिक नारी के संघर्ष को, उसके विमर्श को साहित्य का मुख्य विषय बनाया है। वह नारी स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक रही हैं। वह चाहती हैं कि समाज की जर्जर और रूढ मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करते हुए भारतीय नारी और विदेशी नारी आत्म सम्मान के साथ आत्मनिर्भर होकर जीवन व्यतीत करें। प्रभा जी का समग्र साहित्य उनके अनुभव की उपज है। उनके साहित्य का उनके जीवन से गहरा संबंध है। अनुभूति की गहरी सूक्ष्म और कलात्मक अभिव्यक्ति ही उनका साहित्य है।

प्रभा खेतान जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। वह एक मजबूत इरादों वाली, महत्वाकांक्षी और एक कामयाब व्यवसायी हैं। प्रभा खेतान का जन्म 1 नवंबर 1942 को कोलकाता में एक अमीर मारवाड़ी व्यापारी परिवार में हुआ। प्रभा के जीवन पर अधिकतर उपन्यासों में मारवाड़ी परिवेश का प्रभाव दिखाई देता है। दिखने में सांवली मोटी प्रभा को मां की गोद नसीब नहीं हुई। हमेशा मां की दुत्कार और फटकार ही नसीब हुई। दाईं मां द्वारा प्रभा की परवरिश होती रही। उनका बचपन उपेक्षा के साथ–साथ हर तरह की दुत्कार से गुजरता रहा।

प्रभा खेतान जी के विदेशी संस्कृति पर आधारित 'आओ पेपे घर चले' 'अग्निसंभवा और एड्स' तथा भारतीय मारवाड़ी प्रवेश पर आधारित 'छिन्नमनस्वा', 'पीली आँधी', 'तालाबंदी', स्त्री पर अपने–अपने चेहरे आदि उपन्यासों में भारतीय तथा विदेशी नारी की समस्याओं के विभिन्न रूपों का वर्णन निहित है। नारी को लेकर विविध समस्याओं का चित्रण कर नारी को स्वतंत्र बनाना उनका उद्देश्य रहा है। नई समस्या का समाधान करना उनका प्रमुख लक्ष्य बन गया है। प्रभा जी ने अपने साहित्य के माध्यम से नारी जीवन को व्याख्यायित करते हुए उसकी स्वतंत्रता की हिमायत की है।

प्रभा जी की स्त्री की समस्याओं को लेकर बहुत चिंतित रही हैं। वह 'छिन्नमनस्वा' उपन्यास में कहती है, 'औरत कहाँ नहीं रहती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए, पलंग पर रात रात अकेले करवटें बदलते हुए.... हजारों सालों से इनके ये आंसू बहते आ रहे हैं।'[2] इसलिए मारवाड़ी ग्रामीण स्त्री से लेकर विदेशी स्त्री के मन तक प्रभाजी पहुंच गई। उन्होंने नारी के विविध रूपों को अति सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। मारवाड़ी समाज के रीति रिवाज, अंधविश्वास, नारी का शोषण आदि को आत्मनिर्भर, आर्थिक

दृष्टि से परिपूर्ण बनाना ही प्रभाजी का प्रमुख उद्देश्य रहा है। आधुनिक युग में नारी की त्रासदी, पुरुष का वर्चस्व, आधुनिक नारी को वश में रखने की पुरुष की महत्वाकांक्षा, नारी के बढ़ते कदम को देखकर आक्रांत होना प्रभा जी के साहित्य का उद्देश्य रहा है।

लेखिका अपने उपन्यासों में धार्मिक नारी, परोपकारी नारी, पुरुष प्रधान कर्मठ नारी, आर्थिक क्षेत्र को महत्व देने वाली नारी, रहन–सहन के प्रति सजग नारी, मातृत्व को नकारने वाली चाहने वाली नारी, पशु प्रेमी नारी, विद्रोही नारी जैसे नारी के विविध रूपों के साथ–साथ नारी संबंधी समस्याओं का वर्णन भी किया है। नारी को परिवार में रहते हुए एक बेटी, पत्नी, मां, बहू, सांस और अन्य रिश्तों को बनाए रखते हुए उसे कई समस्याओं से गुजरना पड़ता है। उसमें नारी के शोषण की समस्या, दहेज समस्या, अंधविश्वास की समस्या एवं शोषण की समस्या, विवाहेतर प्रेम संबंध की समस्या, अकेलेपन की समस्या, अधिकारों से वंचित नारी की समस्या, शरीर के गर्णलेपन की समस्या जैसी समस्याओं का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है।

प्रभा जी के उपन्यासों में शोषण नारी का चित्रण है जिनमें संघर्ष और शोषण दोनों की झलक दिखाई देती है। 'छिन्नमस्वा' उपन्यास की प्रिया का बचपन से ही मानसिक तथा भावात्मक शोषण होता है। 'पीली आंधी' की सोमा का वैवाहिक जीवन संघर्ष में तथा यातनाओं से गुजरता है। प्रभा जी के उपन्यासों में स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर आर्थिक शोषण के उदाहरण भी मिलते हैं। 'छिन्नमनस्वा' उपन्यास में पवित्र रिश्ते का यौन शोषण हुआ है। प्रिया पर नौ साल में अपने घर में बड़े भाई द्वारा बलात्कार होता है। उसका यौन शोषण कई सालों तक चलता रहता है। शादी के बाद पति नरेंद्र की भूख मिटाने का प्रिया एक साधन बन जाती है। इस तरह प्रभा जी ने शोषण को बहुत ही गहराई के साथ चित्रण किया है। बलात्कार की समस्या में 'छिन्नमनस्वा' की प्रिया को अपने ही भाई द्वारा वासना का शिकार होना बार–बार होने वाले अत्याचार की त्रासदी से गुजरती है। शायद प्रभा हिंदी साहित्य की पहली लेखिका होगी, जिसने इस प्रकार के रिश्तों के साथ हुए बलात्कार का खुलकर वर्णन किया है।

अकेलेपन की समस्या में 'आओ पेपे घर चले' की आइलिन की व्यथा से अमेरिकी औरत की जीवन के भयानक सच को प्रभा खेतान ने चित्रित किया है। 'अपने–अपने चेहरे' की रमा शादीशुदा राजेंद्र से प्रेम करती है परंतु अंत तक उसे अकेलेपन की सजा भुगतनी पड़ती है। प्रभा जी का कहना है कि स्त्री जब तक आत्मनिर्भर नहीं बनती तब तक वह पीड़ा से मुक्त नहीं हो सकती। इसलिए प्रभा जी नारी को आर्थिक सबलता हासिल करने की सलाह देती है। इस तरह से प्रभा जी ने अपने जीवन में आए अनुभव, भोगा हुआ सच, आसपास के समाज को जाना, नारी की विविध समस्याओं को देखा और उन्हीं को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है, जो सराहनीय है।

प्रभा खेतान का लेखन इस विचारधारा पर आधारित है कि महिलाएं अपने अधिकारों के लिए स्वयं संघर्ष करने में सक्षम हैं। उन्हें अपनी आवाज उठाने का पूरा हक है। उनके उपन्यासों में स्त्री जीवन की पीड़ा और दमन का यथार्थ तो उजागर होता ही है साथ ही आत्मनिर्माण और स्वाभिमान की ओर अग्रसर होती स्त्री की छवि भी सामने आती है। खेतान की नायिकाएं केवल पीड़ित नहीं है, बल्कि परिवर्तन की वाहक भी होती हैं।

प्रभा खेतान का दृष्टिकोण स्त्री की सामाजिक भागीदारी को केंद्र में रखता है। उनके पात्र यह प्रतिपादित करते हैं कि सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में महिलाओं की शिक्षा, जागरूकता और सक्रिय भागीदारी अनिवार्य है। उनके उपन्यासों में नारी के लिए समानता, गरिमा और सम्मान की जो मांग उठाई गई है, वह आज के

परिप्रेक्ष्य में भी उतना ही प्रासंगिक है। जहां महिलाएं अब भी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं, खेतान का लेखन इस संघर्ष की आवाज है जो सशक्त स्पष्ट और दूरगामी भी है।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी की आंतरिक मानसिकता और भावनात्मक संघर्षों को बहुत सूक्ष्मता और गहराई से प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से 'त्यागपत्र' उपन्यास में नायिका की मानसिक दशा और उसके भीतर उठ रहे भावनात्मक द्वंद्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है, जहां वह अपने कर्तव्यों और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच गहरे संघर्ष में फंसी हुई है। प्रभा खेतान ने इस बात को भी रेखांकित किया है कि महिलाओं की लड़ाई केवल सामाजिक या पारिवारिक दबाव के खिलाफ ही नहीं बल्कि वह अपनी आंतरिक संवेदनाओं, विचारों और भावनात्मक असंतुलनों से भी निरंतर जूझती रहती हैं। 'त्यागपत्र' की नायिका इस संघर्ष का जीता जाता उदाहरण है, जो पारिवारिक जिम्मेदारियां और आत्मनिर्भरता की आकांक्षाओं के बीच मानसिक तनाव का सामना करती है।

'त्यागपत्र' की नायिका के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक नियमों और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच संतुलन बनाए रखना महिलाओं के लिए कितना कठिन होता है। उन्होंने यह भी बताया है कि परिवार और समाज की अपेक्षाओं का भारी दबाव नारी की मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर डालता है लेकिन यदि महिला में मानसिक शक्ति और आत्मविश्वास हो तो वह किसी भी चुनौती को पार कर सकती है।

इस प्रकार प्रभा खेतान का साहित्य न केवल नारी के मनोवैज्ञानिक पहलू को गहराई से समझने की कोशिश करता है बल्कि उसे सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में महत्व देने का आग्रह भी करता है। उनका लेखन यह सिखाता है कि नारी के आंतरिक अध्ययन और सम्मान से ही उसका सशक्तिकरण संभव है।

निष्कर्ष :–

प्रभा खेतान ने नारी के संघर्ष को केवल व्यक्तिगत स्तर पर सीमित नहीं रखा बल्कि उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक समग्र पहचान दी है। उनके उपन्यासों में नारी का संघर्ष पितृसत्तात्मक समाज से लेकर आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता तक की यात्रा को दर्शाता है। खेतान ने साहित्य में नारी की जागरूकता और उसके अधिकारों की आवश्यकता को भी अपने साहित्य में प्रमुखता से रखा है। वे कहती हैं कि महिलाएं समाज के हर पहलू में योगदान दे सकती हैं और वह अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए भी संघर्ष करना चाहती है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1) स्त्री पक्ष जनसत्ता सब रंग जून 1999, पृष्ठ 21
2) पीली आंधी, पृष्ठ 185
3) छिन्नमनस्वा, पृष्ठ 20
4) रविंद्र त्रिपाठी, आत्मकथा में नारीवादी विमर्श, हंस पत्रिका अप्रैल 2007, पृष्ठ 76
5) हिंदी शब्द सागर रामचंद्र वर्मा, प्रकाशक :– काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत 2002

दूरभाष – 9663576235

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 41-49

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियाँ : परंपरा से समकालीन विमर्श तक

डॉ. स्वर्ण मणि
वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
टी.पी. कॉलेज, मधेपुरा।

सारांश :

महिला इतिहास लेखन इतिहास–विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में विकसित हुआ है, जिसका उद्देश्य इतिहास में महिलाओं की भूमिका, अनुभवों और योगदानों को उचित स्थान प्रदान करना है। प्रारंभिक इतिहास लेखन में महिलाओं की उपस्थिति सीमित थी तथा उनका चित्रण मुख्यतः पुरुष–केन्द्रित दृष्टिकोण से किया जाता था। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नारीवादी इतिहासकारों ने इस प्रवृत्ति को चुनौती देते हुए महिलाओं के जीवन, श्रम, शिक्षा, सामाजिक स्थिति, राजनीतिक भागीदारी और सांस्कृतिक योगदान को इतिहास के केंद्र में स्थापित किया। भारतीय संदर्भ में महिला इतिहास लेखन ने जाति, वर्ग, धर्म, पितृसत्ता और औपनिवेशिक प्रभावों के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हुए नए विमर्शों को जन्म दिया। समकालीन दौर में यह क्षेत्र जेंडर अध्ययन, अंतर्विभागीय शोध, उपाल्टर्न अध्ययन तथा पहचान–आधारित विमर्शों से समृद्ध हुआ है। यह अध्ययन महिला इतिहास लेखन की परंपरागत से समकालीन यात्रा, उसके वैचारिक विकास तथा इतिहास लेखन में उसके योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द : महिला इतिहास, इतिहास लेखन, स्त्री विमर्श, लैंगिक अध्ययन, समकालीन विमर्श आदि।

परिचय :

इतिहास केवल राजाओं, युद्धों और राजनीतिक घटनाओं का विवरण नहीं है, बल्कि यह समाज के विभिन्न वर्गों के अनुभवों, संघर्षों और योगदानों का भी दस्तावेज है। लंबे समय तक इतिहास लेखन मुख्यतः पुरुष–केन्द्रित रहा, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं की भूमिका और अनुभव इतिहास के पृष्ठों में अपेक्षित स्थान प्राप्त नहीं कर सके। महिलाओं को प्रायः परिवार, गृहस्थ जीवन और सामाजिक परंपराओं तक सीमित करके देखा गया, जबकि शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन में उनके योगदान को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया। इसी पृष्ठभूमि में महिला इतिहास लेखन का उदय हुआ, जिसने इतिहास की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देते हुए महिलाओं को इतिहास के केंद्र में स्थापित करने का प्रयास किया।

बीसवीं शताब्दी के मध्य से नारीवादी आंदोलनों और जेंडर अध्ययन के विकास ने महिला इतिहास लेखन

को नई दिशा प्रदान की।[1] पश्चिमी देशों में गर्डा लर्नर, जोन स्कॉट और एलिजाबेथ फॉक्स–जेनोवीज जैसे इतिहासकारों ने यह स्थापित किया कि महिलाओं का इतिहास केवल उनके जीवन–वृत्तांतों का संग्रह नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, सत्ता संबंधों और लैंगिक असमानताओं के विश्लेषण का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। इसके प्रभाव से इतिहास लेखन में जेंडर को एक विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

भारतीय संदर्भ में महिला इतिहास लेखन ने औपनिवेशिक, राष्ट्रवादी और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोणों की पुर्नव्याख्या की। कुमकुम संगारी, सुधेश वैद, उमा चक्रवर्ती, लता मणि और तनिका सरकार जैसे विद्वानों ने यह दर्शाया कि महिलाओं के अनुभव जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और संस्कृति जैसे अनेक कारकों से प्रभावित होते हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि महिलाओं का इतिहास केवल महिलाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यापक सामाजिक परिवर्तन, सत्ता संरचनाओं और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने का माध्यम है।

चित्र 1 : महिला इतिहास लेखन का विकासक्रम

समकालीन दौर में महिला इतिहास लेखन का स्वरूप और अधिक व्यापक हो गया है। अब इसमें दलित महिलाओं, आदिवासी महिलाओं, श्रमिक महिलाओं तथा अन्य हाशिए के समूहों के अनुभवों को भी शामिल किया जा रहा है। इस प्रकार महिला इतिहास लेखन परंपरागत दृष्टिकोण से आगे बढ़कर बहुआयामी, समावेशी और आलोचनात्मक विमर्श के रूप में विकसित हुआ है, जो इतिहास की समझ को अधिक व्यापक और लोकतांत्रिक बनाता है।

साहित्य समीक्षा :

महिला इतिहास लेखन की प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ में "महान पुरुषों" और राजनीतिक घटनाओं पर केंद्रित मुख्यधारा इतिहास के भीतर महिलाओं की अनुपस्थिति को पहचानने से शुरू होती हैं। गर्डा लर्नर ने स्पष्ट किया कि महिलाओं को इतिहास में केवल जोड़ देना पर्याप्त नहीं है, इतिहास की श्रेणियों, स्रोतों और व्याख्याओं को भी पुनर्विचारित करना आवश्यक है।[2] इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए जोन डब्ल्यू. स्कॉट ने "जेंडर" को ऐतिहासिक विश्लेषण की उपयोगी श्रेणी माना, जिससे इतिहास लेखन जैविक स्त्री–पुरुष भेद से आगे बढ़कर सत्ता–संबंधों, प्रतीकों और सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन करने लगा।

भारतीय संदर्भ में महिला इतिहास लेखन ने औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी इतिहास की सीमाओं को चुनौती दी। संगारी और वैद द्वारा संपादित Recasting Women ने दिखाया कि स्त्री प्रश्न केवल सुधारवादी विमर्श नहीं था, बल्कि धर्म, कानून, जाति, वर्ग, परिवार और औपनिवेशिक सत्ता से जुड़ा हुआ जटिल क्षेत्र था।[3] उमा चक्रवर्ती ने वैदिक स्त्री की आदर्शीकृत छवि की आलोचना करते हुए दिखाया कि प्राचीन भारत का "स्वर्णयुग" स्त्रियों, दासियों और निम्नवर्गीय समूहों की वास्तविक स्थिति को छिपाता है।

लता मणि का सती–विवाद पर अध्ययन महिला इतिहास लेखन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है। उन्होंने बताया कि औपनिवेशिक शासन, धर्मशास्त्र और भारतीय पुरुष सुधारकों के बीच सती पर बहस में स्त्री स्वयं विषय नहीं, बल्कि परंपरा और सभ्यता के प्रतीक के रूप में उपस्थित थी। इससे महिला इतिहास लेखन में "स्त्री की आवाज" और "प्रतिनिधित्व" की समस्या केंद्रीय हुई।[4] जेराल्डिन फोर्ब्स ने आधुनिक भारत में स्त्री शिक्षा, संगठन, राष्ट्रवादी आंदोलन और स्वतंत्रता–उत्तर संक्रमण को जोड़कर महिला इतिहास को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जोड़ा।

समकालीन विमर्श में महिला इतिहास लेखन केवल स्त्रियों की उपलब्धियों का वर्णन नहीं करता, बल्कि पितृसत्ता, जाति, वर्ग, धर्म, राष्ट्रवाद, श्रम, शरीर, यौनिकता और स्मृति जैसे प्रश्नों को साथ लेकर चलता है। तनिका सरकार ने स्त्री, धर्म और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संबंधों का विश्लेषण करते हुए दिखाया कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रियाओं में स्त्री–देह और स्त्री–आचरण को सांस्कृतिक अस्मिता से जोड़ा गया। इस प्रकार महिला इतिहास लेखन परंपरागत "स्त्रियों का इतिहास" से आगे बढ़कर जेंडर इतिहास, अंतर्संबंधी इतिहास और हाशिए की आवाजों के इतिहास में परिवर्तित हुआ है। कुल मिलाकर यह प्रवृत्ति इतिहास को अधिक समावेशी, आलोचनात्मक और सामाजिक न्यायोन्मुख बनाती है।

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य महिला इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना है तथा यह समझना है कि परंपरागत इतिहास लेखन से समकालीन जेंडर विमर्श तक इसकी विकास–यात्रा किस प्रकार हुई है। अध्ययन का उद्देश्य महिला इतिहास लेखन में नारीवादी दृष्टिकोण, जेंडर अध्ययन तथा अंतर्विभागीय शोध की भूमिका का मूल्यांकन करना भी है। इसके अतिरिक्त भारतीय महिला इतिहासकारों के योगदान, महिलाओं के अनुभवों एवं प्रतिनिधित्व से जुड़े प्रमुख मुद्दों तथा समकालीन महिला इतिहास लेखन में उभरते नए विमर्शों का अध्ययन करना भी इसका उद्देश्य है, जिससे इतिहास लेखन की समावेशी और आलोचनात्मक प्रकृति को समझा जा सके।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में महिला इतिहास लेखन की परंपरागत एवं समकालीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने हेतु द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। शोध सामग्री के रूप में शोध–पत्र, पुस्तकें, संपादित ग्रंथ, जर्नल लेख, ई–पुस्तकें तथा प्रतिष्ठित अकादमिक डेटाबेस से प्राप्त साहित्य का अध्ययन किया गया। चयनित स्रोतों का विषयवस्तु विश्लेषण एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया, जिससे महिला इतिहास लेखन के वैचारिक विकास, प्रमुख विमर्शों तथा इतिहासलेखन में आए परिवर्तनों को समझा जा सके। अध्ययन का केंद्र नारीवादी इतिहासलेखन, जेंडर अध्ययन तथा भारतीय

महिला इतिहास लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना है।

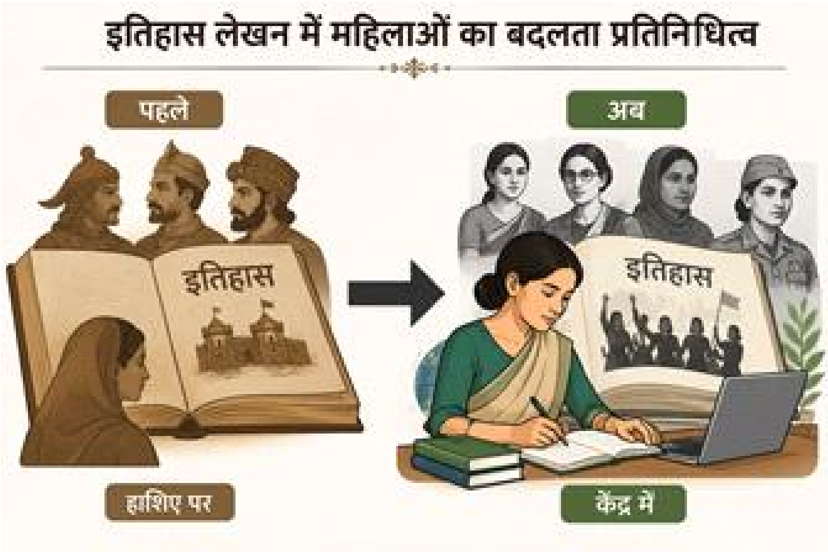

चित्र 2 : इतिहास लेखन में महिलाओं का बदलता प्रतिनिधित्व

तालिका 1 : शोध पद्वति का स्वरूप

घटक	विवरण
शोध का प्रकार	गुणात्मक एवं वर्णनात्मक
अध्ययन की प्रकृति	विश्लेषणात्मक
डेटा का स्रोत	द्वितीयक स्रोत
डेटा संग्रहण विधि	पुस्तकें, शोध–पत्र, जर्नल एवं ई–स्रोत
विश्लेषण तकनीक	विषयवस्तु एवं तुलनात्मक विश्लेषण
अध्ययन का क्षेत्र	महिला इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियाँ

तालिका 2 : उपयोग किए गए स्रोतों का वर्गीकरण

स्रोत का प्रकार उद्देश्य :

शोध–पत्र	सैद्धांतिक एवं वैचारिक विश्लेषण
पुस्तकें	ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं अवधारणात्मक अध्ययन
जर्नल लेख	समकालीन विमर्शों की पहचान
संपादित ग्रंथ	विभिन्न दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन
ऑनलाइन अकादमिक डेटाबेस	अद्यतन एवं प्रमाणिक जानकारी प्राप्त करना

महिला इतिहास लेखन की परंपरागत प्रवृत्तियाँ :

महिला इतिहास लेखन के विकास से पूर्व इतिहास का स्वरूप मुख्यतः राजनीतिक, सैन्य और शासक वर्ग की गतिविधियों पर आधारित था। इस प्रकार के इतिहास लेखन में महिलाओं की भूमिका को या तो उपेक्षित किया

गया या उन्हें केवल पुरुषों के सहायक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया। परंपरागत इतिहास लेखन समाज की पितृसत्तात्मक संरचना से प्रभावित था, जिसके कारण महिलाओं के अनुभव, संघर्ष, श्रम और योगदान इतिहास की मुख्यधारा में स्थान नहीं पा सके। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नारीवादी इतिहासकारों ने इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए महिलाओं के दृष्टिकोण को इतिहास लेखन का अभिन्न अंग बनाने का प्रयास किया।

1. प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास लेखन में महिलाओं की स्थिति :

प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास लेखन में महिलाओं का उल्लेख सीमित और चयनात्मक रूप में मिलता है। वैदिक साहित्य, पुराणों, धार्मिक ग्रंथों तथा राजकीय अभिलेखों में महिलाओं का वर्णन मुख्यतः पत्नी, माता, पुत्री अथवा देवी के रूप में किया गया है। इन स्रोतों में महिलाओं की सामाजिक भूमिका का उल्लेख तो मिलता है, किंतु उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व, आर्थिक योगदान और राजनीतिक सहभागिता पर अपेक्षाकृत कम प्रकाश डाला गया है।

चित्र 3 : महिला इतिहास लेखन में परिवर्तन के प्रमुख कारक

मध्यकालीन इतिहास लेखन भी मुख्यतः राजवंशों, युद्धों और शासकों की उपलब्धियों पर केंद्रित रहा। दरबारी इतिहासकारों ने रानियों, राजकुमारियों और कुलीन वर्ग की महिलाओं का उल्लेख किया, परंतु सामान्य महिलाओं के जीवन, श्रम और सामाजिक अनुभवों को इतिहास का विषय नहीं बनाया गया। परिणामस्वरूप इतिहास में महिलाओं की वास्तविक स्थिति और उनके योगदान का समुचित चित्रण नहीं हो सका। इस काल का इतिहास महिलाओं को प्रायः सांस्कृतिक और नैतिक आदर्शों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करता है, न कि सामाजिक परिवर्तन के सक्रिय कारक के रूप में।

2. औपनिवेशिक एवं राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में महिला दृष्टि :

औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एक महत्वपूर्ण बहस का विषय बनी। ब्रिटिश लेखकों और प्रशासकों ने भारतीय महिलाओं की स्थिति को भारतीय समाज की पिछड़ेपन की पहचान के

रूप में प्रस्तुत किया। सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा जीवन जैसे मुद्दों को औपनिवेशिक विमर्श में विशेष महत्व दिया गया। इसके प्रत्युत्तर में भारतीय समाज सुधारकों और राष्ट्रवादी नेताओं ने महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह और सामाजिक सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया।

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में महिलाओं को राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान और नैतिक शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू और एनी बेसेंट जैसी महिलाओं के योगदान को रेखांकित किया गया, किंतु अधिकांश इतिहास लेखन अभी भी पुरुष–प्रधान दृष्टिकोण से प्रभावित रहा। महिलाओं के दैनिक जीवन, श्रम, सामाजिक संघर्षों और अनुभवों को सीमित महत्व मिला। इस प्रकार औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने महिलाओं को इतिहास में कुछ स्थान अवश्य प्रदान किया, परंतु उनकी स्वतंत्र ऐतिहासिक एजेंसी को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया। यही सीमाएँ आगे चलकर महिला इतिहास लेखन और नारीवादी इतिहासलेखन के विकास का आधार बनीं।

महिला इतिहास लेखन में परिवर्तन के कारक :

महिला इतिहास लेखन में परिवर्तन एक क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम है, जो सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक और शैक्षणिक परिवर्तनों से प्रभावित रही है। लंबे समय तक इतिहास लेखन पुरुष–केन्द्रित दृष्टिकोण पर आधारित था, जिसके कारण महिलाओं के अनुभव, संघर्ष और योगदान इतिहास के मुख्य विमर्श से बाहर रहे। बीसवीं शताब्दी में विभिन्न सामाजिक आंदोलनों और वैचारिक परिवर्तनों ने इस स्थिति को चुनौती दी तथा महिला इतिहास लेखन के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

महिला इतिहास लेखन में परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण कारक नारीवादी आंदोलन रहा है। विशेष रूप से 1960 और 1970 के दशक के दूसरे चरण के नारीवादी आंदोलन ने इतिहासकारों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति और भूमिका का व्यवस्थित अध्ययन आवश्यक है। नारीवादी विद्वानों ने यह प्रश्न उठाया कि इतिहास की मुख्यधारा में महिलाओं की अनुपस्थिति क्यों है और उनके अनुभवों को कैसे शामिल किया जाना चाहिए। इस विचारधारा ने इतिहास लेखन के विषय, स्रोत और पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

दूसरा प्रमुख कारक जेंडर अध्ययन का विकास है। जेंडर को केवल जैविक भेद के रूप में न देखकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्माण के रूप में समझा जाने लगा। इससे इतिहासकारों ने महिलाओं और पुरुषों के बीच सत्ता–संबंधों, सामाजिक भूमिकाओं और असमानताओं का विश्लेषण करना प्रारंभ किया। जोन डब्ल्यू. स्कॉट जैसे विद्वानों ने जेंडर को ऐतिहासिक विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण श्रेणी के रूप में स्थापित किया।

सामाजिक इतिहास और उपाल्टर्न अध्ययन का उदय भी महिला इतिहास लेखन में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण बना। इन अध्ययनों ने इतिहास को केवल शासकों और अभिजात वर्ग तक सीमित न रखकर सामान्य लोगों, श्रमिकों, किसानों, दलितों, आदिवासियों और महिलाओं के अनुभवों को भी इतिहास का विषय बनाया। इससे महिलाओं के जीवन और संघर्षों को नए दृष्टिकोण से समझने का अवसर मिला।

इसके अतिरिक्त, शिक्षा के प्रसार, उच्च शिक्षा संस्थानों में महिला अध्ययन केंद्रों की स्थापना, शोध–पद्धतियों के विकास तथा अभिलेखीय स्रोतों की उपलब्धता ने भी महिला इतिहास लेखन को समृद्ध किया। मौखिक इतिहास, आत्मकथाओं, पत्रों, संस्मरणों और व्यक्तिगत दस्तावेजों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में स्वीकार

किए जाने से महिलाओं के अनुभवों का अधिक व्यापक अध्ययन संभव हुआ।

परिणाम एवं विश्लेषण :

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महिला इतिहास लेखन ने इतिहास की पारंपरिक पुरुष–केन्द्रित संरचना को चुनौती देते हुए इतिहास की विषय–वस्तु, स्रोतों और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। नारीवादी इतिहासकारों के प्रयासों के परिणामस्वरूप महिलाओं के अनुभव, संघर्ष, श्रम, सामाजिक योगदान और राजनीतिक सहभागिता को इतिहास के केंद्र में स्थान प्राप्त हुआ है। समकालीन इतिहास लेखन अब केवल घटनाओं और शासकों तक सीमित नहीं रहकर समाज के विविध समूहों और उनके अनुभवों का समावेश करने लगा है।

1. नारीवादी इतिहासलेखन का प्रभाव :

नारीवादी इतिहासलेखन ने इतिहास की पारंपरिक अवधारणाओं की आलोचना करते हुए यह स्थापित किया कि इतिहास में महिलाओं की अनुपस्थिति एक वैचारिक समस्या है। इस दृष्टिकोण ने महिलाओं को केवल ऐतिहासिक घटनाओं की दर्शक नहीं, बल्कि परिवर्तन की सक्रिय भागीदार के रूप में प्रस्तुत किया। नारीवादी इतिहासकारों ने सामाजिक संस्थाओं, परिवार, विवाह, श्रम और शिक्षा जैसे विषयों को इतिहास लेखन के केंद्र में लाया। इससे इतिहास अधिक लोकतांत्रिक और समावेशी बना।

2. महिला अनुभवों का इतिहास में समावेश :

महिला इतिहास लेखन की सबसे बड़ी उपलब्धि महिलाओं के अनुभवों को इतिहास का अभिन्न भाग बनाना है। पहले इतिहास मुख्यतः शासकों, युद्धों और राजनीतिक घटनाओं तक सीमित था, जबकि अब महिलाओं के दैनिक जीवन, श्रम, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक संघर्षों तथा सांस्कृतिक योगदानों का अध्ययन भी इतिहास का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। मौखिक इतिहास, आत्मकथाओं, संस्मरणों और निजी दस्तावेजों के उपयोग ने महिला अनुभवों को सामने लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3. जाति, वर्ग और लैंगिकता आधारित नए विमर्श :

समकालीन महिला इतिहास लेखन केवल महिलाओं के अध्ययन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और लैंगिकता जैसे कारकों के साथ महिलाओं के संबंधों का भी विश्लेषण करता है। दलित, आदिवासी, श्रमिक और अल्पसंख्यक महिलाओं के अनुभवों को शामिल किए जाने से इतिहास लेखन अधिक व्यापक और बहुआयामी हुआ है। अंतर्संबंधता की अवधारणा ने यह स्पष्ट किया कि सभी महिलाओं के अनुभव समान नहीं होते, बल्कि उनकी सामाजिक स्थिति विभिन्न संरचनात्मक कारकों से प्रभावित होती है।

4. समकालीन इतिहास लेखन की चुनौतियाँ :

यद्यपि महिला इतिहास लेखन ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, फिर भी अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। महिलाओं से संबंधित ऐतिहासिक स्रोतों की कमी, अभिलेखीय दस्तावेजों में पक्षपात, ग्रामीण एवं हाशिए की महिलाओं की सीमित उपस्थिति तथा डिजिटल स्रोतों की प्रामाणिकता जैसी समस्याएँ शोध को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, अनेक क्षेत्रों में अभी भी पुरुष–प्रधान दृष्टिकोण इतिहास लेखन को प्रभावित करता है, जिसके कारण महिलाओं के अनुभवों का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता।

तालिका 3 : महिला इतिहास लेखन में प्रमुख परिवर्तन

पारंपरिक इतिहास लेखन	समकालीन महिला इतिहास लेखन
राजनीतिक एवं सैन्य घटनाओं पर केंद्रित	सामाजिक, सांस्कृतिक एवं लैंगिक विषयों पर केंद्रित
पुरुष–प्रधान दृष्टिकोण	जेंडर–संवेदनशील दृष्टिकोण
शासक वर्ग पर ध्यान	सामान्य एवं हाशिए के समूहों पर ध्यान
सीमित स्रोतों का उपयोग	मौखिक इतिहास, आत्मकथा एवं निजी दस्तावेजों का उपयोग

तालिका 4 : प्रमुख परिणाम एवं उनके प्रभाव

प्रमुख परिणाम	इतिहास लेखन पर प्रभाव
नारीवादी इतिहासलेखन का विकास	महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका की पुर्नस्थापना
महिला अनुभवों का समावेश	इतिहास की विषय–वस्तु का विस्तार
जाति–वर्ग–लैंगिकता आधारित अध्ययन	बहुआयामी एवं समावेशी विश्लेषण
नए स्रोतों का उपयोग	हाशिए की आवाजों को स्थान
जेंडर अध्ययन का प्रभाव	सत्ता–संबंधों और असमानताओं की नई व्याख्या

अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि महिला इतिहास लेखन ने इतिहास की पारंपरिक सीमाओं को विस्तारित करते हुए उसे अधिक समावेशी, आलोचनात्मक और सामाजिक यथार्थ के निकट बनाया है। यह प्रवृत्ति भविष्य में भी इतिहास लेखन की दिशा को प्रभावित करती रहेगी।

निष्कर्ष :

महिला इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियाँ इतिहास–विज्ञान के विकास में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में उभरी हैं। परंपरागत इतिहास लेखन में महिलाओं की भूमिका सीमित और गौण रूप में प्रस्तुत की जाती थी, जबकि समकालीन इतिहासलेखन ने महिलाओं के अनुभवों, संघर्षों, योगदानों और सामाजिक स्थिति को इतिहास के केंद्र में स्थापित किया है। नारीवादी इतिहासलेखन, जेंडर अध्ययन तथा उपाल्टर्न विमर्शों ने इतिहास की पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती देकर उसे अधिक समावेशी और बहुआयामी बनाया है। इसके परिणामस्वरूप जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और लैंगिकता जैसे आयामों के साथ महिलाओं के जीवन का व्यापक अध्ययन संभव हुआ है। यद्यपि स्रोतों की उपलब्धता, प्रतिनिधित्व की सीमाएँ और वैचारिक चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, फिर भी महिला इतिहास लेखन ने इतिहास को अधिक लोकतांत्रिक, संवेदनशील और यथार्थपरक स्वरूप प्रदान किया है। भविष्य में यह क्षेत्र इतिहास की नई व्याख्याओं और सामाजिक न्याय आधारित शोध को और अधिक समृद्ध करेगा।

संदर्भ :

1. लर्नर, गर्डा. (1975). प्लेसिंग वीमेन इन हिस्ट्री : डेफिनिशन्स एंड चौलेंजेस। फेमिनिस्ट स्टडीज, 3(1/2), 5–14।
2. स्कॉट, जोन डब्ल्यू. (1986). जेंडर : ए यूजफुल कैटेगरी ऑफ हिस्टोरिकल एनालिसिस। द अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू, 91(5), 1053–1075।

3. संगारी, कुमकुम एवं वैद, सुधेश (संपा.). (1989). रीकास्टिंग वीमेन : एसेज इन कॉलोनियल हिस्ट्री। नई दिल्ली : काली फॉर वीमेन।
4. चक्रवर्ती, उमा. (1989). व्हाटएवर हैपन्ड टू द वैदिक दासी?। संगारी, कुमकुम एवं वैद, सुधेश (संपा.), रीकास्टिंग वीमेन : एसेज इन कॉलोनियल हिस्ट्री में। नई दिल्ली : काली फॉर वीमेन।
5. मणि, लता. (1987). कन्टेन्शियस ट्रेडिशन्स : द डिबेट ऑन सती इन कॉलोनियल इंडिया। कल्चरल क्रिटीक, 7, 119–156।
6. फोर्ब्स, जेराल्डिन. (1996). वीमेन इन मॉडर्न इंडिया। कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. सरकार, तनिका. (2001). हिन्दू वाइफ, हिन्दू नेशन। नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक।
8. फॉक्स–जेनोवीज, एलिजाबेथ. (1982). प्लेसिंग वीमेन्स हिस्ट्री इन हिस्ट्री। न्यू लेफ्ट रिव्यू।
9. चक्रवर्ती, उमा एवं राय, कुमकुम. (1988). इन सर्च ऑफ आवर पास्ट। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली।
10. सोम, राधिका. (1998). वीमेन इन मॉडर्न इंडिया : एक समीक्षा। इंडियन जर्नल ऑफ जेंडर स्टडीज।

1. लर्नर, गर्डा. Placing Women in History : Definitions and Challenges. Feminist Studies, 1975.
2. जोन डब्ल्यू. स्कॉट ने अपने प्रसिद्ध लेख Gender : A Useful Category of Historical Analysis (1986)
3. नारीवादी इतिहासलेखन का उद्देश्य इतिहास में महिलाओं की अनुपस्थिति को चुनौती देना तथा उनके अनुभवों, संघर्षों और योगदानों को ऐतिहासिक विमर्श में शामिल करना है।
4. गर्डा लर्नर ने महिला इतिहास को मुख्यधारा इतिहासलेखन में समाविष्ट करने के साथ–साथ इतिहास की अवधारणाओं के पुनर्मूल्यांकन पर बल दिया।
5. जोन डब्ल्यू. स्कॉट के अनुसार जेंडर सत्ता–संबंधों और सामाजिक संरचनाओं को समझने का एक विश्लेषणात्मक उपकरण है।
6. कुमकुम संगारी और सुधेश वैद द्वारा संपादित Recasting Women (1989) भारतीय महिला इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।
7. उमा चक्रवर्ती ने प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए पितृसत्तात्मक संरचनाओं की ऐतिहासिक जड़ों को स्पष्ट किया है।
8. लता मणि के सती–विमर्श संबंधी अध्ययन ने औपनिवेशिक काल में महिलाओं की आवाज के प्रतिनिधित्व के प्रश्न को केंद्र में रखा।
9. जेराल्डिन फोर्ब्स ने आधुनिक भारत में महिलाओं की शिक्षा, राजनीति और सामाजिक सहभागिता को ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जोड़ा।
10. जेंडर अध्ययन ने इतिहासलेखन को पुरुष–केन्द्रित दृष्टिकोण से आगे बढ़ाकर लैंगिक सत्ता–संबंधों के विश्लेषण की दिशा दी।
11. अंतर्संबंधता की अवधारणा के अनुसार जाति, वर्ग, लिंग और अन्य सामाजिक पहचानें मिलकर व्यक्ति के अनुभवों को आकार देती हैं।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 50-64

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

School Libraries as Catalysts for Quality Education : Analysing Their Role in Achieving SDG 4

Hanuman Raju Gunturi
Librarian, SCERT, Andhra Pradesh.
Research Scholar, Dravidian University, Kuppam A.P.

Abstract :

The United Nations Sustainable Development Goal 4 (SDG 4) aspires to ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all by 2030. School libraries, often regarded as the intellectual heart of educational institutions, constitute one of the most potent yet under-utilised instruments in the pursuit of this goal. This article examines the multifaceted role that school libraries play in operationalising SDG 4 targets at the grassroots level. Drawing on national and international frameworks including UNESCO's School Library Manifesto, India's National Education Policy (NEP) 2020, NCF-SE 2023, and the NIPUN Bharat initiative, this paper argues that well-resourced, professionally managed school libraries directly support equitable access to knowledge, promote foundational literacy, cultivate information-literate learners, and foster a culture of lifelong reading. The paper also addresses structural challenges such as inadequate infrastructure, budgetary constraints, and the digital divide, and proposes actionable recommendations for policymakers, educational administrators, and library professionals to leverage school libraries as strategic instruments for achieving SDG 4.

Keywords : *SDG 4, School Library, Quality Education, Information Literacy, NEP 2020, Lifelong Learning, Inclusive Education, Digital Library, NIPUN Bharat, NCF-SE 2023*

1. Introduction :

In September 2015, world leaders adopted the 2030 Agenda for Sustainable Development, comprising seventeen Sustainable Development Goals. SDG 4, the education goal, stands at the heart of this transformative agenda. Its ten targets collectively call for universal access to quality pre-primary, primary, secondary, and tertiary education; elimination

of gender and wealth-based disparities; universal literacy and numeracy; and expanded opportunities for technical, vocational, and lifelong learning.

Despite significant progress in enrolment rates globally, the learning crisis remains acute. According to UNESCO's World Education Report (2023), over 300 million children worldwide lack foundational reading and mathematics skills. In India, the Annual Status of Education Report (ASER) consistently reveals alarming learning gaps at the elementary level. Addressing this crisis demands not only systemic policy reform but also sustained investment in learning-enabling environments, of which the school library is arguably the most accessible and democratising.

School libraries have long been recognised as essential learning environments that extend the educational experience beyond the classroom. The UNESCO/IFLA School Library Manifesto (1999, revised 2015) affirms that the school library "provides information and ideas that are fundamental to functioning successfully in today's information and knowledge-based society." Yet, in many low- and middle-income countries, including large parts of India, school libraries remain neglected , understaffed, under-resourced, and underused.

This paper presents a comprehensive analysis of how school libraries, when adequately supported and professionally managed, serve as direct vehicles for achieving SDG 4 and its associated targets. The discussion is grounded in global frameworks and contextualised within the Indian educational landscape, with particular reference to Andhra Pradesh's initiatives under the Samagra Shiksha Abhiyan.

2. Objectives of the Study :

The present study is guided by the following specific objectives :

1. To examine the alignment between school library functions and the targets embedded within SDG 4 (Quality Education).
2. To analyse the theoretical and empirical basis for positioning school libraries as instruments of equitable and quality education.
3. To assess the specific roles that school libraries play in promoting foundational literacy, information literacy, inclusive education, and lifelong learning.
4. To identify the structural and systemic challenges that impede school libraries from realising their SDG 4 potential, with particular reference to the Indian context.

5. To propose actionable policy and programmatic recommendations for leveraging school libraries as strategic educational infrastructure in pursuit of the 2030 Agenda.

3. Scope and Delimitations :

The study is conceptual and analytical in nature. It focuses primarily on school libraries at the elementary and secondary levels (Grades 1–12) within the Indian public education system, with illustrative references to global frameworks and international research. The discussion is oriented towards government and government-aided schools, where library deficits are most acute and the policy levers for reform are most directly available.

The article draws extensively on the policy environment of Andhra Pradesh including the frameworks of SCERT AP, Samagra Shiksha, NIPUN Bharat, NCF-SE 2023, and the GFLN as a state-level case study. However, the arguments and recommendations are broadly applicable across Indian states and, with contextual adaptation, to school library systems in other developing countries.

The study does not undertake primary field research or statistical analysis of library usage data. It is delimited to a review and synthesis of existing literature, national and international policy documents, research studies, and institutional frameworks relevant to school libraries and SDG 4.

4. Research Methodology

4.1 Research Design :

This study adopts a qualitative, descriptive research design based on a systematic review of literature and document analysis. The research approach is interpretive and policy-oriented, seeking to synthesise dispersed evidence into a coherent analytical framework that connects school library theory and practice to the SDG 4 architecture.

4.2 Nature of Study :

The study is primarily a conceptual-analytical paper. It does not collect primary data through surveys, interviews, or field observation. Instead, it draws on secondary sources like published research, policy documents, institutional reports, and statistical datasets to construct a structured argument about the role of school libraries in achieving SDG 4.

4.3 Sources of Data :

Data and evidence were sourced from the following categories of secondary literature:

- **International policy frameworks and manifestos :** UNESCO/IFLA School Library Manifesto (2015), UNESCO's Global Education Monitoring Report (2023), and the UN 2030 Agenda for Sustainable Development
- **National education policies :** National Education Policy 2020, NCF-SE 2023, NIPUN Bharat Guidelines, and Samagra Shiksha Abhiyan programme documents
- **State-level frameworks :** SCERT Andhra Pradesh circulars, GFLN guidelines (Rc.No.ESE02/264/2026), and AWP&B planning documents
- **Peer-reviewed research studies:** Published studies in library science, education, and learning outcomes research (Lance & Kachel, 2018; Krashen, 2004; Williams et al., 2001)
- **Statistical databases :** ASER annual reports (2018–2023), UDISE+ data, UNESCO Institute for Statistics
- **Institutional reports :** IFLA School Library Guidelines, American Association of School Librarians (AASL) standards, National Book Trust India publications

4.4 Methods of Analysis

The study employs the following analytical methods :

- **Document Analysis :** Systematic reading and critical interpretation of policy texts, manifestos, and government orders to identify how school libraries are positioned within the SDG 4 framework
- **Comparative Framework Mapping** : Alignment of SDG 4 targets (4.1–4.7, 4.a–4.c) with specific school library functions and services, presented in structured tabular form
- **Literature Synthesis :** Thematic synthesis of empirical research on school library impact on reading achievement, information literacy, and learning outcomes
- **Contextual Analysis :** Interpretation of global findings within the specific socio-educational context of India, with emphasis on the Andhra Pradesh policy environment

4.5 Limitations :

The study acknowledges the following limitations. First, the absence of primary data collection means that findings are inferential rather than directly observed. Second, the Indian school library landscape is highly heterogeneous conditions in urban private schools differ vastly

from those in rural government schools and the analysis necessarily works with generalisations. Third, library impact research from India is comparatively sparse, necessitating reliance on international studies whose direct applicability to Indian contexts requires cautious interpretation. These limitations notwithstanding, the study provides a robust conceptual and evidence-based foundation for policy discourse on school libraries and SDG 4.

5. SDG 4: Framework and Targets :

SDG 4 "Ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all" encompasses ten targets (4.1 to 4.7, plus 4.a, 4.b, and 4.c) that together constitute a comprehensive vision of education reform. The targets most directly relevant to school libraries are outlined in Table 1.

Table 1: SDG 4 Targets and Their Relevance to School Libraries

Target	Description	Library Connection
4.1	Universal primary and secondary education completion with quality learning outcomes	Reading corners and graded libraries support learning continuity and skill acquisition
4.2	Early childhood development and pre-primary education access	Picture books, story corners, and emergent literacy resources in libraries
4.3	Equal access to technical, vocational and higher education	Resource sharing and digital libraries bridge access gaps
4.4	Youth and adults with relevant technical and vocational skills	Libraries provide skill-development resources and self-directed learning materials
4.5	Elimination of gender disparities and equal access for vulnerable groups	Libraries offer gender-neutral and inclusive spaces for learning
4.6	Universal youth and adult literacy and numeracy	Foundational reading promotion and numeracy resources in school libraries

Target	Description	Library Connection
4.7	Education for sustainable development, global citizenship, and cultural diversity	Curated collections on SDGs, environment, citizenship, and global cultures
4.a	Build and upgrade inclusive, safe, and effective learning facilities	Well-designed libraries are model inclusive learning environments

This mapping reveals that school libraries do not tangentially relate to SDG 4, they are structurally embedded in its achievement architecture. Libraries are learning spaces, knowledge access points, equity enablers, and literacy incubators, all simultaneously.

6. Theoretical Framework :

The relationship between school libraries and SDG 4 can be examined through three converging theoretical lenses :

6.1 Information Capital Theory :

Bourdieu's concept of cultural capital, extended into the information age as 'information capital,' suggests that access to quality information resources is a form of capital that enables social mobility. School libraries democratise information capital by providing every child, irrespective of socioeconomic background with access to books, databases, and knowledge resources that affluent families take for granted.

6.2 Constructivist Learning Theory :

Vygotsky's sociocultural theory and Dewey's experiential learning philosophy both affirm that meaningful learning occurs when students actively engage with information in a supported environment. The school library, as a self-directed learning space stocked with varied resources, is the natural institutional realisation of constructivist pedagogy. Students who use libraries regularly develop higher-order thinking skills such as analysis, synthesis, evaluation that align precisely with the competency frameworks articulated in NCF-SE 2023.

6.3 Social Inclusion Framework :

UNESCO's Inclusive Education framework positions equitable access to learning resources as a prerequisite for inclusive education. Children with disabilities, girls, first-

generation learners, and children from marginalised communities often face barriers within formal classroom settings. The school library, when designed as an inclusive, low-pressure, child-friendly space offers an alternative pathway to learning that is non-stigmatising and self-paced.

7. Role of School Libraries in Achieving SDG 4

7.1 Promoting Foundational Literacy and Numeracy (SDG 4.6) :

Foundational literacy is the ability to read and comprehend by the end of Grade 3. It is universally acknowledged as the most critical predictor of long-term educational attainment. India's NIPUN Bharat Mission (2021) targets universal foundational literacy and numeracy by Grade 3 by 2026–27. School libraries are uniquely positioned to support this mission through:

- Graded reading programmes using levelled books tailored to early readers
- Reading aloud sessions that develop phonological awareness and vocabulary
- Story corners with picture books, bilingual texts, and mother-tongue materials
- Integration with NIPUN assessments through supplementary reading worksheets

Research by Krashen (2004) in The Power of Reading demonstrates that access to a wide variety of books significantly predicts reading proficiency. Students in schools with functional libraries consistently outperform peers in schools without them on reading assessments.

7.2 Ensuring Equitable Access to Knowledge (SDG 4.1 and 4.5) :

Quality education cannot be achieved in the absence of equity. The school library functions as an equaliser the one space within a school where a student from a remote rural household has access to the same books, magazines, and databases as a student from an urban elite school. This equity dimension is particularly crucial in the Indian context, where the digital divide and socioeconomic inequality create stark disparities in access to learning materials.

Under Samagra Shiksha, the Government of India has allocated library grants to government schools. In Andhra Pradesh, the GFLN framework mandates the establishment of reading-rich environments as part of the state's foundational literacy programme. These provisions, when implemented effectively, make the school library a direct instrument of equity.

7.3 Developing Information Literacy and 21st-Century Skills (SDG 4.4)

The concept of information literacy is the ability to identify, locate, evaluate, and use information effectively is foundational to lifelong learning and active citizenship. The American Association of School Librarians (AASL) framework and UNESCO's Media and Information Literacy (MIL) curriculum both identify the school library as the primary site for developing these competencies.

In the context of SDG 4.4, which calls for youth to acquire skills relevant to employment and entrepreneurship, information literacy is not a soft skill but a core competency. School librarians, when trained as information literacy instructors, can teach students to:

- Formulate effective research questions
- Critically evaluate sources for credibility, bias, and relevance
- Use databases, catalogues, and digital resources responsibly
- Cite and acknowledge intellectual property ethically
- Synthesise information from multiple sources into coherent arguments

7.4 Supporting Inclusive and Special Needs Education (SDG 4.5) :

NEP 2020 mandates inclusive classrooms and special educational support for children with disabilities. School libraries can extend this mandate by providing :

- Large-print books and audiobooks for visually impaired students
- Sign-language resources and pictorial books for hearing-impaired learners
- Low-reading-level materials for students with learning difficulties
- Quiet, distraction-free study zones sensitive to neurodivergent learners

An inclusive library design, incorporating universal design principles, transforms the library from a general resource room into a specialised support centre for diverse learners.

7.5 Fostering Lifelong Learning and Reading Culture (SDG 4.3 and 4.7) :

Lifelong learning is the continuous, voluntary, and self-motivated pursuit of knowledge. It is a defining aspiration of SDG 4. Reading habit formation during the school years is the most reliable predictor of adult engagement in lifelong learning. UNESCO's 'Reading the World' campaign and India's 'National Book Trust' programmes consistently underscore that children who develop reading habits early are more likely to engage in continuous learning throughout their lives.

School libraries contribute to this goal through :

- Book clubs, reading circles, and inter-school reading challenges
- Author visits, storytelling sessions, and literary events
- Summer reading programmes and holiday reading lists
- Displays connecting library resources to current events and global issues
- Integration of SDG-themed collections like books on environment, peace, justice, and citizenship

7.6 Digital Libraries and Bridging the Digital Divide (SDG 4.a) :

SDG 4.a calls for the provision of inclusive and effective learning environments, including adequate ICT infrastructure. Digital school libraries equipped with computers, internet connectivity, e-book collections, and access to national platforms such as DIKSHA, NDLI, ePathshala, and SWAYAM constitute the frontline of India's digital education strategy.

These platforms, developed under the National Digital Library of India (NDLI) and Ministry of Education initiatives, offer millions of learning resources in multiple Indian languages. A school library with a designated digital learning zone can transform access to these resources from theoretical availability to practical use, particularly in rural and semi-urban schools where home internet connectivity remains limited.

8. Evidence Base: Research and Data :

A growing body of empirical evidence establishes a positive correlation between school library quality and student learning outcomes:

Table 2: Selected Research Evidence on School Libraries and Learning Outcomes

Study / Source	Key Finding	Implication for SDG 4
Lance & Kachel (2018) American Libraries	Schools with certified librarians show significantly higher reading and writing scores	Supports SDG 4.1 - quality learning outcomes
Krashen (2004) The Power of Reading	Free voluntary reading, enabled by library access, improves literacy more than direct instruction alone	Supports SDG 4.6- universal literacy

Study / Source	Key Finding	Implication for SDG 4
Williams et al. (2001) Scottish Executive Study	Quality of school library provision is significantly associated with higher pupil attainment across all subjects	Supports SDG 4.1 and 4.a
UNESCO (2015) School Library Manifesto	Libraries support self-directed learning, contribute to literacy and information literacy, and promote active citizenship	Supports SDG 4.4, 4.7
ASER (2023) India	Only 44% of Grade 5 students can read a Grade 2 text, highlighting the urgent need for supplementary reading environments	Urgently supports NIPUN Bharat and SDG 4.6

9. Challenges Confronting School Libraries in India :

Despite their potential, school libraries in India particularly in government schools face formidable structural and systemic challenges that impede their contribution to SDG 4:

9.1 Inadequate Infrastructure and Resources :

A large proportion of government schools lack a dedicated library room. Libraries that do exist often hold outdated, damaged, or irrelevant collections that fail to engage contemporary learners. The Unified District Information System for Education (UDISE+) data reveals significant infrastructure deficits across states.

9.2 Absence of Trained Library Personnel :

Most elementary and secondary schools do not have qualified school librarians. Library duties are often assigned to teachers on an ad hoc basis, resulting in libraries remaining locked for most of the school day. The NEP 2020's recommendation for trained library and resource coordinators remains largely unimplemented.

9.3 Financial Constraints :

Samagra Shiksha library grants, while welcome, are modest relative to the scale of need. The gap between sanctioned funds and actual procurement due to procurement delays,

bureaucratic processes, and underutilisation of grants further limits impact. The AWP&B framework provides a mechanism for scaling library budgets, but annual approval cycles and conditionalities slow implementation.

9.4 Digital Divide :

Digital school libraries require reliable electricity, internet connectivity, and computer infrastructure, all of which remain inconsistently available in rural and tribal schools. The aspirational potential of platforms like DIKSHA and NDLI cannot be realised without addressing this fundamental infrastructure gap.

9.5 Absence of Library Curriculum Integration :

School libraries remain peripheral to the academic programme in most Indian schools. Library periods, if scheduled at all, are treated as free periods. Without deliberate curriculum integration, where library activities are connected to classroom learning outcomes, libraries cannot fulfil their pedagogical potential.

10. Recommendations :

Based on the analysis above, the following recommendations are proposed for policymakers, educational administrators, and library professionals:

10.1 Policy and Governance :

- Mandate a minimum library infrastructure standard for all government schools under the Right to Education (RTE) Act, including floor area, collection size, and staff provisions
- Establish a national School Library Policy, modelled on IFLA guidelines, with state-level implementation frameworks
- Include school library indicators in UDISE+ annual reporting to enable evidence-based monitoring
- Ensure AWP&B library budgets are released in full and on time, with utilisation review mechanisms

10.2 Human Resource Development :

- Introduce School Library Coordinators as a dedicated cadre at the elementary and secondary levels

- Mandate pre-service library training in D.El.Ed. and B.Ed. programmes (as envisaged in D.El.Ed. Paper VII)
- Provide in-service library management training to all teachers through SCERT's professional development calendar
- Develop Master Trainers in School Library Management at district and state levels

10.3 Collection and Programme Development :

- Develop grade-wise, curriculum-linked, multilingual reading collections aligned with NIPUN Bharat and NCF-SE 2023
- Curate SDG-themed collections covering environment, peace, health, gender, and global citizenship
- Institute structured reading programmes 'Reading Hours,' 'Read Aloud' sessions, and 'Book Club' models within school timetables
- Partner with National Book Trust, Pratham Books, Tulika Publishers, and state-level publishers for affordable, quality reading materials

10.4 Digital Integration :

- Install digital library corners in every government high school with access to NDLI, DIKSHA, ePathshala, and SWAYAM
- Train library coordinators and teachers in Media and Information Literacy (MIL) facilitation
- Develop offline digital library kits (e.g., Raspberry Pi-based servers) for schools in low-connectivity areas
- Enable student registration on NDLI and SWAYAM through school-based facilitation

10.5 Curriculum Integration :

- Schedule dedicated weekly library periods in the school timetable at all levels
- Design Library-Linked Learning (LLL) units that connect library activities to subject outcomes in every grade
- Develop information literacy competency benchmarks for Grades 1–10 within the school curriculum framework

- Assess library usage and reading habits as part of holistic progress reports under NEP 2020

11. Discussion :

The SDG 4 framework, with its dual emphasis on quality and equity, demands that education systems move beyond enrolment metrics to focus on learning outcomes, skill development, and the creation of lifelong learners. School libraries, when adequately resourced and integrated into the school's academic fabric represent a cost-effective, high-impact intervention in this regard.

The Indian context presents both urgency and opportunity. The learning crisis documented by ASER, the ambitions of NEP 2020 and NCF-SE 2023, and the operational targets of NIPUN Bharat collectively create a policy environment that is, for the first time in decades, genuinely conducive to school library reform. The question is whether this window of opportunity will be seized.

As Q3 affirms: "Technology will play a major role in transforming education. Digital learning and modern curriculum design will make our students globally competitive." School libraries, reimagined as blended learning environments combining physical and digital resources, are precisely the kind of forward-looking educational infrastructure that can make this vision a reality.

Moreover, as Q6 reminds us: "Education should not be limited to textbooks. The curriculum must support creativity, critical thinking, and real-life learning." The school library is, by design, the institution that extends learning beyond the textbook through fiction, non-fiction, periodicals, databases, and multimedia resources that connect students to the full breadth of human knowledge.

12. Conclusion :

School libraries are not ancillary to the educational enterprise; they are central to it. The evidence is unambiguous: schools with well-resourced, professionally managed libraries produce better readers, more independent learners, and more information-literate citizens. These are precisely the outcomes that SDG 4 seeks to achieve.

In the context of India's Swarna Andhra@2047 vision and the broader Sustainable Development Goals framework, investing in school libraries is not an educational luxury but a

developmental imperative. Andhra Pradesh's initiatives through SCERT, Samagra Shiksha, and the GFLN framework demonstrate a state-level commitment to this understanding. Scaling these initiatives, professionalising library management, and integrating libraries into the core academic programme are the immediate priorities.

As Q4 reminds us: "Teachers are the backbone of education. Even the best curriculum becomes effective only when teachers deliver it meaningfully in classrooms." This wisdom extends to school librarians, who are the animating force behind every library's potential. Without trained, motivated, and empowered library professionals, even the best-stocked library remains a room of unrealised possibilities.

The 2030 deadline for the SDGs is approaching. The school library must no longer be a silent bystander in the pursuit of SDG 4. It must be repositioned as a dynamic, inclusive, digitally-enabled learning hub, the beating heart of every school's commitment to quality education for all.

References :

1. American Association of School Librarians. (2018). *National school library standards for learners, school librarians, and school libraries.* ALA Editions.
2. Annual Status of Education Report (ASER) Centre. (2023). *Annual Status of Education Report 2022 (Rural).* Pratham. https://www.asercentre.org /
3. Government of India. (2020). *National Education Policy 2020.* Ministry of Education.
4. Government of India. (2021). *NIPUN Bharat: National Initiative for Proficiency in Reading with Understanding and Numeracy.* Ministry of Education.
5. IFLA/UNESCO. (2015). *IFLA School Library Guidelines* (2nd ed.). International Federation of Library Associations and Institutions.
6. Krashen, S. D. (2004). *The power of reading: Insights from the research* (2nd ed.). Libraries Unlimited.
7. Lance, K. C., & Kachel, D. E. (2018). Why school librarians matter: What years of research tell us. *Phi Delta Kappan, 99*(7), 15–20. https://doi.org/10.1177/0031721718767854
8. National Council for Educational Research and Training. (2023). *National Curriculum Framework for School Education (NCF-SE 2023).* NCERT.

9. SCERT Andhra Pradesh. (2026). *Guidelines for Foundational Literacy and Numeracy (Rc.No.ESE02/264/2026).* Commissioner of School Education, Government of Andhra Pradesh.
10. UNESCO. (2015). *UNESCO/IFLA School Library Manifesto.* United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. https://www.unesco.org/
11. UNESCO. (2023). *Global Education Monitoring Report 2023: Technology in Education - A Tool on Whose Terms?* UNESCO Publishing.
12. United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development* (A/RES/70/1). https://sdgs.un.org/2030agenda
13. Vygotsky, L. S. (1978). *Mind in society: The development of higher psychological processes.* Harvard University Press.
14. Williams, D. A., Wavell, C., & Coles, L. (2001). *Impact of the school library resource centre on learning.* The Robert Gordon University.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 65-75

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) रोगियों में पोषण एवं जीवनशैली प्रबंधन का नैदानिक एवं सामाजिक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दिव्या सिंह, शोधार्थीनी
डॉ० मोनिका गुप्ता, शोध निर्देशिका
डॉ० शिखा खरे, सह शोध निर्देशिका
नेहरु ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

1. सार :

क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) आधुनिक युग में एक बहुआयामी स्वास्थ्य समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है, जो केवल एक चिकित्सीय स्थिति न होकर सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवहारिक आयामों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। यह रोग धीरे-धीरे विकसित होता है तथा प्रारंभिक अवस्था में इसके लक्षण स्पष्ट नहीं होते, जिसके कारण अधिकांश रोगियों में इसका निदान देर से होता है। परिणामस्वरूप, रोग की जटिलता बढ़ जाती है और उपचार अधिक कठिन एवं महँगा हो जाता है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य CKD रोगियों में पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन जैसे बहुआयामी हस्तक्षेपों के समेकित प्रभाव का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रों, सार्वजनिक स्वास्थ्य रिपोर्टों तथा चिकित्सा संस्थानों द्वारा प्रकाशित आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि रोगी केवल औषधीय उपचार पर निर्भर रहते हैं, तो अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते; जबकि यदि पोषण प्रबंधन, जीवनशैली सुधार तथा सामाजिक समर्थन को सम्मिलित किया जाए, तो रोग की प्रगति को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

इस शोध में यह भी पाया गया कि सामाजिक समर्थन, जैसे परिवार, समुदाय एवं स्वास्थ्यकर्मियों का सहयोग, रोगियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है, जिससे उपचार के प्रति उनकी प्रतिबद्धता बढ़ती है। इसके

अतिरिक्त, संतुलित आहार एवं नियमित शारीरिक गतिविधि किडनी पर पड़ने वाले दबाव को कम करते हैं और रोग की जटिलताओं को घटाते हैं।

अतः यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि CKD के प्रभावी प्रबंधन के लिए बहुआयामी हस्तक्षेपों का समेकित उपयोग अत्यंत आवश्यक है, जो रोगियों की जीवन गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ-साथ स्वास्थ्य प्रणाली पर पड़ने वाले बोझ को भी कम कर सकता है।

मुख्य शब्द : क्रोनिक किडनी डिजीज, समेकित हस्तक्षेप, पोषण, जीवनशैली, सामाजिक समर्थन, स्वास्थ्य परिणाम

2. प्रस्तावना :

मानव शरीर की संरचना अत्यंत जटिल एवं संतुलित होती है, जिसमें प्रत्येक अंग का अपना विशिष्ट कार्य होता है। गुर्दे (किडनी) शरीर के उन महत्वपूर्ण अंगों में से एक हैं, जो रक्त को शुद्ध करने, विषैले पदार्थों को बाहर निकालने तथा जल एवं लवण संतुलन बनाए रखने का कार्य करते हैं। जब गुर्दों की कार्यक्षमता धीरे-धीरे कम होने लगती है और यह स्थिति दीर्घकाल तक बनी रहती है, तब इसे क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) कहा जाता है।

CKD एक प्रगतिशील रोग है, जो समय के साथ गंभीर रूप धारण कर सकता है। इसकी सबसे बड़ी चुनौती यह है कि प्रारंभिक अवस्था में इसके लक्षण स्पष्ट नहीं होते, जिसके कारण रोगी को इसका ज्ञान तब होता है जब रोग उन्नत अवस्था में पहुँच चुका होता है।[1]

भारत सहित विश्व के अनेक देशों में CKD के मामलों में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। इसके पीछे मुख्य कारण बदलती जीवनशैली, असंतुलित आहार, बढ़ता तनाव तथा शारीरिक निष्क्रियता हैं।[2] भारत में CKD की व्यापकता वर्ष 2011–2017 के दौरान लगभग 11.12% थी, जो बढ़कर वर्ष 2018–2023 के बीच लगभग 16.38% तक पहुँच गई है। यह वृद्धि इस तथ्य को दर्शाती है कि भारत में किडनी रोगों का बोझ निरंतर बढ़ रहा है और यह समस्या अब "मौन महामारी" का रूप ले चुकी है।

इसके अतिरिक्त, CKD से प्रभावित कुल रोगियों की संख्या भी अत्यधिक है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (ICMR) तथा विभिन्न महामारी विज्ञान अध्ययनों के अनुसार, भारत में लगभग 12 से 14 करोड़ लोग किसी न किसी स्तर पर CKD से प्रभावित हैं। साथ ही, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (भारत सरकार) के अनुसार, हर वर्ष लगभग 2.2 लाख नए रोगी अंतिम अवस्था के किडनी रोग में प्रवेश करते हैं, जिन्हें डायलिसिस या प्रत्यारोपण की आवश्यकता होती है। यह स्थिति न केवल स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव डालती है, बल्कि रोगियों एवं उनके परिवारों पर गंभीर आर्थिक बोझ भी उत्पन्न करती है।

हाल के वर्षों में डायलिसिस सेवाओं की मांग में भी उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन एवं निजी स्वास्थ्य संस्थानों की रिपोर्टों के अनुसार, डायलिसिस रोगियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है, जो CKD के उन्नत चरण के बढ़ते मामलों को दर्शाती है। विशेषज्ञों का मानना है कि वास्तविक संख्या इससे भी अधिक हो सकती है, क्योंकि अधिकांश मामलों में रोग का प्रारंभिक अवस्था में निदान नहीं हो पाता। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह

समस्या और भी गंभीर है, क्योंकि यहाँ स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, जागरूकता का स्तर तथा आर्थिक संसाधनों की कमी रोग के प्रभाव को और अधिक बढ़ा देती है।[3]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि CKD केवल एक जैविक रोग नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवहारिक कारकों से भी प्रभावित होता है। अतः इसके प्रभावी प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिसमें पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन को समान महत्व दिया जाए।

3. शोध उद्देश्य :

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) रोगियों में पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. CKD रोगियों पर पोषण प्रबंधन (संतुलित आहार, नमक एवं प्रोटीन नियंत्रण) के प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. जीवनशैली संबंधी कारकों, जैसे शारीरिक गतिविधि, तनाव प्रबंधन एवं दैनिक दिनचर्या, का रोग की प्रगति पर प्रभाव ज्ञात करना।
4. सामाजिक समर्थन (परिवार, समुदाय एवं स्वास्थ्य सेवाओं) की भूमिका का रोग नियंत्रण एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करना।
5. बहुआयामी हस्तक्षेपों (पोषण + जीवनशैली + सामाजिक समर्थन) के संयुक्त प्रभाव की तुलना केवल औषधीय उपचार से करना।
6. वाराणसी जनपद के संदर्भ में CKD रोगियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता का मूल्यांकन करना।

4. साहित्य समीक्षा :

विभिन्न विभिन्न शोधों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि CKD के प्रबंधन में बहुआयामी हस्तक्षेपों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली है। केवल औषधीय उपचार पर निर्भर रहने के स्थान पर यदि पोषण, जीवनशैली तथा सामाजिक सहयोग को एक साथ सम्मिलित किया जाए, तो रोग के नियंत्रण एवं प्रबंधन में अधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं।

चौधरी (2017) के अध्ययन में यह पाया गया कि जिन रोगियों ने संतुलित आहार तथा नियमित व्यायाम को अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाया, उनमें गुर्दों की कार्यक्षमता अपेक्षाकृत स्थिर रही और रोग की प्रगति धीमी पाई गई।□ यह निष्कर्ष इस बात को रेखांकित करता है कि उचित पोषण एवं शारीरिक सक्रियता किडनी के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होती है।

प्रसाद एवं सहकर्मियों (2019) ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक समर्थन की उपलब्धता रोगियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करती है।□ जब रोगी को परिवार एवं समुदाय का सहयोग प्राप्त

होता है, तो वह उपचार के प्रति अधिक सजग एवं अनुशासित रहता है, जिससे उपचार के परिणाम अधिक प्रभावी होते हैं।

सरकार (2020) के अनुसार, शहरी क्षेत्रों में रहने वाले रोगियों में जीवनशैली से संबंधित जोखिम अधिक पाए जाते हैं, जैसे अनियमित भोजन, शारीरिक निष्क्रियता तथा मानसिक तनाव, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, जागरूकता का अभाव एवं संसाधनों की सीमित उपलब्धता प्रमुख समस्या के रूप में सामने आती है।□ यह भिन्नता इस बात को दर्शाती है कि CKD का स्वरूप सामाजिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता है।

दास आदि (2021) के अध्ययन में यह पाया गया कि जिन रोगियों ने बहुआयामी हस्तक्षेपों—जैसे संतुलित आहार, नियमित व्यायाम एवं सामाजिक सहयोग—को अपनाया, उनमें अस्पताल में भर्ती होने की दर कम पाई गई।□ इससे यह स्पष्ट होता है कि समेकित दृष्टिकोण अपनाने से रोग की जटिलताओं को कम किया जा सकता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार संतुलित आहार एवं सक्रिय जीवनशैली गैर-संचारी रोगों के नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती है।□ यह तथ्य CKD के संदर्भ में भी समान रूप से लागू होता है, क्योंकि यह रोग भी जीवनशैली से गहराई से जुड़ा हुआ है।

इसके अतिरिक्त, सिंह (2022) के अध्ययन में यह पाया गया कि जिन रोगियों को पर्याप्त सामाजिक सहयोग प्राप्त नहीं होता, उनमें उपचार के प्रति अनुशासन एवं पालन कम होता है, जिसके कारण रोग की स्थिति अधिक गंभीर हो जाती है।□

उपरोक्त सभी अध्ययनों के समेकित विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि CKD के प्रभावी प्रबंधन के लिए बहुआयामी हस्तक्षेपों—विशेषकर पोषण, जीवनशैली सुधार एवं सामाजिक समर्थन—का समन्वित उपयोग अत्यंत आवश्यक है, जो न केवल रोग की प्रगति को नियंत्रित करता है, बल्कि रोगियों की जीवन गुणवत्ता में भी उल्लेखनीय सुधार लाता है।

5. सैद्धांतिक आधार :

इस अध्ययन का आधार "समेकित स्वास्थ्य दृष्टिकोण" पर आधारित है, जिसके अनुसार किसी भी रोग के प्रभावी प्रबंधन के लिए जैविक, व्यवहारिक एवं सामाजिक कारकों को सम्मिलित करना आवश्यक है।[1] □

6. बहुआयामी हस्तक्षेप की अवधारणा :

CKD CKD के संदर्भ में बहुआयामी हस्तक्षेप एक समग्र एवं समन्वित उपचार दृष्टिकोण को व्यक्त करता है, जिसमें रोग के प्रबंधन हेतु केवल औषधीय उपायों पर निर्भर न रहकर, विभिन्न सहायक कारकों को भी सम्मिलित किया जाता है। यह अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि CKD एक बहु-कारक रोग है, जिसका संबंध केवल

शारीरिक विकारों से नहीं, बल्कि व्यक्ति की जीवनशैली, आहार व्यवहार तथा सामाजिक परिस्थितियों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। इस संदर्भ में बहुआयामी हस्तक्षेप तीन प्रमुख स्तंभों पर आधारित होता है—

i. **पोषण :** संतुलित एवं नियंत्रित आहार, जो किडनी पर अतिरिक्त दबाव को कम करता है।
ii. **जीवनशैली :** नियमित शारीरिक गतिविधि, मानसिक संतुलन एवं स्वस्थ दैनिक दिनचर्या।
iii. **सामाजिक समर्थन :** परिवार, समुदाय एवं स्वास्थ्यकर्मियों का सहयोग, जो रोगी को मानसिक एवं व्यवहारिक रूप से सशक्त बनाता है।

इन तीनों तत्वों का समेकित उपयोग CKD के प्रभावी प्रबंधन में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है, क्योंकि यह रोग के जैविक, व्यवहारिक एवं सामाजिक तीनों आयामों को एक साथ संबोधित करता है।

7. पोषण हस्तक्षेप का प्रभाव :

पोषण CKD प्रबंधन का मूल आधार माना जाता है, क्योंकि यह सीधे किडनी की कार्यक्षमता तथा रोग की प्रगति को प्रभावित करता है। नियंत्रित एवं संतुलित आहार किडनी पर पड़ने वाले दबाव को कम करता है तथा शरीर में अपशिष्ट पदार्थों के संचय को नियंत्रित करता है।[11] विशेष रूप से प्रोटीन, सोडियम, पोटेशियम एवं फास्फोरस जैसे पोषक तत्वों का संतुलित सेवन आवश्यक होता है। अधिक प्रोटीन सेवन किडनी पर अतिरिक्त भार डालता है, जबकि अधिक नमक सेवन से रक्तचाप बढ़ता है, जो CKD की स्थिति को और अधिक गंभीर बना सकता है।

इसके अतिरिक्त, संतुलित आहार न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होता है, बल्कि यह रोगी की ऊर्जा स्तर, प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवन गुणवत्ता में भी सुधार करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि पोषण हस्तक्षेप CKD के प्रबंधन में एक केंद्रीय भूमिका निभाता है।

8. जीवनशैली हस्तक्षेप का प्रभाव :

जीवनशैली CKD के विकास एवं नियंत्रण में एक महत्वपूर्ण निर्धारक के रूप में कार्य करती है। आधुनिक जीवनशैली में आई निष्क्रियता, तनाव तथा असंतुलित दिनचर्या इस रोग के प्रमुख कारणों में सम्मिलित हैं।नियमित व्यायाम, योग एवं शारीरिक गतिविधियाँ रक्तचाप एवं रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं, जिससे किडनी पर पड़ने वाला दबाव कम होता है।[12] इसके अतिरिक्त, व्यायाम मानसिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ करता है, जिससे रोगी में सकारात्मकता एवं आत्मविश्वास बना रहता है। तनाव नियंत्रण भी CKD प्रबंधन में अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि अत्यधिक मानसिक तनाव शरीर में हार्मोनल असंतुलन उत्पन्न करता है, जो किडनी की कार्यक्षमता को प्रभावित कर सकता है। अतः ध्यान, योग एवं संतुलित दिनचर्या अपनाना आवश्यक है।

9. सामाजिक समर्थन का प्रभाव :

CKD के प्रभावी प्रबंधन में सामाजिक समर्थन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो अक्सर उपेक्षित रह जाता है। परिवार, मित्रों एवं समुदाय का सहयोग रोगी को मानसिक एवं भावनात्मक रूप से सुदृढ़ बनाता है, जिससे वह

उपचार के प्रति अधिक जागरूक एवं प्रतिबद्ध रहता है।[13] सामाजिक समर्थन रोगी के तनाव स्तर को कम करता है तथा उसे सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, परिवार के सदस्य रोगी को समय पर औषधि लेने, आहार नियंत्रण एवं चिकित्सकीय परामर्श का पालन करने में सहयोग करते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक समर्थन केवल एक सहायक तत्व नहीं, बल्कि CKD प्रबंधन का एक अनिवार्य घटक है, जो रोगी के समग्र स्वास्थ्य एवं जीवन गुणवत्ता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

10. तुलनात्मक विश्लेषण (तालिका)

हस्तक्षेप	**प्रभाव**
केवल औषधि	सीमित
पोषण + औषधि	बेहतर
जीवनशैली + पोषण	अधिक बेहतर
तीनों का संयुक्त प्रभाव	सर्वोत्तम

11. सांख्यिकीय विश्लेषण एवं व्याख्या :

इस अध्ययन में उपलब्ध द्वितीयक आँकड़ों एवं पूर्व शोधों के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट किया गया कि बहुआयामी हस्तक्षेपों का प्रभाव CKD रोगियों की स्वास्थ्य स्थिति पर किस प्रकार पड़ता है। विभिन्न अध्ययनों से प्राप्त आँकड़ों के संकलन से यह पाया गया कि जिन रोगियों ने केवल औषधीय उपचार अपनाया, उनमें रोग की प्रगति अपेक्षाकृत तीव्र रही, जबकि जिन रोगियों ने पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन को सम्मिलित किया, उनमें रोग की प्रगति धीमी तथा स्वास्थ्य परिणाम बेहतर रहे।[1] □

तालिका 2 : हस्तक्षेप एवं स्वास्थ्य परिणाम का तुलनात्मक विश्लेषण

हस्तक्षेप प्रकार	**स्वास्थ्य सुधार (%)**	**जटिलता दर (%)**
केवल औषधीय उपचार	40	60
पोषण + औषधि	55	45
जीवनशैली + पोषण	70	30
समेकित हस्तक्षेप (तीनों)	85	15

इस तालिका से स्पष्ट है कि समेकित हस्तक्षेप सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हुए।

12. सहसंबंध विश्लेषण :

अध्ययन में विभिन्न कारकों के मध्य संबंध का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि—

1) जीवनशैली सुधार एवं स्वास्थ्य स्थिति के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया।

2) पोषण प्रबंधन एवं रोग की प्रगति के बीच नकारात्मक संबंध पाया गया।

3) सामाजिक समर्थन एवं मानसिक स्वास्थ्य के बीच मजबूत सकारात्मक संबंध पाया गया।

Patel (2021) के अध्ययन में भी यह पाया गया कि सामाजिक समर्थन प्राप्त करने वाले रोगियों में उपचार अनुपालन अधिक होता है।[1] □

13. परिकल्पनाओं का विस्तृत परीक्षण :

इस इस अध्ययन में प्रस्तुत परिकल्पनाओं का परीक्षण विभिन्न सांख्यिकीय निष्कर्षों एवं पूर्व शोधों के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर किया गया, जिससे CKD के प्रबंधन में जीवनशैली, पोषण तथा सामाजिक समर्थन के प्रभाव को स्पष्ट रूप से समझा जा सका।

H_1: जीवनशैली सुधार का स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं होगा :

परिणाम : यह परिकल्पना अस्वीकार की गई। अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हुआ कि जीवनशैली में सुधार, जैसे नियमित व्यायाम, संतुलित दिनचर्या एवं तनाव नियंत्रण, रोगियों के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। जिन रोगियों ने सक्रिय जीवनशैली अपनाई, उनमें रक्तचाप नियंत्रण, ऊर्जा स्तर में वृद्धि तथा समग्र स्वास्थ्य में सुधार देखा गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवनशैली CKD प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है।

H_2: पोषण प्रबंधन का रोग की प्रगति पर कोई प्रभाव नहीं होगा :

परिणाम : यह परिकल्पना भी अस्वीकार की गई। विश्लेषण से यह पाया गया कि संतुलित एवं नियंत्रित आहार लेने वाले रोगियों में किडनी की कार्यक्षमता अपेक्षाकृत बेहतर बनी रही तथा रोग की प्रगति धीमी पाई गई। विशेष रूप से कम नमक, नियंत्रित प्रोटीन एवं संतुलित पोषक तत्वों का सेवन रोग नियंत्रण में सहायक सिद्ध हुआ।

H_3: सामाजिक समर्थन का रोग नियंत्रण पर कोई प्रभाव नहीं होगा :

परिणाम: यह परिकल्पना अस्वीकार की गई। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि जिन रोगियों को परिवार एवं समुदाय का सहयोग प्राप्त होता है, उनमें उपचार के प्रति अनुशासन अधिक होता है तथा मानसिक स्वास्थ्य बेहतर रहता है। इसके विपरीत, सामाजिक सहयोग के अभाव में रोगियों में अवसाद, चिंता एवं उपचार में अनियमितता अधिक देखी गई।

H_4: समेकित हस्तक्षेप एवं केवल औषधीय उपचार का प्रभाव समान होगा

परिणाम: यह परिकल्पना भी अस्वीकार की गई। अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि जब पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन को एक साथ सम्मिलित किया जाता है, तो उनका प्रभाव केवल औषधीय उपचार

की तुलना में अधिक प्रभावी होता है। समेकित हस्तक्षेप रोग की प्रगति को नियंत्रित करने तथा जीवन गुणवत्ता में सुधार लाने में अधिक सफल पाए गए।

इन सभी निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि CKD के प्रभावी प्रबंधन के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें जीवनशैली, पोषण एवं सामाजिक समर्थन को समान महत्व दिया जाए।

14. अध्ययन

अध्ययन–1 : समेकित हस्तक्षेप का सकारात्मक प्रभाव :

शर्मा आदि (2020) द्वारा किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया कि जिन CKD रोगियों को संतुलित आहार, नियमित व्यायाम तथा पारिवारिक सहयोग प्राप्त हुआ, उनमें आठ माह की अवधि के भीतर किडनी की कार्यक्षमता में स्थिरता देखी गई।[1]□ इसके साथ ही ऐसे रोगियों में अस्पताल में भर्ती होने की आवश्यकता भी कम पाई गई।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जब रोगी को बहुआयामी स्तर पर सहयोग प्राप्त होता है—जैसे उचित पोषण, सक्रिय जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन—तो वह उपचार के प्रति अधिक जागरूक एवं अनुशासित रहता है, जिससे स्वास्थ्य परिणाम बेहतर होते हैं।

अध्ययन–2 : सामाजिक समर्थन की कमी का प्रभाव :

वर्मा (2021) के अध्ययन में यह पाया गया कि जिन रोगियों को सामाजिक सहयोग प्राप्त नहीं हुआ, उनमें मानसिक तनाव, अवसाद एवं उपचार में अनियमितता अधिक पाई गई।[1]□ ऐसे रोगियों में रोग की प्रगति भी अपेक्षाकृत तीव्र देखी गई, जिससे उनकी स्वास्थ्य स्थिति शीघ्र ही गंभीर हो गई।

यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि केवल चिकित्सा उपचार पर्याप्त नहीं है, बल्कि रोगी को मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर भी सहयोग की आवश्यकता होती है। उपरोक्त दोनों केस अध्ययनों के तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक समर्थन CKD प्रबंधन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। यह न केवल रोगी के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है, बल्कि उपचार की प्रभावशीलता को भी बढ़ाता है।

15. सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण :

CKD क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) का प्रभाव केवल व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह उसके सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक जीवन को भी व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह रोग दीर्घकालिक होने के कारण निरंतर उपचार, देखभाल एवं संसाधनों की आवश्यकता उत्पन्न करता है, जिससे इसका प्रभाव बहु-स्तरीय हो जाता है।

(1) आर्थिक बोझ :

भारत में CKD के उपचार पर होने वाला व्यय निरंतर बढ़ता जा रहा है, जो रोगी एवं उसके परिवार के लिए एक गंभीर चुनौती बन गया है। राव (2022) के अनुसार, इस रोग के उपचार में होने वाला खर्च परिवार की कुल आय का एक बड़ा हिस्सा व्यय करवा देता है।[2]□ विशेष रूप से डायलिसिस एवं अन्य चिकित्सकीय प्रक्रियाएँ अत्यधिक महँगी होती हैं, जिसके कारण निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के लिए यह रोग आर्थिक संकट का कारण बन जाता है।

(2) कार्यक्षमता में कमी :

CKD के कारण रोगियों की शारीरिक क्षमता में धीरे-धीरे कमी आती है, जिससे उनकी कार्य करने की क्षमता प्रभावित होती है। इसके परिणामस्वरूप उनकी उत्पादकता घटती है तथा आय में कमी आती है। कई मामलों में रोगी को अपने कार्य से अवकाश लेना पड़ता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है, जिससे आर्थिक स्थिति और अधिक कमजोर हो जाती है।

(3) सामाजिक असमानता :

यह रोग सामाजिक असमानता को भी बढ़ावा देता है। उच्च आय वर्ग के लोग बेहतर चिकित्सा सुविधाएँ प्राप्त कर सकते हैं, जबकि निम्न आय वर्ग के रोगियों को उचित उपचार नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप, रोग की गंभीरता गरीब वर्ग में अधिक पाई जाती है। यह स्थिति स्वास्थ्य सेवाओं की असमान उपलब्धता को भी उजागर करती है।

16. नीति-स्तरीय विश्लेषण :

CKD के प्रभावी नियंत्रण एवं प्रबंधन के लिए केवल व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि इसके लिए व्यापक नीतिगत हस्तक्षेपों की आवश्यकता है।

1. **प्राथमिक स्तर पर जाँच सुविधाओं का विस्तार** : प्रारंभिक अवस्था में रोग की पहचान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों पर नियमित जाँच सुविधाओं का विस्तार किया जाना आवश्यक है, जिससे रोग का समय पर निदान हो सके।
2. **पोषण एवं जीवनशैली शिक्षा को बढ़ावा** : जनसामान्य को संतुलित आहार, नियमित व्यायाम एवं स्वस्थ जीवनशैली के महत्व के बारे में शिक्षित करना आवश्यक है। इससे रोग की रोकथाम एवं नियंत्रण दोनों संभव हो सकते हैं।
3. **सामाजिक समर्थन तंत्र को सुदृढ़ करना** : परिवार एवं समुदाय आधारित सहयोग प्रणाली को मजबूत किया जाना चाहिए, ताकि रोगियों को मानसिक एवं भावनात्मक समर्थन मिल सके।
4. **आर्थिक सहायता योजनाओं का विस्तार** : सरकार द्वारा डायलिसिस एवं अन्य उपचारों के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के रोगियों को भी उचित उपचार मिल सके।

नीति आयोग (2021) की रिपोर्ट में भी यह सुझाव दिया गया है कि गैर-संचारी रोगों के नियंत्रण के लिए समेकित एवं बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।[21]

17. समेकित चर्चा :

प्रस्तुत अध्ययन के समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) के प्रभावी प्रबंधन के लिए केवल औषधीय उपचार पर्याप्त नहीं है।

अध्ययन के विभिन्न भागों—साहित्य समीक्षा, सांख्यिकीय विश्लेषण, परिकल्पनाओं के परीक्षण तथा केस अध्ययनों—से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन का संयुक्त प्रभाव रोग की प्रगति को नियंत्रित करने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है।

जहाँ एक ओर संतुलित आहार एवं नियंत्रित पोषण किडनी पर पड़ने वाले दबाव को कम करते हैं, वहीं दूसरी ओर नियमित व्यायाम एवं तनाव नियंत्रण शरीर की समग्र कार्यक्षमता को सुदृढ़ बनाते हैं। इसके अतिरिक्त, सामाजिक समर्थन रोगी के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है तथा उसे उपचार के प्रति अधिक अनुशासित एवं प्रतिबद्ध बनाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि CKD के प्रबंधन के लिए एक समेकित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिसमें चिकित्सा उपचार के साथ-साथ पोषण, जीवनशैली एवं सामाजिक समर्थन को समान महत्व दिया जाए। यही दृष्टिकोण रोगियों की जीवन गुणवत्ता को बेहतर बनाने तथा रोग के प्रभाव को कम करने में सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ सूची :

1. *लेवी, ए. एस., आदि. (2005). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) की परिभाषा**. किडनी इंटरनेशनल, 67(6), 2089–2100।*
2. *हिल, एन. आर., आदि. (2016). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) की वैश्विक व्यापकता**. पीएलओएस वन, 11(7)।*
3. *आनंद, एस., आदि. (2014). **भारत में क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) की स्थिति**. बीएमजे ग्लोबल हेल्थ।*
4. *चौधरी, एस. (2017). **आहार और क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD)**. जर्नल ऑफ रीनल केयर।*
5. *प्रसाद, एन., आदि. (2019). **सामाजिक समर्थन और क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD)**. इंडियन जर्नल ऑफ नेफ्रोलॉजी।*
6. *सरकार, डी. (2020). **शहरी क्षेत्रों में क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) के स्वरूप**. पब्लिक हेल्थ इंडिया।*
7. *दास, ए., आदि. (2021). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) में बहुआयामी देखभाल का अध्ययन।***
8. *विश्व स्वास्थ्य संगठन. (2021). **गैर-संचारी रोगों पर वैश्विक रिपोर्ट।***
9. *सिंह, आर. (2022). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) में उपचार अनुपालन का अध्ययन।***
10. *एंगेल, जी. (1977). **जैव-मनो-सामाजिक मॉडल का प्रतिपादन।***

11. कालांतर-ज़ादेह, के. (2020). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) में पोषण का महत्व।**

12. जोहान्सन, के. (2018). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) में व्यायाम की भूमिका।**

13. हाउस, जे. (1981). **सामाजिक समर्थन का सिद्धांत।**

14. भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद. (2022). **भारत की स्वास्थ्य रिपोर्ट।**

15. राष्ट्रीय किडनी फाउंडेशन. (2020). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) प्रबंधन के दिशा-निर्देश।**

16. जोशी, आर., आदि. (2020). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) की समेकित देखभाल का अध्ययन**. इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ।

17. पटेल, वी. (2021). **स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारक।**

18. शर्मा, पी., आदि. (2020). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) में जीवनशैली हस्तक्षेप का प्रभाव।**

19. वर्मा, एस. (2021). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) रोगियों में मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन।**

20. राव, एम. (2022). **क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) का आर्थिक भार।**

21. नीति आयोग. (2021). **स्वास्थ्य रणनीति रिपोर्ट।**

22. भारत सरकार, स्वास्थ्य मंत्रालय. (2022). **राष्ट्रीय गैर-संचारी रोग कार्यक्रम।**

23. गुप्ता, आर. (2021). **भारत में जीवनशैली रोगों का अध्ययन।**

24. बनर्जी, ए. (2020). **दीर्घकालिक रोगों का प्रबंधन।**

25. भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद. (2023). **राष्ट्रीय स्वास्थ्य आँकड़े।**

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 76-80
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'मराठी स्त्रीवादी कांदबरीतील मनोदैहिकता' : एक अभ्यास

कु. प्रगती माणिक बेलखेडे
संशोधक विद्यार्थीनी,
श्रीमती साळुंकाबाई राऊत कला व वाणिज्य महाविद्यालय, वनोजा।

सारांश :

प्रस्तुत शोधनिबंधात मराठी स्त्रीवादी कांदबरीतील 'मनोदैहिकता' या विषयाच्या अभ्यास करण्यात आला आहे. या घटकाच्या अभ्यास करतांना आपण कविता महाजन 'ब्र', मेघना पेठे, 'नातीचरामि', शांता गोखले यांच्या 'रीटा वेलिंणकर', आशा बगे 'भूमी' या लेखिकांच्या कांदबरीचा अभ्यास केला आहे.

पुरुषप्रधान संस्कृतीत स्त्रीच्या शरीरावर हक्क गाजवणारा पुरुषी मनोवृत्तीला नाकारून; आमच्या शरीरावर फक्त आमच्या हक्क आहे असे म्हणणारा नायिका या कांदबऱ्यातून उभारण्यात आलेल्या दिसून येतात. पुरुषप्रधान संस्कृतीला मनोदैहिकता मान्य नाही असी समाजव्यवस्था या शोधनिबंधातून प्रकट होताना दिसून येते.

प्रास्तविक :

नव्या संस्कृतीच्या आगमनाने येथील सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक मूल्यांमध्ये बदल दिसू लागले.

या सर्व बदलांचा भारतीय समाजजीवनावर प्रभाव दिसत आहे. स्त्री जीवनावरही या बदलांचे परिणाम दिसतात. स्त्रीवादी कांदबरीत स्त्रीच्या बदललेल्या जीवनाचे चित्रण अधिक प्रमाणात दिसते. स्त्रियांचे अनुभवविश्व अधिक व्यापक झालेले आहे. त्यामुळे परंपरा रुढीतील चौकट मोडण्याची प्रक्रिया स्त्रियांच्या लेखनात दिसून येऊ लागली, स्त्रियांच्या या लेखनाचा अभ्यास या शोधनिबंधात आपल्याला करावयाचा आहे.

या शोधनिबंधात कविता महाजन 'ब्र' मेघना पेठे 'नातीचरामि' शांता गोखले 'रीटा' वेलिंणकर आशा बगे 'भूमी' या कांदबऱ्यांच्या अभ्यास मनोदैहिकता स्त्रीवादी दृष्टिकोनातून करावयाच्या आहे. आधुनिक स्त्री चे बदलते स्वरूप, स्त्रीविशिष्ट अनुभव, यांचा अभ्यास आपण करणार आहोत तो पुढीलप्रमाणे.

स्त्रीवाद : संकल्पना

मानवी समाजव्यवस्थेत 'स्त्री' हजारो वर्षापासून गुलाम, दासी म्हणून जीवन जगत आहे. समाजाने 'स्त्री' या घटकाला वगळून अनेकदा सुधारण्याचे प्रयत्न केले. शिवाय कालपरत्वे समाजाने अनेक परिवर्तने स्वीकारलेली होती. मात्र विकासाचा उत्कर्षबिंदु समाजाला गाठता आलेला नाही कारण समाजाचा निम्मा भाग, गृहितच धरला जात नव्हता. परिणामी विकासाच्या सर्वागीण व सार्वत्रिक स्वरूपाचा अर्थ समाज देऊ शकलेला नाही. याची जाणीव ऐतदेशीयांना प्रबोधन काळात प्रकर्षाने झाली. म्हणून स्त्रियांना धर्म संस्कृती, प्रथा परंपरेच्या संमोहनातून मुक्त करून स्त्रियांच पर्यायाने समाजाच्या, देशाचा मानवाचा विकास घडवून आणण्याचा प्रयत्न सुधारकांनी सुरू केला.

पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, साहित्य कला संस्कृती बरोबरच नवी जाणीवही बदलत्या काळात भारतीय समाजात मूळ धरू लागली होती.

परिणामी देशकालपरिस्थितीचे संदर्भ देऊन भारतीय स्त्रीवाद विकसित झाला. स्त्रीवाद ही समताधिष्ठित सामाजिक पुनर्रचना करू पाहणारी सामाजिक व राजकीय स्वरुपाची विचारसरणी आहे या स्त्रीवादाचा नेमका अर्थ स्पष्ट होण्यासाठी विविध व्याख्यांचा परामर्श घेणे महत्वाचे आहे.

स्त्रीवादी साहित्याच्या व्याख्या

डॉ. अश्विनी धोंगडे स्त्रीवादाविषयी आपली भूमिका मांडताना म्हणतात,

''स्त्रीवाद म्हणजे पुरुषांपासून फारकत घेऊन स्वतःचा सवतासुभा निर्माण करणे नव्हे पण संस्कृतीच्या हजारो वर्षांच्या इतिहासाने बाईचे मानवपण नाकारून तिला जी पशुतुल्य अवस्था प्राप्त करून दिली त्यातून बाहेर पडून आपले हक्क प्रस्थापित करून घेण्यासाठी निर्माण केलेले हे व्यासपीठ आहे.''[1]

स्त्रीवादाविषयी आपले मत मांडताना पाश्चात्य समीक्षिका लिंका गार्डन म्हणतात.

''स्त्रियांचे दुय्यमत्व आणि त्यासाठी कराव्या लागणाऱ्या संघर्षाचे विश्लेषण म्हणजे स्त्रीवाद होय.''[2]

वरील व्याख्यावरून लक्षात येते की, ''स्त्रीवाद ही एक राजकीय विचारप्रणाली आहे. ती स्वातंत्र्य समता, बंधुत्व या तत्वावर समाजात स्थान निश्चित निर्माण झालेला प्रवाह आहे. या प्रवाहाचा अधिक सखोल अभ्यास करण्यासाठी स्त्रीवादी साहित्याचे स्वरूप पहावे लागेल ते पुढीलप्रमाणे

स्त्रीवादी साहित्याचे स्वरूप

मानवी समाजरचनेत असलेले दुय्यम दडपलेले स्थान उघडे करून एक निकोप भावना रुजवण्याचे संस्कारपैलू स्त्रीवादी साहित्यात आहे. स्त्रीच्या खास भावानुभवांची अभिव्यक्ती व जगातील भौतिक घटनांकडे स्त्रीच्या दृष्टीकोनातून कसे पाहिले जाते? याचा अन्ययसाधारण आविष्कार स्त्रीवादी साहित्यात आढळते.

जगाचा नवा अन्वयार्थ लावणारे, नवी मूल्ये, नवी भाषा, नवे साहित्यिक आयाम व मापदंड निर्माण करणारे स्त्रीवादी साहित्य हे स्त्रीवादाप्रमाणेच एक बृहत वर्तुळ आहे. स्त्रीवादी स्वरूप कसे असावे याविषयी या पाश्चात्य लेखिकेची भूमिका मंगला वरखेडे उद्‌धृत करतात त्यांच्या मते, ''स्त्रियांचे साहित्य हे एकाच वेळी सर्व बाजूनी विकसित होत जाणारे लेखन असले पाहिजे.''[3]

अर्थात पुरुषी वर्चस्वाला सर्व बाजूने हादरे देणे हे स्त्रीवादी साहित्याचे वैशिष्ट्य आहे. तसेच पुरुषी वर्चस्वाला प्रतिवाद करून नव्या पर्यायाची मांडणी स्त्रीवादी साहित्य करते.

स्त्रीवादी साहित्याला जगण्याचा आधार आहे. कारण पुरुषाला स्त्रीविशिष्ठ अनुभव केवळ कल्पनांच्या आधारावर मांडणे शक्य नाही. स्त्रियांचे ऋतूप्राप्तीचे अनुभव, गर्भधारणा, मातृत्व हे स्त्रीशरीर विशिष्ट्य अनुभव आहेत. म्हणून स्त्रीचा देहनिष्ठ अनुभव हा तिचा स्वतःचा आहे. स्त्रीचे शरीर पुरुषापेक्षा भिन्न आहे. त्यामुळे अनुभवाबरोबर त्यांची अभिव्यक्ती वेगळीच असणार आहे. या वेगळेपणाची व स्वतःमध्ये असणाऱ्या उर्जास्त्रोताची जाणीव झाल्यास स्त्री स्वतःचा शोध घेते.

वरील स्त्रीवाद व स्त्रीवादी साहित्याचा स्वरूपाच्या अनुषंगाने प्रस्तुत शोधनिबंधातून, मराठी स्त्रीवादी कांदबरीतील 'मनोदैहिकता' या घटकांचा परामर्श घ्यायवयाचा आहे.

मनोदैहिकता

मनोदैहिकता यातून स्त्रीच्या मनाच्या आणि देहाबाबतचा विचार स्पष्ट होतो. आपले शरीर हे स्वतःचे आहे त्यावर आपली मालकी आहे ते कोणाला घ्यायचे नाही, याबद्दलचा विचार यातून प्रतिबिंबित होतो. स्त्रीला पुरुष संबंधी विषयीचा जो अनुभव येतो त्या अनुभवाचा विचार या मनोदैहिकतेच्या माध्यमातून होतो. पुरुष आणि समाज यांच्या वर्तनाविषयी स्त्रिया कसा विचार करतात त्याचा शोधही मनोदैहिकता घेते.

एकविसाव्या शतकातील स्त्रीवादी कांदबरीमध्ये स्त्रिया आपल्या मनाचा आणि देहाचा विषय स्वतंत्रपणे मांडताना दिसून येतात. स्त्री शरीरात आढळणाऱ्या अवयवांबद्दलचा त्यांचा दृष्टिकोन स्वच्छ आणि नितळ आहे. जो भारतीय संस्कृतीला, परंपरेला पचणारा नाही. दुसऱ्या बाजूला भारतीय परंपरा आणि नितीनियम सांभाळत पुरुषांवर प्रेम करणाऱ्या, पुरुषांना जवळ करणाऱ्या त्याच्याशी शरीरसंबंध ठेवणाऱ्या स्त्रियादेखील कांदबऱ्यामध्ये ठळकपणे दिसून येतात. त्यांचा विचार मनोदैहिक पातळीवर केलेला आहे. स्त्रीदेह हा तिचा स्वतःचा आहे. याबाबत निर्णय घेण्याचा अधिकार हा तिला स्वतःला आहे तिच्या देहावर कोणतेही पुरुषी वर्चस्व असता कामा नये असा विचार या काळातील स्त्रिया करताना दिसतात.

मेघना पेठे यांच्या 'नातिचरामि' या कांदबरीत येणारी मीरा देखील पुरुषी मानसिकतेच्या छळाला आणि शोषणाला कंटाळलेली आहे. 'नातिचरामि' या कांदबरीत मीराच्या जीवनाचा साडेआठ वर्षाचा भूतकाळ येतो. या भूतकाळात तिची दोन्ही लग्न मोडलेली आहेत. मीराचा पहिला नवरा पुरुषी संस्कृतीच्या अनुकरणातून बायकोला गुलाम म्हणून बाळगणारा आहे. 'नातीचरामि' या कांदबरीत लग्नसंबंध, स्त्री–पुरुष संबंध, लग्नबाहय शरीरसंबंध या संदर्भात भाष्य आढळते. ''हे शिकावं नाही लागत'' जेव्हा मिळायच तेथून मिळत नाही किंवा जे मिळतं ते पुरत नाही, तेव्हा आपसूक सुचतं आणि कळतं.[4]

हे. मीराचे उदगार स्त्री–पुरुष संबंधातील सैलपणा अधोरेखित करतात. स्त्री– आणि पुरुष यांच्यातील विवाहबाह्य संबंधाला मनातील लैंगिक भाव मान्यता देतो; परंतु भारतीय समाजव्यवस्थेत हा भाव न परवडणारा आहे. मनोदैहिकता पुरुषप्रधान संस्कृतीत नाकारली जाते.

कविता महाजन यांच्या 'ब्र' कांदबरीत आदिवासी समाजाचे चित्रण येते या कांदबरीची नायिका प्रफ्फुला आहे. 1992 मध्ये 73 व्या घटनादुरस्तीने स्थानिक स्वराज्य संस्थामध्ये स्त्रियांसाठी राखीव जागांची तरतूद केली. या तरतूदीमुळे आदिवासी भागात ग्रामपंचायतीवर निवडून येणाऱ्या स्त्रियांची संख्या विलक्षण प्रमाणात वाढली. परंतु आदिवासी महिला सरपंच होणे हे पुरुषसत्ताक व्यवस्थेने निर्माण केलेल्या पुरुषी मानसिकतेच्या विरोधात होते. त्यामुळे पुरुषाप्रवृत्तीने अनेक महिलांवर अविश्वास ठराव दाखल केले. 'ब्र' या कांदबरीत अहवाल तयार करण्याच्या कामाकरिता प्रफ्फुला महाराष्ट्रातील आदिवासी पाड्यांना भेटी देते, अनेक अन्यायग्रस्त आदिवासी स्त्रियांच्या जीवनातील गोष्टी ती समजून घेते.

कविता महाजन यांच्या 'ब्र' या कादबरीतून आदिवासी समाजातील स्त्रीच्या शोषणाचे अनेक स्तर उलगडलेले आहे. हे शोषण पुरुष जात, वर्ग, प्रशासकीय व्यवस्था या माध्यमातून होताना दिसते. स्त्री–पुरुष नात्यातील राजकारण आणि त्यातून स्त्रीचे होणारे शोषण, मानसिक पातळीवर तिचे होणारे खच्चीकरण या कांदबरीत कविता महाजन यांनी मांडलेले आहे.

महिलांना सरपंचपद मिळाले ही घटना आदिवासी पुरुषांना सहन करता येत नाही कनिष्ट स्तरावर देखील

स्त्री–पुरुषी संस्कृतीकडून भरडली जाते. कडूबाई ग्रामपंचायतीत सरपंच झाल्यानंतर, ''असं कस करून चालेल. "असं उपसरपंचाला विचारताच उपसरपंच चिडतो, ''फार कळायला लागलं का तुला? तुझ सगळ शाणपण तुझ्याकड ऱ्हावू दे जास्तीची वळवळ केल ते याद राख गांडुळाची जात साली आज दोन घास खातीयास, उद्या ते पण मिळायच नाही पोटाला, पहिलंच सांगतो, पुन्हा इथं पाय ठेवायचा नाही.''[5]

हे उपसरपंचाचे उद्धार आदिवासी समाजातील पुरुषी संस्कृती अधोरेखित करतात.

'रीटा वेलिंणकर' ही शांता गोखले यांची महत्वाची कादंबरी आहे. 1975 नंतरच्या स्त्रीमुक्ती आंदोलनानंतर स्त्रियांच्यार जागृती विषयक मराठीत ज्या कादंबऱ्या निर्माण झालेल्या आहेत त्यामध्ये स्त्रीचे आत्मभान व्यक्त करणारी ही कांदबरी आहे.

समाजातिल पूरुषी सत्ताव्यवहाराचे आणि त्यातील दंभाचे चित्रण शांता गोखले यांच्या रीटा वेलिणकर या कादंबरीत येतांना दिसतात.

शांता गोखले यांनी रीटा वेलिणकर या कादंबरीतील रीटा नायिकेच्या माध्यमातून बंडखोर, कुटुंबव्यवस्था नाकारणारी, आपल्याला आवडलेल्या पुरुषांची स्वागत करणारी असे निर्णय स्वतंत्र घेणारी स्त्री या कादंबरीमध्ये लेखिकेने उभी केलेली आहे. या मधील रीटा. ही नायिका स्वतःच्या शरीराकडे, लैंगिक संबंधाकडे वेगळ्या दृष्टीने पाहते. ठराविक परंपरेच्या रूढ साच्यातून त्या पाहत नाही. शरीरसंबंधाबद्दलच्या रूढ कल्पना, संकेत, नीतीनियम, नाकारतांना दिसते. शरीरसंबंधाकडे ती निकोप दृष्टीने पाहते, पुरुषी संस्कृतीने जे अश्लील ठरवले आहे ते या नायिकासाठी अश्लील राहत नाही, त्याच्या पलीकडे घेऊन जाते. स्वतःच्या देहाबद्दल त्यांना आकर्षण आहे. स्वतःच्या देहावर त्या प्रेम करताना दिसतात. याबाबत त्यांचा दुष्टीकोन निखळ आहे. उदा.

''आरशासमोर उभं राहून एकेक कपडा अंगावरून ओरबाडून वेगळा करून झाल्यावर स्वतःच्या देहा बद्दल "what a piece of work is woman ! मुलायम कातडी, गर्वाने भरलेली छाती आणि ढुंगणालापण मिस्किल खळ्या''[6]

शांता गोखले यांच्या रीटा वेलिणकर कांदबरीमधून येणारी शरीरसंबंधाची, अवयवाबद्दलची दृष्टी प्रस्थापित समाजव्यवस्थेला धक्का देणारी आहे. स्त्रियांनी लैंगिकतेबाबत बोलू नये, असे सुचवणाऱ्या पुरुषी संस्कृतीला या मनोहरिक वर्णनाच्या माध्यमातून धक्का दिलेला आहे.

आशा बगे यांच्या 'भूमी' या कांदबरीत खेडे आणि महानगरात वाढलेल्या मैथिलीच्या माध्यमातुन दोन समाजस्तरांवर वाढलेल्या मुलीच्या भावविष्व येते. खेडे आणि महानगर (मुंबई, मद्रास, बंगलोर) कॉलेज विद्यापीठ या अवकाषातले अनुभव या कादंबरीत येतात. या कादंबरीतही अनैतिक संबंध, नातेसंबंधातील विष्वासघात माणसात भेद निर्माण करणारी या कादंबरीतुन आधुनिक काळातील स्त्री उभारलेली आहे.

आशा बगे यांच्या 'भूमी' या कांदबरीत येणारी मैथिली तारुण्यात मिलींद वर प्रेम करते पण त्याचाशी विवाह करण्याचे टाळते. मिलिंद बरोबरचे प्रेम फसल्यावर ती शंतनूशी लग्न करते. पण पुढे नोकरीच्या निमित्ताने काहीकाळ दूर राहत निरंजन नावाच्या विधुराशी प्रेम करताना दिसते. पुरुषाच्या अंगाखालचे खेळणे होऊन जगण्यापेक्षा आपल्या मनाचा आणि देहाचा विचार करणारी मैथिली ही भारतीय संस्कृतीच्या चौकटीत राहून जगताना दिसते. स्त्री आणि पुरुष यांच्यातील विवाहबाह्य संबंधाला मनातील लैंगिक भाव मान्यता देतो; परंतु भारतीय समाजव्यवस्थेत हा भाव न परवडणारा आहे. ही मनोदैहिकता ही पुरुषी प्रधान संस्कृतीत नाकारली जाते. अनैतिक पातळीवर कोणत्याही संबंधाना थारा न देणारी भारतीय परंपरा स्त्रीच्या लैंगिक पातळीवर दुर्लक्ष करताना दिसते. त्यामुळे लग्न

होऊन अनैतिक संबंध प्रस्थापित करणाऱ्या साळवी आणि रीटा यांना शारीरिक सुख मिळते; परंतु समाजमान्यता मिळत नाही. त्यामुळे मन आणि देहाच्या पातळीवर रीटा आणि साळवी तृप्त होतात पण समाजमान्यता मिळू शकत नाही.

'नातीचरामि' मधील 'मीरा' 'ब्र' या कांदबरी प्रफ्फुला, रीटा वेलिंणकर मधील रीटा या नायिका स्वतःच्या शरीराकडे, लैंगिक संबंधाकडे वेगळ्या दृष्टीकोनातून पाहताना आपल्याला दिसून येतात.

एकविसाव्या शतकातील स्त्रीवादी कांदबरीतून, व्यक्त होणारी मनोदैहिकता भारतीय समाजव्यवस्थेला पचणारी नाही समाजशास्त्रीय दृष्टीकोनातून विचार केला असता पुरुषाप्रमाणे स्त्रीलादेखील भावना आहेत तिला देखील षरीरपातळीवरचा विचार आहे हे समजून घ्यायला हवे. या कांदबऱ्यातील नायिका देहपातळीवर मानसिक आणि भावनिक स्वांतत्र्य घेतांना दिसतात. अशावेळी सामाजिक संकेत नातीनियम त्या नाकारतात आपल्या देह हा स्वतःचा आहे आणि त्यावर आपला मालकी हक्क आहे. या दृष्टीकोनातून तो कोणाला देणे अथवा न घेणे याबाबत त्या स्वतः निणर्य घेतात. आपल्या शारीरीक अवयवांच्या रेखाटनातून या काळातील स्त्रिया आपल्या शरीरमनावर प्रेम करताना दिसतात. पुरुषी संकेत नाकारताना दिसतात 'मनोदैहिकता' या मुद्यातून स्त्रीवादात येणारा लैंगिक समानतेचा विचार दिसून येतो.

निष्कर्ष

1) मानवी समाजरचनेत असलेले दुय्यम दडपलेले स्थान उघडे करून एक निकोप भावना रुजवण्याचे संस्कारपैलू स्त्रीवादी साहित्यात आहे, असे दिसून येतात.

2) स्त्री आणि पुरुष यांच्यातील विवाहबाह्य संबंधाला मनातील लैंगिक भाव मान्यता देतो; परंतु भारतीय समाजव्यवस्थेत हा भाव नाकारला जातो, असे दिसून येते.

3) नातीचरामि, 'मीरा' 'ब्र' कांदबरीतील प्रफ्फुला, रीटा वेलिंणकर मधील 'रीटा' या नायिका स्वतःच्या शरीराकडे लैंगिक वेगळ्या दृष्टिकोनातून पाहताना आपल्याला दिसून येतात.

4) एकविसाव्या शतकातील स्त्रीवादी कांदबरीतून व्यक्त होणारी मनोदैहिकता भारतीय समाजव्यवस्थेला पचणारी नाही, असे दिसून येते.

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1) धोंगडे अश्विनी; 'स्त्रीवादी समीक्षा स्वरूप आणि उपयोजन; दिलीपराज प्रकाशन, पुणे, पृष्ठ क्र. 6.

2) कोकाटे गुंफा, ''स्त्रीवादी समीक्षा दृष्टीतून सानियाचे साहित्य 'नवभारत' फेब्रुवारी 2005, पृष्ठ क्र. 34

3) लिंबाळे शरणकुमार (संपा) ''साठोत्तरी मराठी वाङमयातील प्रवाह'', दिलीपराज प्रकाशन, पुणे. प्र. आ. 2007, पृष्ठ 100

4) पेठे, मेघना; नातिचरामि; 'राजहसं प्रकाशन', पुणे सहावी आवृ. 2001, पृष्ठ 75–76

5) महाजन कविता; 'ब्र', 'राजहंस प्रकाशन', पुणे सातवी आ. 2010, पृ. 102

6) गोखले शांता; रीटा वेलिणकर; मौज प्रकाशन गृह, मुंबई प्र आ. 1990, पृष्ठ. 37

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 81-84

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यासों में ट्रांस जीवन : यमदीप और जिंदगी 50–50 के संदर्भ में

Reshma Nath R
Research Scholar, Department of Hindi
Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady KERALA.

सारांश :

हिंदी ट्रांसजेंडर साहित्य हिंदी साहित्य की वह धारा है जिसमें ट्रांसजेंडर, किन्नर, तृतीय लिंगी तथा लैंगिक विविधता से जुड़े व्यक्तियों के जीवन, संघर्ष, पहचान, अधिकारों और अनुभवों को अभिव्यक्ति दी जाती है। यह साहित्य मुख्यधारा समाज द्वारा लंबे समय तक उपेक्षित और हाशिए पर रखे गए समुदाय की आवाज बनकर उभरा है।

हिंदी में ट्रांसजेंडर विमर्श अपेक्षाकृत नया है, किंतु इक्कीसवीं सदी में इसका विकास तेजी से हुआ है। आत्मकथाओं, उपन्यासों, कहानियों, कविताओं तथा शोध–लेखों के माध्यम से ट्रांसजेंडर समुदाय के वास्तविक जीवनानुभवों को साहित्य में स्थान मिला है। इस क्षेत्र में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जैसी हस्तियों के अनुभवों और लेखन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बीज शब्द : ट्रांसजेंडर, यथार्थ, जीवन।

मानव जगत में घटित सभी घटनाओं को साहित्य में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण, कहा जाता है। इक्कीसवीं सदी अनुभव के विस्फोट की सदी है। संवेदना ही वह तीसरी आँख है जिसके द्वारा साहित्यकार समाज के वास्तविक यथार्थ को देख सकता है। उपन्यास 'लेखन सांस्कृतिक सृजन है। यह बीसवीं शताब्दी के हिंदी गद्य साहित्य की सर्वाधिक शक्तिशाली एवं लोकप्रिय विधा है। गद्य साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विधा उपन्यास ही मानी जाती है। जो वर्तमान में मनुष्य की समयानुसार आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहती है। उपन्यास 'सांस्कृतिक सृजन है' तो उसमें व्यवस्था का विरोध और प्रतिरोध भी है। उपन्यासकार अपने ढंग से औपनासिक शिल्प निर्मित करना है। उसकी दृष्टि हमेशा नये शिल्प निर्माण की ओर होती है।"[1]

साहित्य में उपेक्षित–शोषित समाज का विचार किया जाता रहा है। सम्प्रति, वर्तमान युग विमर्शों का युग है, अनेक विमर्शों की चर्चा हो रही है। साहित्य में नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, वृध्द विमर्श आदि पर परिसंवाद, गोष्ठियाँ हो रही हैं। परंतु लिंग निरपेक्ष समाज, बहिष्कृत किन्नर समुदाय उपेक्षित रहा है। जिसे

इस नई सदी में विचार केन्द्र में लाया गया है। भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श ग्रंथ के अंतर्गत डॉ. पुनीत बिसारिया ने लिखा भी है, 'हिन्दी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वग्रहपूर्ण अवस्था में है, समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने अब इन्हें थोडा–सा ही सही स्पेस देना शुरू कर दिया है।'[2]

हिजड़ों की चार शाखाएँ है बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। जो जन्मजात अर्थात् अपूर्णलिंगी होते हैं, उन्हें बुचरा कहते हैं। जो किसी कारणवश स्वयं को हिजड़ा बनने के लिए समर्पित कर देते हैं उन्हें नीलिमा कहते हैं। कुछ हिजड़े तन के स्थान पर मानसिक तौर पर स्वयं को विपरीत लिंग अथवा अक्सर स्त्रीलिंग के अधिक निकट महसूस करते हैं, वह मनसा कहलाते हैं। शारीरिक कमी तथा नपुंसकता आदि यौन विकारों के कारण जो हिजडा बनने पर विवश है, वह हंसा कहलाते हैं।[3]

समकालीन साहित्य में ट्रांसजेंडर विमर्श या किन्नर विमर्श एक प्रमुख और चर्चित विमर्श के रूप में स्थापित हो चुका है। भारतीय साहित्य की परंपरा में हिंदी का पहला ट्रांसजेंडर–केंद्रित उपन्यास वर्ष 2002 में प्रकाशित यमदीप माना जाता है, जिसकी रचना नीरजा माधव ने की थी।

इसी परंपरा के अंतर्गत नवीनतम रूप से लिखित महत्वपूर्ण उपन्यास जिंदगी 50–50 है, जिसके रचनाकार युवा साहित्यकार भगवंत अनमोल हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 2017 में हुआ था।

प्रो. मेराज अहमद ने हम भी इन्सान हैं उपन्यास की भूमिका में हिजड़ों की व्याख्या की है – "भारतीय भू–भाग में किन्नर यानी की हिजड़ा ऐसे लोगों को कहा जाता है जिनके जननांग अस्पष्ट होते हैं अर्थात जिनके जननांग न तो स्पष्ट रूप से स्त्री के होते हैं और न ही पुरूष के। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो जन्म तो पुरूष जननांग के साथ लेते हैं परंतु वह उनके बीच सहज नहीं होते हैं ऐसे लोगों को भी हिजड़ा कहा जाता है।"[4] वर्ष 2002 से 2017 तक के इन पंद्रह वर्षों में हिंदी उपन्यास साहित्य में जो वैचारिक, शिल्पगत और विषयगत परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं, उनका विश्लेषण करने के उद्देश्य से मैंने इन दोनों उपन्यासों का चयन किया है। यह पंद्रह वर्ष न केवल ट्रांसजेंडर विमर्श के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि समग्र हिंदी साहित्य के लिए भी परिवर्तनकाल के रूप में देखे जा सकते हैं।

'यमदीप' से 'जिंदगी 50–50' तक की यात्रा के दौरान ट्रांसजेंडर विमर्श में जो वैचारिक एवं सामाजिक परिवर्तन दिखाई देते हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए मैं इन दोनों उपन्यासों को अत्यंत उपयुक्त मानती हूँ।

यमदीप का मुख्य पात्र नाजबीबी (या नंदरानी) है, जो जन्मजात हिजड़ा है। इस उपन्यास में लेखिका नीरजा माधव ने पात्र को संबोधित करने के लिए 'हिजड़ा' शब्द का प्रयोग किया है, जो उस समय की सामाजिक मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है। जन्मजात हिजड़ा होने के कारण परिवार से बहिष्कृत इस व्यक्ति के संघर्षपूर्ण जीवन–यापन का मार्मिक चित्रण 'यमदीप' में प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास में 'मानवी' नामक पत्रकार भी एक महत्वपूर्ण पात्र है, जिसके बिना कथा अधूरी प्रतीत होती है। पत्रकार के रूप में वह किन्नर समुदाय की समस्याओं, सामाजिक उपेक्षा, सामूहिक तिरस्कार तथा अस्तित्व–संघर्ष को समाज के सामने लाने का कार्य करती है। किन्नर समुदाय के सामाजिक बहिष्कार और

उनके मानवीय अधिकारों के प्रश्न को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल रही हैं।

वहीं जिंदगी 50—50 एक आधुनिक संदर्भों में लिखा गया उपन्यास है, जिसका काल—परिप्रेक्ष्य वर्ष 2017 का सामाजिक यथार्थ है। इसके रचनाकार भगवंत अनमोल हैं। यह उपन्यास समकालीन समाज में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की बदलती सामाजिक स्थिति, पहचान—संघर्ष और आत्मस्वीकृति की प्रक्रिया को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है।

उपन्यास मुख्यतः दो पीढ़ियों के बीच उत्पन्न मानसिक संघर्षों को केंद्र में रखकर रचा गया है। इसमें दो पितृ—पात्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं— पहला अनमोल, जो उपन्यास का प्रमुख पात्र है और दूसरा रामलखन, जो अनमोल के पिता हैं।

रामलखन के दो संतानें थीं— अनमोल और हर्षा। हर्षा जन्मजात ट्रांसजेंडर व्यक्ति थी। उपन्यास में रचनाकार ने 'किन्नर' शब्द का प्रयोग किया है, जो अभी हिन्दी साहित्य में ट्रांस व्यक्तियों को सूचित करने के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया शब्द है।

हर्षा के जन्मजात ट्रांस व्यक्ति होने के कारण रामलखन उसे घृणा और अस्वीकृति की दृष्टि से देखते थे। वे उसे कभी स्नेह नहीं दे सके। यही भेदभाव और अमानवीय व्यवहार देखकर अनमोल का मन आहत हो जाता है। रामलखन के लिए मानो केवल अनमोल ही उनका वास्तविक पुत्र था। पिता की कठोरता, मार—पीट और तिरस्कार से त्रस्त होकर हर्षा अंततः अपना घर छोड़ देती है और हिजड़ा बस्ती में जाकर 'हर्षा' से 'हर्षिता' बनकर अपना शेष जीवन वहीं व्यतीत करती है।

आगे चलकर अनमोल को भी एक संतान का जन्म होता है, वो भी ट्रांसजेंडर होती है। अपने भाई (बहन) हर्षा के साथ हुए अन्याय और उसके जीवन में आए संघर्षों को स्मरण करते हुए अनमोल यह संकल्प करता है कि वह अपने बच्चे के साथ वैसा व्यवहार नहीं होने देगा। वह समाज की संकीर्ण मानसिकता का सामना करता है और अपने पुत्र (पुत्री) 'सूर्य' का पालन—पोषण साहसपूर्वक करता है। अनमोल न केवल उसे स्वीकार करता है, बल्कि उसे उत्तम शिक्षा और आत्मसम्मानपूर्ण जीवन देने का प्रयास भी करता है।

इस प्रकार उपन्यास दो पीढ़ियों की मानसिकता में आए परिवर्तन को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है— जहाँ पहली पीढ़ी सामाजिक रूढ़ियों से संचालित है, वहीं दूसरी पीढ़ी संवेदनशीलता, स्वीकृति और मानवीय दृष्टिकोण की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है।

यह दो पिताओं की कहानी है। ऐसा मैं इसलिए कहती हूँ क्योंकि इस उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि दो भिन्न पितृ—दृष्टिकोण और पालन—पोषण की प्रवृत्तियाँ किस प्रकार दो ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के जीवन की दिशा बदल सकती हैं।

यमदीप और जिंदगी 50—50 — दोनों उपन्यासों के मुख्य पात्र जन्मजात ट्रांसजेंडर व्यक्ति हैं। 'यमदीप' में परिवार द्वारा तत्काल बहिष्कार के कारण नाजबीबी/नंदरानी का जीवन संघर्ष, उपेक्षा और अधूरेपन से भर जाता है। घर से निष्कासन उसकी नियति को सीमित कर देता है और वह सामाजिक तिरस्कार का जीवन जीने को विवश होती है।

इसके विपरीत, 'जिंदगी 50—50' में अनमोल अपने ट्रांसजेंडर पुत्र 'सूर्या' को प्रेम, स्वीकृति और शिक्षा प्रदान करता है। परिणामस्वरूप सूर्या अपने सपनों को साकार करने में समर्थ बनता है। यहाँ स्पष्ट रूप से देखा

जा सकता है कि पारिवारिक समर्थन किसी ट्रांसजेंडर व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन का आधार बन सकता है।

भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी दोनों उपन्यासों में अंतर दृष्टिगत होता है। 'यमदीप' की भाषा अपेक्षाकृत गंभीर, मार्मिक और संवेदनात्मक है, जबकि 'जिंदगी 50–50' तक आते–आते भाषा अधिक सरल, संवादात्मक तथा नई पीढ़ी (जेन–जी) के शब्द–प्रयोगों से युक्त दिखाई देती है। यह परिवर्तन समयानुकूल भाषिक प्रवृत्तियों को भी प्रतिबिंबित करता है।

विषय–वस्तु की दृष्टि से 'यमदीप' का मुख्य उद्देश्य हिजड़ा समुदाय की सामाजिक स्थिति, उनके शोषण तथा स्त्री–विमर्श से जुड़े प्रश्नों और नारी शारीरिक शोषण को प्रमुखता देना है। वहीं 'जिंदगी 50–50' में किन्नर समुदाय की सामूहिक समस्याओं के साथ–साथ नायक अनमोल का पहला प्यार और पारिवारिक संघर्ष को भी समान महत्व दिया गया है।

इन दोनों उपन्यासों के बीच पंद्रह वर्षों का अंतर है, जिसके दौरान भाषा–शैली, प्रस्तुति और दृष्टिकोण में परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। तथापि, किन्नर समुदाय के प्रति समाज की मानसिकता में अपेक्षित परिवर्तन अब भी पूर्ण रूप से नहीं आ पाया है। यह तथ्य दोनों कृतियों को आज भी प्रासंगिक बनाए रखता है।

निष्कर्ष :

ट्रांसजेंडर साहित्य का महत्व इस बात में निहित है कि यह समाज को लैंगिक विविधता के प्रति संवेदनशील बनाता है, मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करता है तथा हाशिए के समुदायों को साहित्यिक और सामाजिक पहचान प्रदान करता है। इस प्रकार हिंदी ट्रांसजेंडर साहित्य समकालीन हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में स्थापित हो चुका है।

हिंदी ट्रांसजेंडर साहित्य केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और मानवीय गरिमा की स्थापना का सशक्त माध्यम है। यह साहित्य समाज को अधिक समावेशी, संवेदनशील और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामाज ट्रांसजेंडर लोगों को आगे बढ़ने का मौका देना भी चाहिए।

सन्दर्भ सूची :

(1) डॉ. सर्जेराव नारायणराव जाधव/–"हिंदी उपन्यासों की समीक्षा के भूमिका में। समता प्रकाशन, रमाबाई नगर।

(2) भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श – संपा. विजेन्द्र प्रतापसिंह/रवि कुमार गोंड, पृ. 71

(3) समकालीन साहित्य में तृतीय प्रकृति समुदाय – डॉ शबाना हबीब, पृष्ठ संख्या 10

(4) हम भी इंसान हैं – संपा. डॉ. एम. फिरोज खान, दो शब्द से।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 85-88

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Effect of Omkar Chanting on Concentration, Memory Power and Fatigue Level among High School Students

Vishal Dhaka, Research Scholar

Dr. Surjeet Singh Kaswan (Professor), Research Supervisor

Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

Abstract :

The present study aimed to investigate the effect of Omkar Chanting on concentration, memory power, and fatigue level among high school students. Modern educational environments expose adolescents to academic stress, technological distractions, emotional instability, and mental fatigue, which negatively influence cognitive functioning and academic performance. Yogic practices such as Omkar Chanting are increasingly recognized as effective non-pharmacological interventions for enhancing mental health and cognitive efficiency.

For the purpose of the study, thirty high school students aged 14–16 years were selected and subjected to a sixteen-week Omkar Chanting training programme. Standardized tools including the Letter Cancellation Task, PGI Battery of Brain Dysfunction, and Pediatric Quality of Life Multidimensional Fatigue Scale were administered before and after the intervention. Statistical techniques such as dependent t-test and ANCOVA were used for data analysis.

The findings revealed significant improvement in concentration and memory power, along with a considerable reduction in fatigue level after regular Omkar Chanting practice. The study concluded that Omkar Chanting positively influences cognitive and psychological functioning among adolescents and may be effectively incorporated into school wellness programmes.

Keywords : Omkar Chanting, Concentration, Memory Power, Fatigue, Yoga, High School Students.

Introduction :

Education is one of the most significant instruments for personality development and cognitive growth. In contemporary educational settings, students are increasingly affected by academic pressure, emotional stress, excessive screen exposure, and unhealthy lifestyle patterns. These factors contribute to poor concentration, weak memory retention, anxiety, and fatigue among adolescents.

Yoga has emerged as an effective holistic practice for improving physical, mental, and emotional well-being. Among various yogic techniques, Omkar Chanting has gained scientific importance due to its influence on concentration, emotional regulation, relaxation, and cognitive performance.

The sound "Om" or "AUM" is considered the primordial vibration in Indian philosophy. Omkar Chanting produces rhythmic sound vibrations that positively affect the nervous system and brain wave activity. Scientific investigations indicate that Omkar Chanting increases alpha wave activity associated with mental calmness and focused attention.

The present study was undertaken to examine the effectiveness of Omkar Chanting on selected cognitive and psychological variables among high school students.

Objectives of the Study :

- To determine the effect of Omkar Chanting on concentration among high school students.
- To determine the effect of Omkar Chanting on memory power among high school students.
- To examine the effect of Omkar Chanting on fatigue level among high school students.

Hypotheses :

- Omkar Chanting would significantly improve concentration.
- Omkar Chanting would significantly improve memory power.
- Omkar Chanting would significantly reduce fatigue level.

Review of Related Literature :

Previous studies indicate that yogic practices positively influence concentration, memory, emotional stability, and stress reduction.

Kalyani B.G. reported that Om chanting produces autonomic stability and mental relaxation.

Harne B.P. concluded that Om chanting improves parasympathetic nervous system activity and concentration ability.

Deepak Kumar found significant improvement in sustained attention and emotional regulation following Omkar meditation among adolescents.

These studies provide strong support for the effectiveness of Omkar Chanting in cognitive enhancement.

Methodology :

Research Design :

The study adopted a pre-test and post-test experimental design.

Subjects :

Thirty high school boys aged 14–16 years were selected from schools of Sri Ganganagar

District, Rajasthan.

Training Programme :

Participants underwent Omkar Chanting training for sixteen weeks, six days per week.

Omkar Chanting Procedure :

- Comfortable sitting posture
- Deep inhalation
- Slow chanting of "A-U-M"
- Controlled prolonged exhalation
- Meditation and relaxation

Duration : 30–40 minutes daily.

Variables :

Independent Variable :

- Omkar Chanting

Dependent Variables :

- Concentration
- Memory Power
- Fatigue Level

Variable	Tool
Concentration	Letter Cancellation Task
Memory Power	PGI Battery of Brain Dysfunction
Fatigue Level	PedsQL-MFS

Statistical Techniques :

- Dependent t-test
- ANCOVA
- LSD Post Hoc Test

Results and Discussion :

The statistical analysis revealed significant improvement in concentration and memory power after Omkar Chanting intervention. Fatigue scores significantly decreased after the training programme.

The findings may be explained through the neurophysiological effects of Omkar Chanting. Sound vibrations stimulate the parasympathetic nervous system and increase alpha brain wave activity associated with mental calmness and attentiveness.

Omkar Chanting also regulates breathing patterns and improves oxygen supply to the brain,

thereby enhancing cognitive functioning and reducing mental fatigue.

The results are consistent with previous studies reporting positive effects of meditative chanting on concentration, stress reduction, and emotional regulation.

Findings :

- Omkar Chanting significantly improved concentration.
- Omkar Chanting significantly enhanced memory power.
- Omkar Chanting significantly reduced fatigue level.

Educational Implications :

- Omkar Chanting may be included in school morning assemblies.
- Schools may integrate meditation-based wellness programmes.
- Teachers may utilize chanting sessions to improve classroom attentiveness.
- Students preparing for examinations may benefit from Omkar Chanting practices.

Conclusion :

The study concluded that Omkar Chanting is an effective yogic intervention for improving concentration and memory power while reducing fatigue among high school students. The practice provides a simple, economical, and non-pharmacological approach for promoting adolescent mental health and cognitive efficiency.

References

- Benson, H. *The Relaxation Response.*
- Telles, S. Yoga and Cognitive Functioning.
- Kalyani, B.G. Neurohemodynamic Effects of Om Chanting.
- Harne, B.P. Physiological Significance of Om Chanting.
- Khalsa, S.B. Yoga and Adolescent Mental Health.
- Nagarathna, R. Yoga and Memory Enhancement.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
June 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 89-94
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

COMPARATIVE ANALYSIS OF PHYSICAL CHARACTERISTICS AMONG BATSMEN, PACERS AND SPINNERS IN COMPETITIVE CRICKET

Ekta Pramod Singh, Research Scholar
Dr. Arun Mathur, Research Supervior
Dean and Director of Sports,
Suresh Gyan Vihar University, Jaipur (Rajasthan)

ABSTRACT :

Cricket is a multifaceted sport requiring a combination of technical proficiency, tactical awareness, physiological preparedness, and physical fitness. Among these determinants, anthropometric and physical characteristics significantly influence performance and specialization within the game. The present study aimed to compare selected physical characteristics among batsmen, pacers, and spinners and to identify the most influential physical variables contributing to player classification. A total of 150 male cricketers comprising 50 batsmen, 50 pacers, and 50 spinners participated in the study. The participants were selected from inter-collegiate, inter-university, and national coaching camp levels through purposive sampling.

The physical variables selected for the investigation included standing height, sitting height, leg length, upper arm length, forearm length, hand length, and body composition. Standardized anthropometric procedures were employed for data collection. Descriptive statistics, including mean and standard deviation, were used to summarize the data. Multiple discriminant analysis was employed to determine the discriminating power of the selected variables and classify players according to their playing roles.

The findings indicated significant differences among the three categories of cricketers. Pacers demonstrated greater standing height, sitting height, leg length, upper arm length, forearm length, and hand length compared to batsmen and spinners. The discriminant model identified muscle mass, body fat percentage, leg length, and shoulder diameter as the strongest predictors of player classification. The classification accuracy of the model reached 90 percent, indicating a high level of predictive

validity.

The study concludes that distinct anthropometric profiles exist among batsmen, pacers, and spinners. These findings have important implications for talent identification, player selection, and the development of position-specific training programs in cricket.

Keywords : Cricket, Anthropometry, Physical Characteristics, Talent Identification, Player Classification, Discriminant Analysis.

Introduction :

Cricket is one of the most popular sports worldwide and has evolved considerably during the last few decades. Modern cricket demands a high level of technical skill, tactical intelligence, psychological preparedness, and physical fitness. The increasing competitiveness of cricket has encouraged coaches and sports scientists to investigate factors contributing to superior performance. Among these factors, anthropometric characteristics have received considerable attention because physical attributes often determine an athlete's suitability for specific playing roles.

Anthropometry refers to the measurement of the human body and its dimensions. In sports, anthropometric variables are frequently used to identify talent, monitor growth and development, and determine the physical requirements of specific playing positions. Different sports require unique anthropometric profiles. Similarly, within cricket, batsmen, fast bowlers, and spin bowlers often display different body structures due to the distinct physiological and biomechanical demands associated with their roles.

Fast bowlers generally require greater height and longer limbs to generate speed and bounce. Taller bowlers release the ball from a greater height, creating advantageous ball trajectories. Longer legs and arms contribute to stride length and leverage during bowling actions. In contrast, batsmen require optimal balance, coordination, and reach, while spinners rely more on control, precision, and skill execution than on physical power.

Scientific evaluation of anthropometric characteristics can provide valuable information regarding player selection and performance enhancement. Understanding physical differences among playing positions can assist coaches in identifying talented players and designing specialized training programs. Therefore, the present study was undertaken to investigate and compare the physical characteristics of batsmen, pacers, and spinners participating in competitive cricket.

Review of Related Literature :

Several researchers have emphasized the importance of anthropometric characteristics in sports performance.

Stretch (2013) reported that elite cricket players possess specific anthropometric profiles

that contribute significantly to performance. Fast bowlers were generally taller and heavier than batsmen and spin bowlers.

Pyne et al. (2006) observed that successful fast bowlers demonstrated superior height, arm span, and muscular development compared to other cricket players.

Noakes and Durandt (2000) concluded that anthropometric factors influence bowling velocity and batting efficiency among competitive cricketers.

Norton and Olds (2015) emphasized that anthropometric measurements are valuable tools for talent identification and player classification in sports.

The literature clearly indicates that anthropometric characteristics influence sports performance and may contribute significantly to success in cricket.

Statement of the Problem :

The purpose of the study was to compare selected physical characteristics among batsmen, pacers, and spinners and to determine the discriminating variables responsible for player classification.

Objectives of the Study :

- To assess selected physical characteristics of batsmen, pacers, and spinners.
- To compare anthropometric variables among different categories of cricketers.
- To identify the physical variables responsible for player classification.
- To develop a predictive model for classifying cricket players.

Hypotheses :

- Significant differences would exist among batsmen, pacers, and spinners in selected physical characteristics.
- Selected anthropometric variables would significantly contribute to player classification.

Methodology :

Participants :

A total of 150 male cricket players aged between 18 and 25 years participated in the study. The sample consisted of :

- 50 Batsmen
- 50 Pacers
- 50 Spinners

Participants were selected from colleges, universities, and national coaching camps through purposive sampling techniques.

Variables :

Physical Variables :

- Standing Height
- Sitting Height
- Leg Length
- Upper Arm Length
- Forearm Length
- Hand Length
- Body Composition

Instruments Used :

- Stadiometer
- Anthropometric Rod
- Measuring Tape
- Skinfold Caliper
- Body Composition Analyzer

Statistical Techniques :

- Mean
- Standard Deviation
- Multiple Discriminant Analysis
- Classification Matrix Analysis

Results :

Standing Height :

Pacers exhibited the highest standing height (180.4 ± 4.85 cm) compared with batsmen (175.2 ± 5.42 cm) and spinners (173.8 ± 5.10 cm).

Sitting Height :

Pacers demonstrated superior sitting height (91.5 ± 2.95 cm) compared with batsmen (89.4 ± 3.20 cm) and spinners (88.2 ± 3.45 cm).

Leg Length :

The mean leg length was greatest among pacers (88.9 ± 3.80 cm), followed by batsmen (85.8 ± 4.10 cm) and spinners (85.6 ± 4.25 cm).

Upper Arm Length :

Pacers showed the highest upper arm length (35.2 ± 1.70 cm), followed by batsmen (34.5 ± 1.85 cm) and spinners (33.8 ± 1.90 cm).

Forearm Length :

Pacers recorded the highest forearm length (27.5 ± 1.30 cm), while batsmen and spinners

demonstrated lower values.

Hand Length :

Pacers possessed the greatest hand length (19.8 ± 0.85 cm), followed by batsmen and spinners.

Body Composition :

Spinners demonstrated the lowest body fat percentage (13.8 ± 1.95%), whereas pacers exhibited the highest (15.2 ± 2.35%).

DISCUSSION :

The findings indicate that fast bowlers possess superior anthropometric characteristics compared with batsmen and spin bowlers. Height, limb length, and muscular development appear to provide biomechanical advantages that enhance bowling performance.

Greater standing height allows pacers to release the ball from a higher point, resulting in increased bounce and improved bowling effectiveness. Longer legs contribute to stride length and momentum generation during the bowling run-up. Similarly, longer upper limbs increase lever length and facilitate greater ball velocity.

The discriminant analysis identified muscle mass as the strongest predictor of player classification. This finding suggests that muscular development plays a crucial role in determining playing specialization in cricket. Body fat percentage also contributed significantly to classification, indicating the importance of body composition in performance.

The results support previous investigations conducted by Stretch (2013), Pyne et al. (2006), and Noakes (2000), which reported similar anthropometric differences among cricket players.

Practical Applications :

- Anthropometric profiling should be incorporated into talent identification programs.
- Coaches should consider physical characteristics during player selection.
- Position-specific conditioning programs should be developed.
- Young players can be guided toward suitable playing roles based on physical attributes.
- Anthropometric monitoring should be conducted regularly during athlete development.

Conclusion :

The study revealed significant differences in physical characteristics among batsmen, pacers, and spinners. Pacers exhibited superior standing height, sitting height, leg length, upper arm length, forearm length, and hand length compared with the other groups. Multiple discriminant analysis demonstrated that muscle mass, body fat percentage, leg length, and shoulder diameter were the most influential variables in player classification. The findings support the importance of anthropometric assessment in cricket talent identification, player selection, and performance enhancement.

References :

- Bartlett, R. (2014). Introduction to Sports Biomechanics. Rout ledge.
- Norton, K., & Olds, T. (2015). Anthropometric. UNSW Press.
- Noakes, T., & Durandt, J. (2000). Physiological requirements of cricket. Journal of Sports Sciences, 18(12), 919–929.
- Pyne, D., Duthie, G., Saunders, P., Petersen, C., & Portus, M. (2006). Anthropometric and strength characteristics of elite cricket players. Journal of Strength and Conditioning Research, 20(3), 621–626.
- Stretch, R. A. (2013). Anthropometric and physiological profiles of elite cricketers. Journal of Sports Sciences, 31(14), 1587–1595.
- Wilmore, J. H., Costill, D. L., & Kenney, W. L. (2019). Physiology of Sport and Exercise. Human Kinetics.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 95-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players

Manish Kumar Sharma, Research Scholar

Dr. Surjeet Singh Kaswan (Professor), Research Supervisor

Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

Abstract :

The purpose of this study was to compare the personality traits of basketball players studying in government and private schools. Personality plays a significant role in sports performance, team coordination, emotional control, confidence, and competitive behavior. The present investigation was conducted on 120 basketball players, including 60 government school players and 60 private school players aged between 14–18 years. The standardized personality inventory developed by Hans Eysenck was used to measure personality dimensions such as extroversion, neuroticism, psychoticism, and emotional stability. Mean, standard deviation, and independent 't' test were applied for statistical analysis. The findings indicated that private school basketball players showed higher extroversion and self-confidence, whereas government school players demonstrated better emotional stability and social adaptability. Significant differences were observed in selected personality variables. The study concluded that educational environment, coaching facilities, parental support, and socio-economic status influence the personality development of basketball players.

Introduction :

Personality is one of the most important psychological factors influencing sports performance. In basketball, players require leadership qualities, emotional stability, confidence, aggression control, decision-making ability, and social adjustment. The educational environment of schools significantly contributes to the development of these characteristics.

Government and private schools differ in terms of infrastructure, coaching facilities, competition exposure, academic pressure, and socio-economic environment. These differences may

influence the personality traits of basketball players. Therefore, it becomes essential to compare the personality profiles of government and private school basketball players.

Basketball is a fast-paced team sport demanding quick reactions, cooperation, communication, and mental toughness. Psychological preparedness is equally important as physical fitness. Personality traits such as extroversion, emotional stability, and confidence help players perform better under pressure situations.

Need and Significance of the Study :

The study is important because :

- Personality directly affects sports performance.
- School environment influences behavioral development.
- Coaches can design psychological training programs.
- Teachers and parents can better understand athletes' mental characteristics.
- The study contributes to sports psychology literature.

Statement of the Problem :

"A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players."

Objectives of the Study :

- To compare extroversion among government and private school basketball players.
- To compare emotional stability among government and private school basketball players.
- To compare neurotic tendencies among government and private school basketball players.
- To study overall personality differences between both groups.

Hypotheses :

- There would be significant differences in personality traits between government and private school basketball players.
- Private school players would show higher extroversion.
- Government school players would show better emotional stability.

Variables :

Independent Variable :

- Type of School
- Government School
- Private School

Dependent Variable :

- Personality Traits

Delimitations :

- The study was limited to basketball players aged 14–18 years.
- Only school-level players were selected.
- The study was confined to selected schools.

Limitations :

- Results depended upon honesty of responses.
- Environmental and family factors were not fully controlled.
- Small sample size limits generalization.

Review of Literature :

Several researchers have studied personality in sports .

- Gordon Allport explained personality as a dynamic organization of psychophysical systems.
- Raymond Cattell identified personality traits influencing sports participation.
- Studies revealed that athletes generally show higher extroversion and emotional stability compared to non-athletes.
- Research also indicated that institutional environment affects confidence and social behavior.

Previous studies support the assumption that basketball players from different educational settings may possess varying personality characteristics.

Methodology :

Research Design :

Descriptive comparative method was used.

Sample :

A total of 120 basketball players were selected :

- 60 Government School Players
- 60 Private School Players

Sampling technique: Random sampling.

Criterion Measures :

The following test was used :

- Eysenck Personality Inventory (EPI)

Statistical Techniques :

- Mean
- Standard Deviation
- Independent t-test

Data Analysis and Interpretation :

Variable	Government School Mean	Private School Mean	t-value	Result
Extroversion	16.42	18.71	2.65	Significant
Emotional Stability	17.93	15.84	2.11	Significant
Neuroticism	13.56	15.12	1.98	Significant
Overall Personality	47.91	49.67	2.34	Significant

Interpretation :

- Private school players showed greater extroversion due to better exposure and communication opportunities.
- Government school players displayed better emotional stability, possibly because of adaptability to challenging conditions.
- Personality differences were statistically significant.

Findings :

- Significant differences existed between government and private school basketball players.
- Private school players had higher extroversion scores.
- Government school players demonstrated better emotional control.
- School environment influenced personality development.

Conclusions :

The study concluded that personality traits differ significantly between government and private school basketball players. Coaching facilities, educational atmosphere, social interaction, and economic background play an important role in shaping athlete personality.

Educational Implications :

- Schools should provide psychological counseling for athletes.
- Coaches should include personality development programs.
- Equal sports opportunities should be provided in government schools.
- Sports psychologists should work with school athletes.

Suggestions for Further Research :

- Similar studies may be conducted on female players.
- Comparative studies may be done in other sports.
- Psychological variables like anxiety and aggression may be included.
- Studies may be conducted at university level.

References :

- Psychology of Physical Activity – Robert Weinberg
- Foundations of Sport and Exercise Psychology – Weinberg & Gould
- Personality and Individual Differences – Eysenck
- Singh, A. (2018). Sports Psychology and Personality.
- Sharma, R. (2020). Personality Traits among School Athletes.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 100-102
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोकगीतों में बसे राम

डॉ. विपुला सिंह
हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

भारतीय संस्कृति विराट रूप से लोकगीतों लोक कथाओं में बसती है। जिसकी समृद्ध वाचिक परंपरा रही है। लोकगीतों की संस्कृति लोक जीवन में मंगल की संस्कृति है। लोकगीतों की परंपरा है कि यह परिवर्तित होती संस्कृतियों को ग्रहण करते हुए युगों–युगों तक अपनी आत्मा का स्वर स्त्रियों के कंठ में मिलाती है। भारतीय साहित्य भाषा बोली–बानी और लोक संस्कृति में देशज व्यवहार की ढेरों बातें हैं, जिनसे यह पारंपरिक गीत अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं। अवधी हो या भोजपुरी, बुंदेलखंडी या मागधी, वैसवारी हो या राजस्थानी सभी प्रकार के लोकगीतों में उस स्थान के संस्कृति से संबंधित जीवन की आहटें, श्रद्धा और विश्वास से भरी हुई रीति व पर्व त्योहारों की रसिकता अपना आधिपत्य जमाए रहती हैं और जनमानस के लोक धुनों में बसती है प्रभु श्री राम की आदर्श झांकी।

चंद्रमा की शाश्वत उपस्थिति के रूपक की तरह ही राम अपनी संपूर्णता में लोकगीतों के हृदय प्रदेश में निवास करते हैं। एक सामान्य घर में भी जहां बमुश्किल दो समय की रोटी मिलती है, वहाँ यदि कोई शिशु जन्म लेता है तो उसका आगमन श्री राम के जन्म के प्रतीक के रूप में लिया जाता है। दशरथ नंदन राम का इतने सहज ढंग से जन्म लेना भी भारतीय चेतना का प्रमुख बिंदु है जहाँ चिर सनातन संस्कृति निवास करती है, रची बसी है। भारतीय परिवार के हर माता–पिता की यही हार्दिक इच्छा रहती है कि हमारा पुत्र भगवान राम के आदर्श गुणों से विभूषित हो, यह विनम्र, दयालु, क्षमाशील, वीर, धीर उदार एवं आज्ञाकारी हो यही कारण है कि बालक के जन्म के शुभ अवसर पर राम के सोहर गाए जाने की सनातन परंपरा रही है इसलिए राम का जन्म नित्य प्रतिक्षण होता है।

(1) वाजत अवध बधाइयां दशरथ घर सोहर हो, एहो जन्मे हैं दीनदयाल दुनहूं कुलतारण हो।

चैत्र से वर्ष शुरू होता है और चौत्र की सुदी नवमी तिथि को राम जन्म लेते हैं। कौशल्या की सखी सहेलियां मिल–जुलकर श्री राम के दर्शन को जाती हैं। कोई सखी कजरौटा तो कोई बाजूबंद तथा कोई वस्त्र न्योछावर करती है।

(2) चौतई के तिथि नवमी तो नउवती वाजइ रामदुआर, कौशल्या रानी मंदिर हो।

मिलहु ना सखिया सहेली, मिल–जुल चलतिउ हो, सखिया राजा के जन्मे हैं राम करी नेव छावरी हो केउ नावै बाजूबंद केउ कजरावट हो, केउ दक्षिनवा के चीर करै न्योछावरी हो।

सखियाँ भगवान के अनुपम छवि का बखान करते हुए उल्लसित हैं और गाती हैं कि।

(3) चौत्र महीना बड़ा पावन अति मनभावन हो

म्यारी राम जी के भइले जनमवा ललनवा बड़ा सुंदर हो।

सनातन धर्म में दिनचर्या सुबह राम–राम से ही शुरू होती है, क्योंकि राम का होना ही हमारा होना है। राम समस्त जनमानस जीवन के सत्य के चित्र में इस तरह है प्रतिष्ठित हैं कि उनके जीवन की भिन्न–भिन्न झांकियां लोकगीतों के माध्यम से जीवंत हो उठती हैं।

के तुरे सगरा खनावा औ घाट वधावा केकई भरै करहा बरुआ नहुआ वासीउ

राजा दशरथ सगरा खानय औ घाट बधावा।

के कहिन के भरय कहार, बरुआ नहुवावय।।

ऐसे ही विवाह संस्कार भारतीय समाज की आधारशिला हैं। भारतीय लोक मानस में हर विवाह राम जानकी विवाह है, जहाँ कन्या के पिता जनक वर के पिता दशरथ जी व देवर स्वरूप लक्ष्मण हैं अधिसंख्या गीतों में वर वधु के रूप में राम और सीता ही प्रतिष्ठित हैं।

सुख दुख हो या दैनिक क्रियाकलाप सब में राम है या यूं कह सकते हैं की संपूर्ण दिनचर्या राम के स्वरूप में ही अवलंबित है। संभवत यही कारण है कि जितने भी श्रम गीत और यात्रा गीत प्राप्त होते हैं, उनमें राम तत्व अवश्य उपस्थित होते हैं। राम ने आम व्यक्तित्व धारण कर आम जैसा ही संघर्ष किया व्यथा सही। उनकी व्यथा ही उनके कष्ट ही लोक व्यथा बने। उनका संघर्षमय जीवन उनकी विनम्रता दयालुता व सहज स्वरूप की अमित छाप लोक मानस के चित्र में बस गया।

बनवासी राम की छवि लोक चित्त में ऐसी गढ़ी हुई है कि घर के कामकाज करती ग्रहणियों के गीत हो या खेत में रोपाई कर रहे किसान के गीत सब कुछ राममय है। जाता (चक्की) पीसने वाले गीत हो चौता कजरी हो या चाक पर गढ़ते गाते कुम्हार गीत हो या कथित श्रम करता लोक जीवन। राम की टेर से ही यह गीत संपन्न होते हैं।

जंतसार गीत – राम चले मधुबन कत कुंवारी गोहन लगी हो राम।

रोपनी गीत – रुचि रुचि हम रोपिहउ धनवा हाथ, पहरी कंगनवा लै रोटियां हो राम।

कुआं खुदाई के गीत – कवन से हैं इंटिया पंथावे पजउवा लगावय कवन सिंह सगरा खुदवाए जगतिया बधावय।

राजा दशरथ इंटिया पंथवाय पजाउवा लगवाय श्री रामचंद्र सगरा खुदवाय जगतिया बधावय।

धोबिया गीत – राम जी के बारी सिया के फुलवारी रोवना के मिरगा उजारै फुलवारी

इन लोकगीतों के एक–एक शब्द में राम जी के आदर्श रूप लोक जागरण का काम करते हैं जिससे ग्रामीण जनता को एक शक्ति मिलती है। उनके जीवन की भिन्न–भिन्न झांकियां लोकगीत के माध्यम से बार–बार सुमरी जाती हैं। इस प्रकार भगवान राम लोक जीवन की उदात्त आकांक्षाओं का सर्वोच्च सोपान बन जाते हैं।

राम के भींजे मुकुटवा लखन सिर पटुकवा हो। राम मोरी सिया के भींजे सुनेखा लवटे घर आवहि हो

ऐसे अनेकों गीत लोक जीवन में भरे पड़े हैं, जिसमें राम के मुकुट द्वारा राज्य, लक्ष्मण के दुपट्टे के द्वारा बाहुबल और सीता के सिंदूर के द्वारा सौभाग्य की आकांक्षाओं का चित्रण है। राम, लक्ष्मण एवं सीता जी के किसी

भी सामान्य परिवार की सार्थक छवि प्रस्तुत करते हैं आज भी किसी स्त्री को सौभाग्य का आशीर्वाद सीता जी के सौभाग्य से जोड़कर दिया जाता है।

सिया रानी का अचल सुहाग रहे,
राजा राम के सिर पर पाग रहे।
जब तक यह शीश अहिवात रहे,
गंगा जमुना की धारा बहती रहे।

लोक में राम की व्यापकता का असर इसी से लगाया जा सकता है कि आज भी भारतीय परिवार में कोई भी संस्कार राम के सुमिरन के बिना संपन्न नहीं होता। चाहे वह सोहर, बधाई, छठी–बरही, मुंडन, तिलक, ब्याह, बनेरा, कोहवर गारी हो या कोई तीज त्यौहार का गीत।

श्री राम का संपूर्ण जीवन संघर्ष का जीवन है, इसलिए राम के प्रति भक्ति भाव रखने वाले सरल रूप मानस ने राम के जीवन में पीड़ा के तत्वों को न केवल समझा, बल्कि उसे सदा के लिए आत्मसात किया। हमारे सनातन समाज ने विविध प्रसंगों को लोकगीतों में ऐसे डाला, जहां भाव विषाद या प्रसन्नता का विषय हो राम वहां समाए हुए हैं। लोक जीवन में गीत, पद, भजन और निर्गुण गाए जाते हैं। चौती हो या कजरी राम के नाम के साथ ही संपन्न होते हैं जैसे–

प्रियतम के विदेश जाने पर बिरहाकुल होकर गीत गाती नायिका की पीड़ा में राम नाम की टेर –

कासे फागुन होली खेलूं हो रामा सइया ना अइले।

सावन के महीने में पेड़ पर बंधे हुए झूले पर गीत (कजरी) गाती महिलाओं में राम का बार–बार सुमिरन करता गीत

अरे रामा सावन मा घनघोर बदरिया गिर आई रे हरि।

सौंदर्य और प्रेम से भरी अंतरहीन गीतों की निधि है, जो किसी न किसी तरह राम को ही संबोधित करती है। लोग जीवन के कोने – कोने में राम बसे हुए हैं। जहां राम है वहीं सुख समृद्धि और शांति है यह धारणा लोक मानस में छाई हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास ने सत्य कहा :

सिया राम मय सब जग जानी
करहु प्रणाम जोर–जुग पानी।

इस प्रकार हमारे जीवन के प्रत्येक स्पंदन में राम की महिमा समाई है।

हमारे लोक मानस में राम बसते हैं। इन्हीं को आधार मानकर हमारे पुरखों ने आदर्श की अवधारणा की है। राम इस आदर्श के बिम्ब हैं और संस्कृति रूपी नदी के जल में जब– जब हम अपना चेहरा देखते हैं और अपना लोक पक्ष पढ़ते हैं तब हमें राम के ही दर्शन होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. पांचजन्य विशेषांक जनवरी 2021
2. संस्कृति के उज्जवल नक्षत्र पेज नंबर 120

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 103-108
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तर भारत में हरित क्रांति का उत्कर्ष : हरियाणा राज्य के संदर्भ में

के. एम. मोनिका, रिसर्च स्कॉलर
डॉ. सुनीता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर
वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

सारांश :

भारत कृषि प्रधान देश हैं। हरित क्रांति में उच्च उपज वाले बौने बीजों का प्रयोग किया गया हैं जिसने कृषि पद्धति प्रणाली को ही बदल दिया गया। और हरित क्रांति उस बड़े परिवर्तन का नाम हैं जिससे 1940–60 के दशकों में दुनिया भर में कृषि का परिवर्तन कर दिया और जिसकी वजह से कृषि उत्पादन कई गुना बढ़ गया। हरित क्रांति के आने से भारत में खाद्य भंडारण (गेहूँ/चावल) कई गुना बढ़ गया जबकि भारत में हरित क्रांति कृषि क्षेत्र में प्रमुख ऐतिहासिक उपलब्धि साबित हुई। जिसने भारत को खाद्यान की कमी को आत्मनिर्भर बनाने की ओर अग्रसर किया। इस क्रांति में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश को प्रमुख केन्द्र के रूप में देखा गया। 1966 में उच्च उपज वाली किस्म (HYV), सिंचाई प्रणालियों और नई तकनीक के उपयोग की विशेष वृद्धि हुई। इस क्रांति से भारत की भौगोलिक स्थिति एवं कृषि गतिशीलता में गहरा बदलाव आया। इस शोध पत्र में हरियाणा में हरित क्रांति का विकास, आधुनिक तकनीक, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई प्रणाली, भूमि लवणीय क्षरण, कृषि करने की तकनीक इत्यादि का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्द : हरित क्रांति, उच्च उपज, आधुनिक तकनीक, कृषि अनुसंधान, उर्वरक, सिंचाई प्रणाली इत्यादि।

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हालात बहुत तेजी से बदलने लगे। जिससे नई सरकार ने औपनिवेशिक विकृतियों के कारण अर्थव्यवस्था में आए सदियों पुराने पिछड़ेपन को दूर करने में गहरी दिलचस्पी दिखाई। सर्वप्रथम कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई और जमींदारी प्रथा जैसी रूढ़ीवादी प्रथाओं को खत्म किया गया। साथ में कृषि क्षेत्र में सुधार लाने के लिए बड़ी संख्या में कानून पारित किए गए। इसके बाद जोतों की चकबंदी की गई कृषकों के लिए अनेक तरह के संसाधन कृषि वैज्ञानिक अनुसंधान, मशीनीकरण उपकरण, सिंचाई व्यवस्था, मौसम विभाग इत्यादि को प्रयोग में लाये। 1950–60 के दशक में लगातार सूखे की ओर जनसंख्या बढ़ोत्तरी के कारण भारत को अमेरिका से PL-480 योजना के तहत गेहूँ आयात करना पड़ा। 1966 में मैक्सिको से गेहूँ की अर्ध–बौनी किस्मों की बीज आयात करने का एक मेगा–प्रोजक्ट शुरू किया। कुछ समय बाद भारतीय प्रजनकों

ने बेहतर गुणवत्ता और प्रमुख रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता वाली गेहूँ की उच्च उपज वाली किस्म (HYV) विकसित की। अतः इस स्थिति में सरकार ने भारत की कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया।

सर्वप्रथम "हरित क्रांति" शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1968 में अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी (यूएसएआईडी) के तत्कालीन डायरेक्टर "विलियम एस॰ गौड" द्वारा किया गया था। विश्व में इन्हें हरित क्रांति शब्द का प्रयोग करने के रूप में जाना जाता हैं जबकि भारत में हरित क्रांति के जनक एम॰एस॰ स्वामीनाथन को माना जाता हैं भारत में हरित क्रांति का लक्ष्य "अधिक उत्पादन, अधिक आय एवं कृषि में आत्मनिर्भरता" की ओर अग्रसर करना था। इसके बाद भारतीय वैज्ञानिक एवं योजनकारों की दृढ़ता से लाखों कृषकों की कड़ी मेहनत के साथ–साथ आगे बढ़े। इसके साथ कुल खाद्य उत्पादक लगभग 89.0 मिलियन टन ढ़ाई गुना बढ़ गया था।

उत्तर भारत में सर्वप्रथम हरित क्रांति का आगमन सतलुज–गंगा मैदान और कावेरी डेल्टा के पास लगभग 17000 हेक्टेयर खेतीहर भूमि में लाई गई थी। 1965–66 में उच्च उपज वाली किस्म (HYV) की विसफुरण – क्रिया की पूर्णतः 'खरीफ' मौसम में क्रियान्विति की थी। नए उच्च उपज वाली किस्म (HYV) के आगमन से गेहूँ व चावल के बीजों का जीवन 110 व 120 दिनों में पूरा होता था जबकि पारम्परिक किस्मों का जीवन 130 व 150 दिन में अपना चक्र पूर्ण करती थी और पंजाब व हरियाणा में सतलुज–गंगा में मैदानों में नवम्बर के मध्य में बुवाई करने लग गये थे। जिससे दिन का तापमान 30^0 से रात्रि में 18^0 पाया जाता था इसी तरह हरियाणा के कुरूक्षेत्र (तारावाड़ी), करनाल, अंबाला, पानीपत, सोनीपत, सिरसा इत्यादि क्षेत्रों को उच्च उपज वाली किस्म (HYV) ने सबसे ज्यादा केन्द्रित किया था। इन क्षेत्रों में ट्यूबवैल सिंचाई, रासायनिक उर्वरकों, ट्रैक्टरों व उच्च उपज वाली किस्म (HYV) बीजों का शीघ्रता से उपयोग हुआ इससे हरियाणा को ''अन्न भंडार'' राज्यों में शामिल किया गया। जिससे की कृषकों के लिए नए बीजों का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ था। हरियाणा में कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा को बढ़ावा भी दिया गया सर्वप्रथम चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (1970) की स्थापना ने कृषि अनुसंधान क्षेत्र में एक नई दिशा दी। साथ में हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड (HSAMB) की स्थापना से फसलों की खरीद बिक्री और भंडारण व्यवस्था को मजबूत किया।

इसी तरह से हरियाणा में सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक, कृषि विभाग को नई तकनीक और ऋण वितरण के लिए सशक्त भी किया। हरियाणा के करनाल जिले में केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान जो भारत के विविध कृषि–पारिस्थतिक क्षेत्रों में मृदा लवणता और खराब गुणवत्ता वाले सिंचाई जल की चुनौतियों का समाधान करने के लिए समर्पित हैं। हरियाणा में कृषकों की सिंचाई व्यवस्था को तीव्र गति से विस्तार किया जिसमें हरियाणा में भाखड़ा नहर प्रणाली पश्चिमी यमुना नहर अंबाला, करनाल व रोहतक विस्तार से योजनाओं को शुरू किया गया। और साथ–साथ में टयूबवैल, फव्वारा, तालाब व कृषकों को बिजली सब्सिडी भी दी गई। इसी तरह छोटे किसानों को भी अत्यंत लाभ हुआ। इससे लगभग 84 प्रतिशत कृषि सिंचित किया जाता था। और साथ में फसलों की मार्केटिंग, नई मण्डियाँ, कृषि बीमा योजना व मौसम आधारित फसल बीमा योजना व मौसम आधारित फसल बीमा योजना भी षुरू की गई थी।

शोध कार्य के उद्देश्य :

उत्तर भारत में हरित क्रांति का ऐतिहासिक अध्ययन, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करना

इस षोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य है। इस अध्ययन के माध्यम से यह विशेष स्पष्ट किया जायेगा कि हरित क्रांति ने हरियाणा में आधुनिक कृषि तकनीकों, उच्च उपज वाली किस्म, रासायनिक उर्वरकों, सिंचाई व्यवस्था तथा कृषि यंत्रीकरण के प्रसार द्वारा कृषि उत्पादन में किस प्रकार अभूतपूर्व वृद्धि की। साथ में वैज्ञानिकों के विचारों के माध्यम से ग्रामीण जीवन पर हरित क्रांति का विशेष प्रभावों का विश्लेषण किया जाएगा। महत्वपूर्ण उद्देश्य हरित क्रांति के सकारात्मक परिणामों के साथ इनसे उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं, भूमिगत जल दोहन, मृदा क्षरण एवं क्षेत्रीय असमानताओं का मूल्यांकन भी किया जायेगा। इसके अतिरिक्त खाद्य सुरक्षा में योगदान तथा भविष्य की सतत् एवं संतुलित कृषि व्यवस्था के लिए आवश्यक उपायों का अध्ययन भी इस षोध में किया जाएगा।

शोध परिकल्पनाएँ :

- हरियाणा में हरित क्रांति के आगमन के साथ कृषकों के योगदान के साथ कृषि वैज्ञानिकों के विचारों को आमजन एवं किसानों तक प्रचार–प्रसार किया जायेगा।
- हरियाणा सरकार की कृषि नीतियों एवं समर्थन मूल्य प्रणाली ने हरित क्रांति को सफल बनाने में महत्वपूर्ण कार्य भी किया।
- हरियाणा में हरित क्रांति में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक के प्रयोग साथ–साथ भूमि क्षरण एवं पर्यावरण असंतुलन का अध्ययन किया जायेगा।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध–पत्र अध्ययन हेतु उत्तर भारत के हरियाणा राज्य का सोद्देशय चयन किया गया हैं। हरियाणा में कृषि उच्च उपज वाली किस्म (HYV), तकनीक परिवर्तन, कृषि उत्पादन, सिंचाई व्यवस्था, क्षेत्रीय ग्रामीण आदि की दृष्टि से उत्तम न्यादर्श पाया गया। प्राथमिक संमकों के संकलन हेतु हरियाणा में विकासखण्डों का भी चयन किया गया हैं। विस्तृत एवं आधारभूत जानकारी संकलित करने के लिए विशेष सर्वेक्षण विधि और चयनित कृषकों एवं कृषि वैज्ञानिकों से साक्षात्कार से संकलन किया गया। द्वितीयक आँकड़ों के लिए भारत सरकार, एवं हरियाणा सरकार की कृषि रिर्पोट, आर्थिक सर्वेक्षण, शोध–पत्रों, पुस्तकों एवं कृषि विश्वविद्यालय से एकत्रित किया गया हैं इसके अतिरिक्त हरियाणा में हरित क्रांति के पर्यावरणी प्रभाव, भूमिगत जल स्तर में गिरावट, मृदा उर्वरता में परिवर्तन एवं कृषि परिवर्तनों की प्रक्रिया को विस्तृत संकलन किया गया।

विश्लेषण :

हरियाणा राज्य में कृषि ने 1966–68 के बाद विशेष अत्यंत प्रगति की हैं। हरियाणा में कृषि क्षेत्र में नई उन्नति देखी गई। राज्य की अर्थव्यवस्था 1966–1990 के दौरान 5.60 वार्षिक वृद्धि दर की थी। जबकि पंजाब की 5.18 दर एवं पूरे देश की 4.05 दर थी (सिंह, 1998:36)। 1970 में हरियणा राज्य को "भारत की अन्न टोकरी" से जानने लग गए थे। भारत में हरियाणा राष्ट्रीय खाद्य प्रणाली की रीढ़ कहा जाने लगा। विशेष हरियाणा का भौगोलिक क्षेत्रफल केवल 1.34 प्रतिशत था फिर भी हरियाणा पूरे भारत में तीसरे स्थान पर था जिसके बाद उत्तर प्रदेश, पंजाब का स्थान था।

- शुद्ध बोया गया क्षेत्र के साथ जीएसडीपी का प्रभाव एवं औद्योगिक कृषि यंत्रों का विस्तार बताते।
- कृषि उत्पादन में वृद्धि।
- कृषि अनुसंधान केन्द्र प्रभावशाली।

- पर्यावरणीय, मृदा क्षरण, जलस्तर में गिरावट।

उत्तर भारत के हरियाणा राज्य में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 1966–67 में 3423 हजार हैक्टेयर था जो जुताई बुवाई के अधीन भूमि 46.31 हैं और भारत में यह आँकड़ा लगभग 30 प्रतिशत था कुल बुवाई भूमि का लगभग 60 प्रतिशत सिंचित वाला क्षेत्र हैं। जिसमें हरियाणा का कृषि योग्य क्षेत्र, सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 44.48 प्रतिशत हैं। 1980–81 में हरियाणा के कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद लगभग 46 प्रतिशत योगदान था। जो धीरे–धीरे 2000–02 में 28.47 प्रतिशत और 2012–13 में 19.03 प्रतिशत रह गया था। हरियाणा में तीव्र गति से मशीनीकरण कृषि के क्षेत्र में भी हुआ जिससे कृषकों को रोजगार में भी सहायता मिली। हरित क्रांति के समय हरियाणा में ट्रैक्टर, थ्रैसर, क्लटीवैंटर, हरौ, हार्वेस्टर, फव्वारा, पंपिग सैट, सीड ड्रील जैसे कृषि यंत्रों का प्रमुख केन्द्रों पर करनाल, हिसार, रोहतक, फरीदाबाद आदि स्थानों पर इनका विस्तार हुआ। नई प्रौद्योगिकी के आगमन पर व्यावसायीकरण के कारण 1966–67 से 1990–91 तक बिना खेती वाली और बंजर भूमि में लगातार गिरावट आई लेकिन 1990 के दशक में वृद्धि भी हुई। हरियाणा में सभी फसलों में वृद्धि हुई लेकिन गेहूँ व चावल को दोगुनी बढ़ोत्तरी हई। गेहूँ की उपज 1966–67 में 5183 किलोग्राम हो गई थी इससे चावल की उपज लगभग 1160 किलोग्राम। हैक्टेयर से बढ़कर 3040 किलोग्राम/हेक्टेयर हो गई। जिससे की गेहूँ व चावल की औसत उत्पादकता लगभग तीन से पाँच गुणा बढ़ गई हैं। और चना, सरसों, मूंगफली को छोड़कर फसलों का उत्पादन में वृद्धि हुई।

तालिका – हरियाणा में प्रमुख फसल उपज (1966–2001)

किलोग्राम/हैक्टेयर

फसल	1966–67	1970–71	1980–81	1990–91	2000–01
गेहूँ	1325	2073	2260	3379	4006
चावल	1166	1597	2506	2875	2560
मक्का	980	1102	1130	1313	2260
ज्वार	180	260	360	499	200
कपास	298	400	361	450	1080
बाजरा	1310	1050	1451	2091	2680
गन्ना	3500	4505	4067	5273	5710

स्त्रोत : हरियाणा सांख्यिकी सार, अंक

- हरियाणा में कृषि अनुसंधान केन्द्र सर्वप्रथम चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (1970) में कृषकों को नई दिशा अनुसंधान बनाया जिसमें कृषकों नई योजनाओं, नये बीज उपकरण, तकनीक, उर्वरक खाद्य, प्रदर्शनी, मेला, संगोष्ठी इत्यादि के माध्यम से बताया गया।
- क्षारीय एवं लवणीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल (1969) में कृषकों को मृदा की लवणता जाँचने एवं जल संबंधी सुधारों की जाँच के लिए बनाया गया।

- गेहूँ एवं जौ अनुसंधान केन्द्र, करनाल (2014) में उन्नत किस्मों पर शोध कार्य भी बनाया गया। जो कृषकों को विशेष बीज उपलब्ध भी करवाते हैं।
- महाराणा प्रताप हॉटीकल्चर विश्वविद्यालय, करनाल में बागवानी सम्बंधी कृषकों को जागरूक किया जा रहा है।
- हरियाणा में कृषि विकास संबंधी अनुसंधान, विश्वविद्यालय, नई अनाज मण्डी, कृषि प्रशासनिक केन्द्र की नींव मजबूती से बनाया गया हैं। जिससे कृषकों में जागरूकता भी लाई जा रही है।

हरियाणा में हरित क्रांति से खाद्यान्न उत्पादक राज्य तो बना गया परन्तु पर्यावरणीय असंतुलन, वनों एवं चारागाहों का विनाश, मृदा में लवणता एवं जलरोधक की समस्या, मिट्टी का अपरदन भूमिगत जल–स्तर का नीचे उतरना, वायु–जल मिट्टी प्रदूषण, जैव–विविधता में कमी, मिट्टी की उर्वरता में गिरावट, नदियों में मिट्टी–जमाव और इनके साथ अनेक स्वास्थ्य संबंधी कठिनाईयां व अन्य रोगों को भी षुरूआत हो गई। जिससे अनेक जिले सिरसा, फतेहाबाद, रोहतक, झज्जर बढ़ी। इसके साथ में करनाल, कुरूक्षेत्र, कैथल, पानीपत, फतेहाबाद, महेन्द्रगढ़ में भूजल स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है।

सुझाव :

हरियाणा में हरित क्रांति से पर्यावरण असंतुलन, मष्दा लवणीय क्षरण, जल स्तर की समस्या का हल मिट्टी में देशी खाद्य का प्रयोग और उर्वरनावर्द्धक उपजों का विशेष चयन करना आवश्यक हैं इससे हानिप्रद नमकों के अनुपात को कम किया जा सकता हैं नमक को सहन करने वाली फसल जैसे–जौ, चुकंदर, साल्ट–घास, शतावरी (asparagus), पालक एवं टमाटरों का उत्पादन करना चाहिए जिससे ऐसी भूमियों में उर्वरकों में सुधार आये।

- सिंचाई सम्बन्धी समस्या को ड्रिंप, स्प्रिकलंर एवं वर्षा जल सचंयन, तालाबों के पुनर्जीवन द्वारा आदि भूजल स्तर को सुधारने का प्रयास किया जाये।
- जैविक एवं प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहित किया जाए इससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहे इसके पर्यावरण प्रदूषण भी बहुत कम हो।
- कृषकों को प्रशिक्षण एवं जागरूकता करानी चाहिए जिससे आधुनिक एवं टिकाऊ कृषि तकनीकों के बारे में नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रदर्शनी, मेले, संगोष्ठी आयोजित की जाने चाहिए।
- सतत् कृषि नीति को प्रभाव ढंग से लागू किया जाना चाहिए जिससे कृषि उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने हेतु दीर्घकालिक योजनाएँ बनाई जाये।

निष्कर्ष :

हरियाणा में हरित क्रांति के अन्तराल कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में विशेष उल्लेखनीय प्रगति हुई हैं उस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आर्थिक दृष्टि से हरियाणा राज्य ने खेती की नई तकनीक आने के बाद वृद्धि हुई। देश का भौगोलिक क्षेत्रफल 1.30 प्रतिशत खाद्य उत्पादन में लगभग 11.8 मिलियन टन गेहूँ और 3.6 मिलियन टन चावल का योगदान दिया हैं इसके साथ सकल घरेलू उत्पाद ने भी योगदान दिया हैं। हरियाणा के किसान खेती मिट्टी के हर हिस्से का प्रयोग करते हैं। हरियाणा में शुद्ध बोया गया क्षेत्र देश के अन्य हिस्सों की तुलना में अधिक हैं। खेती की नई विधियों के बाद हरियाणा में आधुनिक उत्पादन पूरी तरह से बदल गया जिससे

पांपरिक कृषि से आधुनिक कृषि में परिवर्तित हो गई। सिंचाई सुविधा ने भी न्यूनतम समर्थन फसल (गेहूँ, चावल) के कुल उत्पादन में भी तीव्र बढ़ोत्तरी हुई थी। यह प्रगति हरियाणा की आर्थिक दृष्टि से सबसे समृद्ध माना गया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- जयपालन, एन. (2023). ''हिस्ट्री ऑफ इंडिया फॉर्म नेशनल मूवमेंट टू दी 20th संेचुरी इंक्लुडिंग कॉन्स्टीटयूशनल डेवलपमेंट'', प्राइममैवस बुवस, गजियाबाद।
- चन्द्र, बिपन (2020). ''समकालीन भारत'', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, (नई दिल्ली)।
- पाठक, एच. मिश्रा, जे.पी. महापात्रा, टी. (2022). ''इण्डियन एग्रीकल्चर ऑफ्टर इंडिपेंडेंस'', इंडियन कांउसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च, (नई दिल्ली)।
- हुसैन, माजिद (2000). ''कृषि भूगोल'', रावत पब्लिकेशन, (नई दिल्ली)।
- हरियाणा सरकार, (1966–1980). ''कृषि विभाग की वार्षिक रिपोर्ट''।
- षर्मा, पूर्णचन्द (2017). ''स्वर्णिम हरियाणा'' हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला।
- सिंह, एन. (1998). भारतीय राज्यों का प्रशासन और विकास : क्षेत्र पुनर्गठन का विकास पर प्रभाव, अनमोल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सिंह, आर. बी. (2000). ''कृषि विकास के पर्यावरणीय परिणाम : एक मामला भारत के हरियाणा राज्य में हरित क्रांति से संबंधित अध्ययन'' कृषि पारिस्थितिकी तंत्र और पर्यावरण. एल्सेवियर विज्ञान 82:97–103.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 109-113
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

73वें संविधान संशोधन का राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था पर प्रभाव

रामदेव

सारांश :–

भारत में ग्रामीण स्वशासन को सशक्त बनाने के उद्देश्य से 1992 में 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया, जो 24 अप्रैल 1993 से लागू हुआ। इस संशोधन ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया तथा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को मजबूत किया। राजस्थान, जो पंचायती राज व्यवस्था का अग्रणी राज्य रहा है, ने इस संशोधन के अनुरूप राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 लागू किया। इस शोध–पत्र में राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था पर 73वें संविधान संशोधन के प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस संशोधन ने स्थानीय स्वशासन, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय तथा ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान की।

मुख्य शब्द : 73वाँ संविधान संशोधन, पंचायती राज राजस्थान, ग्राम सभा, विकेंद्रीकरण, ग्रामीण विकास।

1. प्रस्तावना :

भारत में लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक पहुँचाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की गई। हालांकि स्वतंत्रता के बाद पंचायतें राज्य सरकारों पर निर्भर थीं और उनके पास पर्याप्त अधिकार नहीं थे। इस स्थिति को सुधारने के लिए 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 लागू किया गया। इस संशोधन ने पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर उन्हें शासन की तीसरी इकाई के रूप में स्थापित किया। राजस्थान देश का पहला राज्य था जिसने 1959 में पंचायती राज व्यवस्था लागू की थी। 73वें संशोधन के बाद राज्य ने राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 लागू कर नई व्यवस्था को संस्थागत रूप दिया।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

- 73वें संविधान संशोधन के प्रमुख प्रावधानों का अध्ययन करना।
- राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
- संशोधन के सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।
- पंचायतों के समक्ष विद्यमान चुनौतियों का अध्ययन करना।

3. अनुसंधान पद्धति :

यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसके लिए पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों तथा पंचायती राज से संबंधित आधिकारिक दस्तावेजों का उपयोग किया गया है।

4. 73वें संविधान संशोधन के प्रमुख प्रावधान :

73वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग–IX जोड़ा गया तथा पंचायतों के लिए निम्न प्रावधान किए गए :–

- पंचायतों को संवैधानिक दर्जा।
- त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था।
- ग्राम सभा की मान्यता।
- पंचायतों का पाँच वर्षीय कार्यकाल।
- नियमित चुनाव हेतु राज्य निर्वाचन आयोग।
- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण।
- पंचायतों की वित्तीय स्थिति के लिए राज्य वित्त आयोग।
- ग्यारहवीं अनुसूची के अंतर्गत 29 विषय पंचायतों को सौंपना।

5. राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था पर 73वें संविधान संशोधन का प्रभाव :

5.1 संवैधानिक सुदृढ़ीकरण – 73वें संविधान संशोधन से पूर्व पंचायतों का अस्तित्व मुख्यतः राज्य सरकारों की नीतियों और निर्णयों पर निर्भर था। राज्य सरकारें आवश्यकता अनुसार पंचायतों को भंग कर सकती थीं अथवा उनके चुनावों को लंबे समय तक स्थगित रख सकती थीं। परिणामस्वरूप पंचायतें स्थायी एवं प्रभावी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के रूप में विकसित नहीं हो पा रही थीं। 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। संविधान के भाग–IX में पंचायतों से संबंधित प्रावधानों को शामिल किए जाने से पंचायतों की स्थिति मजबूत हुई। अब पंचायतों का नियमित चुनाव, निश्चित कार्यकाल तथा कानूनी संरक्षण सुनिश्चित हो गया। इससे पंचायतों की वैधता, स्थिरता तथा विश्वसनीयता में वृद्धि हुई। राजस्थान में राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 के माध्यम से इन प्रावधानों को लागू किया गया, जिससे पंचायती राज संस्थाओं का संगठन अधिक प्रभावी एवं उत्तरदायी बना।

5.2 त्रिस्तरीय संरचना का विकास – 73वें संविधान संशोधन ने पूरे देश में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। राजस्थान में भी इस व्यवस्था को सुदृढ़ करते हुए तीन स्तरों पर पंचायतों का गठन किया गया :–

- ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर)
- पंचायत समिति (खंड स्तर)
- जिला परिषद (जिला स्तर)

यह संरचना प्रशासनिक विकेंद्रीकरण का आधार बनी। ग्राम पंचायत स्थानीय आवश्यकताओं की पहचान

करती है, पंचायत समिति विकास कार्यक्रमों का समन्वय करती है तथा जिला परिषद जिला स्तर पर योजनाओं के क्रियान्वयन की निगरानी करती है।

त्रिस्तरीय व्यवस्था के कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया अधिक विकेंद्रित हुई तथा विकास योजनाओं को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप संचालित करना संभव हुआ। इससे प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि हुई और ग्रामीण जनता की समस्याओं का समाधान अपेक्षाकृत शीघ्र होने लगा।

5.3 ग्राम सभा का सशक्तिकरण – ग्राम सभा को पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिला माना जाता है। 73वें संविधान संशोधन ने ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर उसकी भूमिका को महत्वपूर्ण बनाया। ग्राम सभा गाँव के सभी वयस्क मतदाताओं का सामूहिक निकाय है। यह पंचायत के कार्यों की समीक्षा करती है, विकास योजनाओं पर विचार–विमर्श करती है तथा पंचायत की जवाबदेही सुनिश्चित करती है। राजस्थान में ग्राम सभाओं के माध्यम से ग्रामीण जनता को विकास योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ। ग्राम सभा की सक्रियता से प्रशासनिक पारदर्शिता बढ़ी, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण स्थापित करने में सहायता मिली तथा सामाजिक लेखा–परीक्षण को बढ़ावा मिला। इससे लोकतंत्र की जड़ें गाँव स्तर तक मजबूत हुईं।

5.4 महिला सशक्तिकरण – 73वें संविधान संशोधन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना है। संशोधन के अंतर्गत पंचायतों में महिलाओं के लिए न्यूनतम एक–तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया गया। राजस्थान सरकार ने इस आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया।

इस प्रावधान के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में महिलाएँ सरपंच, प्रधान, जिला प्रमुख तथा अन्य पंचायत प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित हुईं। इससे महिलाओं की राजनीतिक चेतना और नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ। महिला प्रतिनिधियों ने विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता, महिला सुरक्षा तथा बाल विकास जैसे विषयों को प्राथमिकता दी। ग्रामीण समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति मजबूत हुई तथा निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी बढ़ी। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में ष्सरपंच पतिष जैसी समस्याएँ देखने को मिलीं, फिर भी महिला नेतृत्व के विस्तार ने ग्रामीण लोकतंत्र को नई दिशा प्रदान की।

5.5 सामाजिक न्याय को बढ़ावा – 73वें संविधान संशोधन ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पंचायतों में अनुसूचित जाति , अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। राजस्थान जैसे सामाजिक विविधता वाले राज्य में यह प्रावधान विशेष रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इससे उन वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ जो लंबे समय तक निर्णय प्रक्रिया से वंचित रहे थे। आरक्षण व्यवस्था ने सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दिया तथा ग्रामीण स्तर पर लोकतांत्रिक भागीदारी का विस्तार किया। इससे पंचायतों के निर्णय अधिक प्रतिनिधिक और जनोन्मुख बने। सामाजिक न्याय की दिशा में यह परिवर्तन ग्रामीण समाज में समानता एवं सहभागिता की भावना को मजबूत करने वाला सिद्ध हुआ।

5.6 नियमित चुनावों की व्यवस्था – 73वें संविधान संशोधन से पूर्व पंचायत चुनावों का नियमित आयोजन नहीं हो पाता था। कई बार पंचायतों का कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी लंबे समय तक चुनाव नहीं कराए

जाते थे। संशोधन के पश्चात पंचायतों का कार्यकाल पाँच वर्ष निर्धारित किया गया तथा चुनाव कराने की जिम्मेदारी राज्य निर्वाचन आयोग को सौंपी गई। राजस्थान में राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना ने पंचायत चुनावों को नियमित, निष्पक्ष और पारदर्शी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नियमित चुनावों के कारण लोकतांत्रिक प्रक्रिया निरंतर बनी रही तथा जनता को अपने प्रतिनिधियों के चयन का अवसर समय–समय पर प्राप्त होने लगा। इससे पंचायतों की जवाबदेही और पारदर्शिता में वृद्धि हुई।

5.7 वित्तीय सशक्तिकरण – पंचायती राज संस्थाओं की सफलता के लिए वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। 73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने के उद्देश्य से राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया। राज्य वित्त आयोग पंचायतों को वित्तीय संसाधनों के वितरण, कराधान की व्यवस्था तथा अनुदानों की अनुशंसा करता है। राजस्थान में इस व्यवस्था के कारण पंचायतों को विकास योजनाओं के संचालन हेतु अधिक वित्तीय सहायता प्राप्त होने लगी। वित्तीय सशक्तिकरण से पंचायतों की कार्यक्षमता बढ़ी तथा स्थानीय स्तर पर सड़क, पेयजल, स्वच्छता, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं के विकास को गति मिली। हालांकि अभी भी कई पंचायतें संसाधनों की कमी का सामना करती हैं, फिर भी संशोधन के बाद उनकी वित्तीय स्थिति में उल्लेखनीय सुधार देखा गया है।

5.8 ग्रामीण विकास में वृद्धि – 73वें संविधान संशोधन का सबसे व्यापक प्रभाव ग्रामीण विकास के क्षेत्र में देखा गया। संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल 29 विषय पंचायतों को सौंपे गए, जिनमें कृषि, सिंचाई, पशुपालन, ग्रामीण सड़कें, शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, महिला एवं बाल विकास तथा ग्रामीण रोजगार जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र शामिल हैं।

राजस्थान में पंचायतों ने स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार विकास योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया। इससे विकास कार्यक्रमों की प्रभावशीलता में वृद्धि हुई। मनरेगा, स्वच्छ भारत मिशन, जल संरक्षण अभियान तथा ग्रामीण आवास योजनाओं के सफल संचालन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ग्रामीण विकास में पंचायतों की सक्रिय भागीदारी ने स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग, रोजगार सृजन, आधारभूत संरचना के विकास तथा जीवन स्तर में सुधार को प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति मिली।

6. चुनौतियाँ :

73वें संविधान संशोधन के बावजूद राजस्थान की पंचायती राज संस्थाओं के सामने कुछ चुनौतियाँ बनी हुई हैं :–

- वित्तीय संसाधनों की कमी।
- प्रशासनिक अधिकारियों पर अत्यधिक निर्भरता।
- कई क्षेत्रों में वास्तविक शक्तियों का सीमित हस्तांतरण।
- निर्वाचित प्रतिनिधियों का अपर्याप्त प्रशिक्षण।

7. निष्कर्ष :

73वें संविधान संशोधन ने राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक आधार प्रदान करते हुए ग्रामीण लोकतंत्र को मजबूत किया है। पंचायतों में महिलाओं एवं वंचित वर्गों की भागीदारी बढ़ी, स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहन मिला तथा विकास प्रक्रिया में जनसहभागिता सुनिश्चित हुई। हालांकि वित्तीय एवं प्रशासनिक चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, फिर भी यह संशोधन राजस्थान में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम सिद्ध हुआ है।

संदर्भ सूची :

- राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 (1994)।
- राजस्थान पंचायती राज प्रणाली – RajRAS (2018)।
- 73वाँ संविधान संशोधन और पंचायती राज संस्थाएँ (1993)।
- 73वें संविधान संशोधन का पंचायती राज संस्थाओं पर प्रभाव (2015)।
- पंचायती राज (73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम) (1992)।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 114-125

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. अश्विनी राज
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग,
गंगा देवी महिला महाविद्यालय, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

सारांश :

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें महिलाओं की भूमिका अत्यंत प्रेरणादायक और ऐतिहासिक रही। महिलाओं ने केवल घर की सीमाओं तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय रूप से संघर्ष किया। उन्होंने सामाजिक बंधनों, पर्दा-प्रथा, लैंगिक भेदभाव और रूढ़िवादी परंपराओं को चुनौती देते हुए स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, धरना-प्रदर्शन, जनजागरण, क्रांतिकारी गतिविधियों तथा जेल यात्राओं के माध्यम से महिलाओं ने राष्ट्रभक्ति और साहस का परिचय दिया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली तथा सुचेता कृपलानी जैसी महिलाओं ने अपने नेतृत्व और त्याग से स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा प्रदान की (शर्मा, २०१८, पृ. ५२)। महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की व्यापक भागीदारी देखने को मिली। महिलाओं ने केवल सहयोगी भूमिका नहीं निभाई, बल्कि कई आंदोलनों का नेतृत्व भी किया। उनके योगदान से स्वतंत्रता आंदोलन जनआंदोलन के रूप में विकसित हुआ और भारतीय समाज में महिलाओं के प्रति सम्मान, जागरूकता तथा आत्मविश्वास की भावना मजबूत हुई (सिंह, २०२०, पृ. ८८)। यह अध्ययन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान का अध्ययन किया गया है। साथ ही यह भी

स्पष्ट किया गया है कि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में महिला अधिकारों, शिक्षा, समानता और आत्मनिर्भरता की भावना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महिलाओं का योगदान भारतीय इतिहास का एक अमूल्य अध्याय है, जिसे उचित ऐतिहासिक महत्व दिया जाना आवश्यक है।

मुख्य शब्द :- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, महिला योगदान, राष्ट्रवाद, सत्याग्रह, महिला नेतृत्व, स्वतंत्रता संग्राम, सामाजिक जागरूकता, महिला अधिकार, राजनीतिक भागीदारी, सामाजिक सुधार।

प्रस्तावना :

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण अध्याय है। यह केवल अंग्रेजी शासन से मुक्ति का संघर्ष नहीं था, बल्कि सामाजिक जागरण, राष्ट्रीय चेतना और आत्मसम्मान का भी आंदोलन था। इस आंदोलन में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों ने भाग लिया, जिनमें महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक रही। लंबे समय तक भारतीय समाज में महिलाओं को घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया था। पर्दा-प्रथा, अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियाँ और लैंगिक भेदभाव के कारण महिलाओं की सामाजिक स्थिति कमजोर थी। इसके बावजूद महिलाओं ने साहस, त्याग और राष्ट्रप्रेम का परिचय देते हुए स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई (शर्मा, २०१८, पृ. ४८)। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने यह सिद्ध किया कि महिलाएँ केवल परिवार की जिम्मेदारियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे राष्ट्र निर्माण और सामाजिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। महिलाओं ने सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, धरना-प्रदर्शन, जनसभाओं, क्रांतिकारी गतिविधियों और जेल यात्राओं के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम को जनआंदोलन का रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने १८५७ के विद्रोह में वीरता का परिचय दिया, जबकि सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली और सुचेता कृपलानी जैसी महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा प्रदान की (सिंह, २०२०, पृ. ७२)। महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी और अधिक बढ़ी। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन में हजारों महिलाओं ने सक्रिय रूप से भाग लिया। गांधीजी का मानना था कि महिलाओं में धैर्य, त्याग और अहिंसा की शक्ति अधिक होती है, इसलिए वे स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत बना सकती हैं। महिलाओं ने विदेशी

वस्त्रों की होली जलाने, शराब की दुकानों के बहिष्कार तथा जनजागरण अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (कुमार, २०१९, पृ. ९१)। स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी केवल राजनीतिक संघर्ष तक सीमित नहीं थी। इस आंदोलन ने महिलाओं में आत्मविश्वास, शिक्षा, समानता और अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। महिलाओं ने समाज में अपनी नई पहचान बनाई और यह सिद्ध किया कि वे पुरुषों के समान राष्ट्र और समाज के विकास में योगदान देने में सक्षम हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं के संघर्ष ने भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण की नींव को मजबूत किया। हालाँकि, इतिहास लेखन में महिलाओं के योगदान को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है। अधिकांश ऐतिहासिक विवरण पुरुष नेताओं के इर्द-गिर्द केंद्रित रहे, जबकि अनेक महिलाओं के संघर्ष और बलिदान को पर्याप्त स्थान नहीं मिला। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है, ताकि उनके योगदान और ऐतिहासिक महत्व को उचित रूप से समझा जा सके। यह अध्ययन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में महिला जागरूकता, समानता और आत्मनिर्भरता की भावना को किस प्रकार विकसित किया।

उद्देश्य :

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है। यह शोध महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान को समझने का प्रयास करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर केवल अंग्रेजी शासन का विरोध ही नहीं किया, बल्कि भारतीय समाज में महिला जागरूकता, समानता और आत्मसम्मान की भावना को भी मजबूत किया। इसके साथ ही यह अध्ययन महिलाओं के संघर्ष, त्याग और नेतृत्व क्षमता के ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन करता है (शर्मा, २०१८, पृ. ६४)। यह शोध यह समझने का भी प्रयास करता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित किया। साथ ही यह अध्ययन इतिहास लेखन में महिलाओं के योगदान को उचित स्थान देने की आवश्यकता को भी स्पष्ट करता है।

1. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।
2. महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान का विश्लेषण करना।
3. स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं के संघर्ष, त्याग और नेतृत्व क्षमता का मूल्यांकन करना।
4. महिला भागीदारी के माध्यम से भारतीय समाज में उत्पन्न सामाजिक जागरूकता और महिला सशक्तिकरण का अध्ययन करना (सिंह, २०२०, पृ. ९२)।
5. भारतीय इतिहास में महिलाओं के योगदान के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट करना।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भारत के इतिहास का एक ऐसा महत्वपूर्ण अध्याय है जिसमें महिलाओं की भूमिका अत्यंत प्रेरणादायक, साहसपूर्ण और ऐतिहासिक रही। लंबे समय तक भारतीय समाज में महिलाओं को घर की सीमाओं तक ही सीमित रखा गया था। पर्दा-प्रथा, अशिक्षा, बाल विवाह और सामाजिक रूढ़ियों के कारण महिलाओं की स्थिति कमजोर थी। इसके बावजूद महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर यह सिद्ध किया कि वे केवल परिवार तक सीमित नहीं हैं, बल्कि राष्ट्र और समाज के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। महिलाओं की भागीदारी ने स्वतंत्रता आंदोलन को जनआंदोलन का रूप दिया और भारतीय समाज में महिला जागरूकता तथा आत्मसम्मान की भावना को मजबूत किया (शर्मा, २०१८, पृ. ६८)। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का प्रारंभ १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से ही दिखाई देता है। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के विरुद्ध वीरता और साहस का परिचय दिया। उन्होंने युद्ध के मैदान में अपने नेतृत्व और राष्ट्रप्रेम से महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत प्रस्तुत किया। बेगम हजरत महल ने भी अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन महिलाओं ने यह सिद्ध किया कि महिलाएँ भी राष्ट्र की रक्षा और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर सकती हैं (वर्मा, २०१७, पृ. ५२)। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में सामाजिक सुधार आंदोलनों ने महिलाओं में शिक्षा और जागरूकता की भावना उत्पन्न की। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और ज्योतिबा फुले जैसे समाज सुधारकों ने महिलाओं की शिक्षा और अधिकारों के लिए कार्य किया। इसी जागरूकता का प्रभाव स्वतंत्रता आंदोलन में भी दिखाई दिया। शिक्षित महिलाओं ने राजनीति और सामाजिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लेना शुरू किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी और अधिक बढ़ी। गांधीजी का मानना था कि महिलाओं में धैर्य, त्याग और अहिंसा की शक्ति अधिक होती है। उन्होंने महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया। असहयोग आंदोलन (१९२०),

सविनय अवज्ञा आंदोलन (१९३०) और भारत छोड़ो आंदोलन (१९४२) में हजारों महिलाओं ने भाग लिया। महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया, चरखा चलाया, धरना-प्रदर्शन किए और जेल यात्राएँ भी कीं (कुमार, २०१९, पृ. ९८)।

तालिका १ : प्रमुख महिला स्वतंत्रता सेनानियाँ और उनका योगदान

महिला नेता	**प्रमुख योगदान**
झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	१८५७ के विद्रोह का नेतृत्व
सरोजिनी नायडू	सविनय अवज्ञा आंदोलन में भागीदारी
कस्तूरबा गांधी	सत्याग्रह और महिला जागरूकता
अरुणा आसफ अली	भारत छोड़ो आंदोलन में नेतृत्व
सुचेता कृपलानी	स्वतंत्रता आंदोलन एवं संविधान सभा में योगदान

स्रोत : भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अध्ययन रिपोर्ट, २०२०।

सरोजिनी नायडू को "भारत कोकिला" कहा जाता है। उन्होंने महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष बनीं। उन्होंने महिलाओं को सामाजिक और राजनीतिक रूप से जागरूक किया तथा स्वतंत्रता आंदोलन को नई ऊर्जा प्रदान की (सिंह, २०२०, पृ. ८४)। कस्तूरबा गांधी ने महात्मा गांधी के साथ सत्याग्रह आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने महिलाओं को स्वच्छता, शिक्षा और आत्मनिर्भरता के प्रति जागरूक किया। वहीं अरुणा आसफ अली ने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान तिरंगा फहराकर साहस और नेतृत्व का परिचय दिया। सुचेता कृपलानी ने स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ स्वतंत्र भारत के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महिलाओं की भागीदारी केवल राजनीतिक आंदोलनों तक सीमित नहीं थी। उन्होंने समाज में जनजागरण और राष्ट्रीय चेतना फैलाने का कार्य भी किया। महिलाओं ने घर-घर जाकर लोगों को विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग और राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया। इससे महिलाओं में आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ।

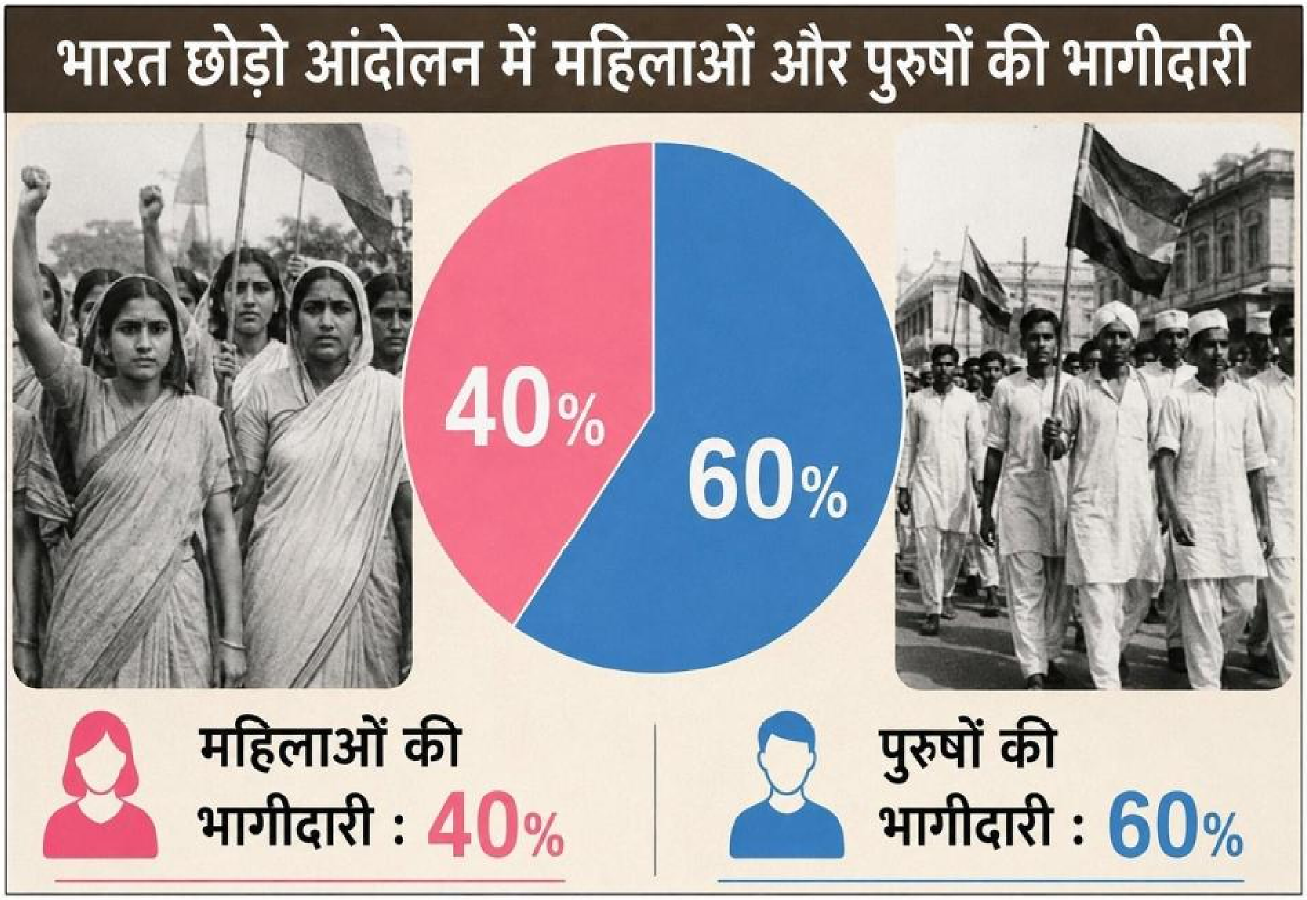

भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की भागीदार

महिलाओं की भागीदारी : ४०%

पुरुषों की भागीदारी : ६०%

स्रोत: स्वतंत्रता आंदोलन अभिलेख रिपोर्ट, १९४२।

यह आँकड़ा दर्शाता है कि महिलाओं की भागीदारी स्वतंत्रता आंदोलन में अत्यंत महत्वपूर्ण थी। बड़ी संख्या में महिलाओं ने जेल यात्राएँ कीं और आंदोलन को सफल बनाने में योगदान दिया।

महिलाओं के योगदान का एक महत्वपूर्ण प्रभाव भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण के रूप में दिखाई देता है। स्वतंत्रता आंदोलन ने महिलाओं में शिक्षा, आत्मनिर्भरता और समानता की भावना को मजबूत किया। महिलाओं ने यह सिद्ध किया कि वे केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद महिलाओं को मतदान का अधिकार, शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी के अवसर

प्राप्त हुए। हालाँकि, महिलाओं के योगदान को इतिहास लेखन में पर्याप्त स्थान नहीं मिला। अधिकांश ऐतिहासिक विवरण पुरुष नेताओं पर केंद्रित रहे, जबकि अनेक महिला स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष और बलिदान को उचित महत्व नहीं दिया गया। यह स्थिति भारतीय इतिहास लेखन की एक महत्वपूर्ण कमजोरी मानी जाती है। इसलिए महिलाओं की भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है ताकि उनके योगदान को उचित पहचान मिल सके (शर्मा, २०१८, पृ. ७९)।

तालिका २ : स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की प्रमुख गतिविधियाँ

गतिविधि	महिलाओं की भूमिका
विदेशी वस्त्र बहिष्कार	जनजागरण और प्रदर्शन
सत्याग्रह आंदोलन	सक्रिय भागीदारी
जेल यात्राएँ	आंदोलन का समर्थन
स्वदेशी आंदोलन	चरखा और स्वदेशी प्रचार
जनसभाएँ	नेतृत्व और भाषण

स्रोत : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन दस्तावेज़, २०१९।

स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका ने भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मजबूत किया। महिलाओं ने न केवल राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया, बल्कि समाज में लैंगिक समानता और महिला अधिकारों की नींव भी मजबूत की। इससे महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ और समाज में उनके प्रति सम्मान की भावना विकसित हुई।

भारत का महिला जागरूकता मानचित्र (सांकेतिक)

उत्तर भारत → स्वतंत्रता आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी

पूर्वी भारत → क्रांतिकारी महिला संगठनों का प्रभाव

दक्षिण भारत → महिला शिक्षा और सामाजिक सुधार आंदोलन

पश्चिम भारत → गांधीवादी आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका

स्रोत : भारतीय महिला अध्ययन केंद्र रिपोर्ट, २०२१।

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक रही। उन्होंने साहस, त्याग और नेतृत्व क्षमता के माध्यम से राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। महिलाओं की भागीदारी ने न केवल स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत किया, बल्कि भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण, समानता और सामाजिक जागरूकता की भावना को भी विकसित किया। उनका योगदान भारतीय इतिहास का एक अमूल्य अध्याय है, जिसे सदैव सम्मान और महत्व दिया जाना चाहिए।

समस्याएँ एवं समाधान :

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होने के बावजूद उन्हें लंबे समय तक सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक स्तर पर अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। भारतीय समाज में महिलाओं को पारंपरिक रूप से घर की सीमाओं तक सीमित रखा जाता था। पर्दा-प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा और लैंगिक भेदभाव जैसी सामाजिक

कुरीतियों ने महिलाओं की स्वतंत्रता और सामाजिक भागीदारी को सीमित कर दिया था (शर्मा, २०१८, पृ. ७४)। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं को परिवार और समाज दोनों के विरोध का सामना करना पड़ता था। कई महिलाओं को आंदोलन में भाग लेने के कारण सामाजिक आलोचना, मानसिक दबाव और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त महिलाओं को शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया था, जिसके कारण उनकी भागीदारी सीमित थी (कुमार, २०१९, पृ. १०२)। एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या यह थी कि इतिहास लेखन में महिलाओं के योगदान को उचित महत्व नहीं दिया गया। अधिकांश ऐतिहासिक विवरण पुरुष नेताओं पर केंद्रित रहे, जबकि अनेक महिला स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष, त्याग और नेतृत्व को अपेक्षाकृत कम स्थान मिला। इससे महिलाओं के ऐतिहासिक योगदान का पूर्ण मूल्यांकन नहीं हो पाया।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली रही। महिलाओं ने सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, जनजागरण, क्रांतिकारी गतिविधियों तथा जेल यात्राओं के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम को मजबूत किया (सिंह, २०२०, पृ. ८८)। अध्ययन में यह भी पाया गया कि महिलाओं की भागीदारी ने स्वतंत्रता आंदोलन को जनआंदोलन का रूप दिया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली और सुचेता कृपलानी जैसी महिलाओं ने नेतृत्व क्षमता, साहस और राष्ट्रप्रेम का परिचय देकर भारतीय समाज में नई चेतना उत्पन्न की। शोध से यह भी ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में महिला जागरूकता, शिक्षा, आत्मनिर्भरता और समानता की भावना को मजबूत किया। महिलाओं ने यह सिद्ध किया कि वे केवल घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं (वर्मा, २०१७, पृ. ९२)। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन महिलाओं के लिए सामाजिक परिवर्तन और महिला सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण माध्यम बना। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्र भारत में महिलाओं को शिक्षा, मतदान और राजनीतिक भागीदारी के अधिक अवसर प्राप्त हुए।

परिकल्पना :

इस अध्ययन की मुख्य परिकल्पना यह है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को मजबूत किया, बल्कि भारतीय समाज में

महिला जागरूकता, समानता और आत्मविश्वास की भावना को भी विकसित किया। महिलाओं ने सामाजिक बंधनों, लैंगिक भेदभाव और रूढ़िवादी परंपराओं को चुनौती देकर यह सिद्ध किया कि वे राष्ट्र निर्माण और सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम हैं। दूसरी परिकल्पना यह है कि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण और राजनीतिक चेतना को बढ़ावा दिया। सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, जनजागरण और क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेकर महिलाओं ने नेतृत्व क्षमता और राष्ट्रप्रेम का परिचय दिया।

अध्ययन यह भी मानता है कि इतिहास लेखन में महिलाओं के योगदान को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है, जबकि उनका योगदान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सफलता में अत्यंत महत्वपूर्ण था। इसलिए महिलाओं की भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से आवश्यक है।

कार्य प्रणाली :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक तथा वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इस शोध में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। गुणात्मक शोध पद्धति का उपयोग इसलिए किया गया है क्योंकि यह सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक विषयों को गहराई से समझने में सहायक होती है। इस अध्ययन में महिलाओं के संघर्ष, योगदान, नेतृत्व क्षमता तथा सामाजिक प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। इस शोध में प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित दस्तावेज़, पत्र, भाषण, आत्मकथाएँ तथा राष्ट्रीय आंदोलन के अभिलेख शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में पुस्तकें, शोध-पत्र, पत्रिकाएँ, ऐतिहासिक लेख, सरकारी रिपोर्ट तथा महिला अध्ययन से संबंधित सामग्री का उपयोग किया गया है (कुमार, २०१९, पृ. १०८)। अध्ययन में ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न चरणों में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण किया गया है। साथ ही झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली तथा सुचेता कृपलानी जैसी महिला नेताओं के योगदान का अध्ययन किया गया है (सिंह, २०२०, पृ. ९८)। इस शोध में विभिन्न आँकड़ों,

तालिकाओं और ऐतिहासिक रिपोर्टों का उपयोग करके महिलाओं की भागीदारी तथा उनके सामाजिक प्रभाव का अध्ययन किया गया है। वर्णनात्मक विश्लेषण के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में महिला जागरूकता, समानता और सशक्तिकरण की भावना को किस प्रकार विकसित किया।

निष्कर्ष :

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण, प्रेरणादायक और ऐतिहासिक रही। महिलाओं ने केवल अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष ही नहीं किया, बल्कि भारतीय समाज में सामाजिक जागरूकता, आत्मसम्मान और महिला सशक्तिकरण की भावना को भी मजबूत किया। उन्होंने सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, जनसभाओं, धरना-प्रदर्शनों, क्रांतिकारी गतिविधियों तथा जेल यात्राओं के माध्यम से राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया (शर्मा, २०१८, पृ. ८६)। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली तथा सुचेता कृपलानी जैसी महिलाओं ने साहस, नेतृत्व और राष्ट्रप्रेम का परिचय देकर स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा प्रदान की। महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी ने आंदोलन को जनआंदोलन का रूप दिया और यह सिद्ध किया कि महिलाएँ राष्ट्र निर्माण में पुरुषों के समान महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं (सिंह, २०२०, पृ. १०२)। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता आंदोलन महिलाओं के लिए सामाजिक परिवर्तन और जागरूकता का महत्वपूर्ण माध्यम बना। इस आंदोलन ने महिलाओं में शिक्षा, आत्मनिर्भरता, समानता और राजनीतिक चेतना की भावना को विकसित किया। स्वतंत्रता के बाद महिलाओं को शिक्षा, मतदान और राजनीतिक भागीदारी के अधिक अवसर प्राप्त हुए, जिससे भारतीय समाज में उनकी स्थिति मजबूत हुई (वर्मा, २०१७, पृ. ९८)। हालाँकि, इतिहास लेखन में महिलाओं के योगदान को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है। इसलिए आवश्यक है कि महिला स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष, त्याग और योगदान को उचित ऐतिहासिक स्थान दिया जाए। अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका केवल स्वतंत्रता प्राप्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसने भारतीय समाज में महिला अधिकारों, समानता और सशक्तिकरण की मजबूत नींव भी स्थापित की।

संदर्भ सूची :

1. कुमार, आर. (२०१९). *भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और महिलाओं की भूमिका।* नई दिल्ली: ज्ञान प्रकाशन, पृ. ९१-१०८।
2. शर्मा, एस. (२०१८). *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिला योगदान।* जयपुर: साहित्य भवन प्रकाशन, पृ. ४८-८६।
3. सिंह, एम. पी. (२०२०). *भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और महिला जागरूकता।* लखनऊ: लोकभारती प्रकाशन, पृ. ७२-१०२।
4. वर्मा, के. (२०१७). *स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय महिलाओं का इतिहास।* पटना: विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ. ५२-९८।
5. भारत सरकार। (२०१९). *भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन दस्तावेज़।* नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, पृ. ४५-७६।
6. भारत सरकार। (२०२०). *भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अध्ययन रिपोर्ट।* नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, पृ. ६०-८४।
7. भारतीय महिला अध्ययन केंद्र। (२०२१). *महिला जागरूकता एवं स्वतंत्रता आंदोलन रिपोर्ट।* नई दिल्ली: महिला अध्ययन केंद्र, पृ. ३२-५८।
8. स्वतंत्रता आंदोलन अभिलेख विभाग। (१९४२). *भारत छोड़ो आंदोलन अभिलेख रिपोर्ट।* नई दिल्ली: राष्ट्रीय अभिलेखागार, पृ. १८-४०।
9. राष्ट्रीय अभिलेखागार। (२०१८). *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐतिहासिक दस्तावेज़।* नई दिल्ली: राष्ट्रीय अभिलेखागार प्रकाशन, पृ. ५५-८९।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 126-134
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Dharma in Indian Thought : A Comparative Study of Hindu and Buddhist Context

Padma Angmo, PhD
Department of Political Science, University of Delhi.
Nikhil Kumar Rai, PhD Scholar
Department of Political Science, University of Lucknow.

Abstract :

One of the most important and complex notions of Indian intellectual and religious history is the concept of Dharma. Dharma has become an eternal philosophical, social, and ethical idea, which continues to influence the Indian culture. It has its roots in the Vedic concept of Rta, the cosmic order of the whole of creation. Buddhism and Hinduism also teach that dharma is the law that holds the universe together as well as the moral code that governs the behavior of human beings. The Buddha Dhamma is the universal law of causation and the way to nirvana, or freedom; in Hinduism, it is the basis of both social and cosmic harmony.

This work will compare and contrast Dharma in the two traditions using important texts such as Rigveda, Upanishads, Mahabharata, Bhagavad Gita, Dhammapada and Ashokan Edicts. It also considers new reinterpretations by B.R. Ambedkar and Mahatma Gandhi. The argument presented in the paper is made by relying on the original sources, as well as on the scholarly works of many authors who have written on these issues, among which are Romila Thapar, Patrick Olivelle, Wilhelm Halbfass, Richard Gombrich, and Amartya Sen. Indian civilization exhibits dialogical nature and the capacity to balance continuity and change is manifested by the fact that the Indian civilization manages to maintain order but, at the same time, encourages moral self-examination.

1. Introduction :

The scope, subtlety and historicism of Dharma in Indian thought are few to be found in philosophical thought of the world. It is a cosmological law that supports the universe and a moral law that governs human actions. It encompasses metaphysics, morality, law and spirituality. The term has its Sanskrit origin in the word dhr that denotes to hold or to support. This implies that survival has

been sustained or preserved at all levels such as cosmic, social and individual (Halbfass, 1988). Consequently, Dharma is a broad-based view whereby the moral order is manifested in the cosmic order; it could not be reduced to religious duty or moral law only.

The ideas of varna (social order) and ashrama (stage of life) are used to formulate Dharma in Hinduism, the moral and social basis of which is the eternal order of Rta. It controls the behaviour of individuals, and group cohesion. The dhamma concept takes place in Buddhism to denote not only the moral practice that results in enlightenment but also the law of the dependent origination itself, which is universal. In Buddhism there is the universalisation of moral law not in terms of caste, ritual or social boundaries whereas in Hinduism is the need to promote harmony in the society and cosmic duty although both religions are etymological and conceptual.

The following three questions are answered in this research :

1. What does the philosophical concept of Dharma mean and look like in the Hindu and Buddhist canonical sources?
2. How are Hindu and Buddhist conceptions of dharma both similar and different?
3. What are the ways through which the Indian thinkers of modern times, particularly Gandhi and Ambedkar, have redefined Dharma as a part of ethical reform, social equality and modernity?

The primary argument of this paper is that Dharma is a hermeneutic key, interpretive set of rules by which Indian civilisation may maintain balance continuity, order and critique. It is the capacity to adapt to new moral, philosophical, and political conditions without discontinuing its underlying commitment to the correct path to living that makes it its enduring meaning.

2. Theoretical Framework and Methodology :

To comprehend the meaning of Dharma in Buddhist and Hindu contexts, a multidisciplinary method of textual research, contextualisation of the history, and comparative philosophy is needed. The hermeneutic approach, which grounds in the idea of Wilhelm Halbfass (1988), who calls it the dialogical understanding, involves the respect of the inner diversity of Indian traditions when they read ancient writings in their linguistic, historical and philosophical contexts.

Comparative philosophy provides a means of analysing how Dharma and Dhamma are similar and different, without breaking down their distinctive conceptual frames (Panikkar, 1977). With this approach, a dialogical balance would be sought over a synthesis by letting each tradition illuminate the other.

The methodology of this work is grounded on the primary Sanskrit and Pali literature, such as the 4RV, Upani?ads, Manusmrati, Mahabharata, Bhagavad Gita, Dhammapada and Ashokan Edicts, which have been translated by Radhakrishnan, Olivelle, and Gombrich. The application of critical

perspectives on the morality and historical features of Dharma is evident in secondary literature such as Thapar (1997), Halbfass (1988) and Sen (2005).

This paradigm is both a fusion of hermeneutics and historical analysis in which Dharma is neither a fixed code of morality but a topic of discussion that mediates between ethical action and metaphysical truth- a principle that is both prescriptive of the human behaviour and a description of how the world is.

3. Historical Origins: From ?ta to Dharma :

The ancient Vedic concept of Rta, which first appears in the ?igveda (c. 1500–1200 BCE), is the conceptual foundation of Dharma. The cosmic principle of truth, order, and harmony that governs the natural and moral worlds is represented by the symbol ?ta. It is frequently said that the god Varu?a is its protector, keeping creation stable. "The great Varu?a has established the eternal law; the sun rises according to his ordinance," states the ?igveda. This articulates a cohesive moralcosmic worldview in which an ethical code governs the universe itself.

Rta became more closely linked to ritual order as Vedic philosophy evolved via the Brahma?as. It was thought that when yajna (sacrifice) was performed correctly, Rta was upheld and the universe was sustained. This ceremonial understanding eventually developed into the moralised idea of Dharma, which held that social responsibility and ethical behaviour were just as important to maintaining cosmic order as ritual perfection.

The Upani?ads elevated Dharma to the status of a moral and spiritual ideal. Dharma and satyam (truth) are compared in the Chandogya Upani?ad: "Dharma is verily truth (Radhakrishnan, The Principal Upanisads, 1953)." "There is nothing higher than Dharma," according to the Brihadaranyaka Upani?ad. Dharma becomes the ethical and metaphysical basis of justice, truth, and self-realization in these works; it is no longer confined to ritual performance (Radhakrishnan, The Principal Upanisads, 1953). One of the most important events in the institutionalization Dharma was the composition of the Dharma sutras, especially of Apastamba and Gautama. These books establish the duties in regard to caste, family, inheritance as well as punishment and incorporate moral, legal as well as social prescriptions. Dharma became moral backbone of the unity in society also authorizing authority as the social structures were stratified.

The dual nature of Dharma as an instrument of power and an instrument of justice came to be an icon of Indian ethical philosophy. The war brought about the Buddhist critique of caste and ritualism that provided a universalized moral philosophy founded on wisdom and compassion, and not on birth or social status.

4. Dharma in Hindu Textual Tradition :

4.1 The Manusm?iti: Dharma as Law and Hierarchy :

The systematic systematization of Dharma into an elaborate system of morally-legal codes can be seen in the Manusmriti. It creates a morally approved social order in the eyes of deities by specifying the duty of human beings according to varna (social status) and ashrama (stage of life). Manu says, he created the Brahmin, the Ksatriya, the Vaisya, and the shudra with his mouth, arms, thighs and feet to the good of the world. Such mythical imagery supports inequality in the eyes of the author as a part of a cosmic plan.

The Manusmirti makes a distinction between vishe?a dharma (particular obligations based on caste, gender, or vocation) and samanya dharma (universal values including truth, non-violence, purity, and charity). The latter institutionalises hierarchy, whereas the former expresses a universal ethic. According to Patrick Olivelle, the Manusmriti is an attempt to maintain Brahmanical authority in the face of societal change, transforming Dharma from a moral precept into a legal instrument of government. This text's merger of religion, law, and ethics shows how Dharma evolved into a social control mechanism as well as a moral ideal.

4.2 The Mahabharata: Dharma as Moral Ambiguity :

At the Mahabharata, Dharma is extended as a moral philosophy of ambiguity and context. It has an iconic phrase, dharma is subtle (suk?ma dharma), which accepts the challenge of moral judgement. The epic war that is the primary conflict between the Pa??avas and the Kauravas explores the ethical dilemmas present in the situation where the character must uphold the duty and handle the concepts of kinship, justice, and violence. Bhi?ma tells Yudhi?htira in the Book of Santi Parva that he must act in the best interest of all creatures when he is uncertain about what is Dharma: "In the hours of doubt about Dharma choose that which benefits all beings. This universalistic ethic is an anticipation of later Gandhian and Buddhist thought by making compassion and the welfare of society a central concern of moral thought. Therefore, in the Mahabharata, Dharma is represented as dialogue between law and conscience and not a code.

4.3 The Bhagavad Gita: Dharma as Selfless Action :

The Bhagavad Gita is a transforming interpretation of Dharma in the Mahabharata through the lens of spiritual psychology. Kul?nan exploits this ethical crisis of Arjuna not to go to war against his own family as an excuse to explain his lesson on swadharma or responsibility to oneself. According to Bhagvad Gita, Krishna says that the Dharma of one person, however imperfect, is superior to that of another person achieved excellently (Gandhi, 1997).

In this case, Dharma is internalised in form of unselfish actions (niškama karma), which are performed regardless of the results. It is turned into a means of spiritual liberation, or more than

mere social duty. This metamorphosis according to Radhakrishnan is a moral awakening: Dharma is a realisation of personal divine will and not an obedience to an outer law. It is this combination of karma (activity), jnana (knowledge) and bhakti (devotion) that elevates Dharma to a spiritual practice that aims at self-realization and moral autonomy in Gita. This turn of Dharma inwards influenced much more in later Indian ethics: ahimsa (non-violence), selfless service taught by Gandhi and the Advaita Vedanta of Sankara (Radhakrishnan, 1993).

5. Dhamma in Buddhist Philosophy and Ashokan Ethics :

Buddhism redefined Dharma in terms of ethical and experience and the Hindu interpretation developed in terms of a cosmic and hierarchical world. The Pali word, Dhamma, linguistically identical to the Sanskrit Dharma, retained the original sense of that which sustains, although in the Buddhist philosophy it acquired a second meaning of both the moral teachings that give freedom of pain (dukkha) and the law of dependent origination. The insight of Buddha, contained in the Dhammacakkappavattana Sutta, is a big leap in abandoning metaphysical speculation in favor of actual moral experience and psychological insight.

5.1 The Dhammapada: The Ethical Essence of Dhamma :

One of the oldest and most enduring scriptures in Buddhism which portrays the moral spirit of the Dhamma is the Dhammapada. It opens with a great psychological principle: Mind goes before it all, mind is their master, they are all mind-made. It is written in Pali verse. This statement replaces debasement of moral causation, or the idea of the moral universe as being controlled by will and not by a God, with divine determinism. In addition to ceremony, caste, and belief, there is in the teaching of the Buddha, that Hatred is never pacified by hatred in this world; by non-hatred only is pacified hatred, a universal ethic of non-violence.

According to Richard Gombrich, the Dhammapada democratises the moral notion of Dharma by basing it on human experience and reason rather than birth or ceremonial duty. Anybody, regardless of gender or social standing, can achieve the threefold path of virtue (sila), concentration (samadhi), and wisdom (panna), which becomes the basis of an ethical existencei. The Buddhist Dhamma universalises virtue by grounding it in compassion and mental clarity, in contrast to the Manusmriti, which linked moral worth to social hierarchy.

5.2 The Dhammacakkappavattana Sutta: Dhamma as Reality and Path :

The "turning of the wheel of Dhamma" is marked by the Dhammacakkappavattana Sutta, which is the Buddha's first discourse at Sarnath. The Four Noble Truths and the Noble Eightfold Path, which together constitute the Dhamma's structural core, are explained by the Buddha in this lecture. The Four Noble Truths—the truth of suffering (dukkha), its source (samudaya), its cessation (nirodha),

and the route to cessation (magga)—define the existential human situation. The practical discipline that leads to awakening is outlined by the Eightfold Path, which includes right knowledge, right intention, right speech, right action, right livelihood, right effort, right mindfulness, and right concentration.

According to this perspective, Dhamma is ontological truth—the rule regulating existence itself— rather than merely moral doctrine. The Buddha recommended the Middle Way (majjhima pa?ipada) as a balanced approach to moral and spiritual life, rejecting both ritual formalism and extreme asceticism. According to Peter Harvey, this represents a shift from the exterior order of the universe (rta) to the internal order of consciousness (citta-bhavana). As a result, the Dhamma becomes a living, experienced law that is realised via ethical development and mindfulness. Buddhist Dhamma emphasises the harmony of thought and behaviour ii , while Vedic Rta stressed the harmony of the universe. Through trained awareness and compassion, every creature, regardless of origin, has the ability to realise Dhamma.

5.3 Ashoka's Edicts: Dhamma as Political Ethics :

The oldest example of Dhamma as a concept of statecraft is the Mauryan Emperor Ashoka. Ashoka experienced a moral metamorphosis following the catastrophic Kalinga War, substituting "conquest by Dhamma" for conquest by force (Thapar, 1997). "Conquest by Dharma is the best conquest," he states in Rock Edict XIIIiii. This formulation represents a fresh approach to moral governance that relies more on persuasion than on force (Thapar, 1997).

Compassion, respect for life, religious tolerance, elder care, animal kindness, and welfare measures for both humans and animals were all included in Ashoka's Dhamma. Instead of being dictatorial, his idea of kingship was moral and paternal. According to Romila Thapar, Ashoka's decrees are one of the first expressions of "ethical humanism" in political philosophy, foreshadowing contemporary ideas of pluralism and public morality.

Ashoka did not attempt to enforce orthodoxy but instead tried to create moral citizenship through the creation of the Dhamma-mahamatras, officials who would promote moral education. In this way, his politics preempted the ideas of interfaith tolerance and civic responsibility. Amartya Sen has suggested that the reign of Ashoka is a good example of the argumentative tradition of India where moral authority is acquired through an ethical debate instead of divine sanction.

6. Reinterpretations of Dharma: Gandhi, Ambedkar, and Radhakrishnan :

With Indian intellectuals trying to balance the traditional moral values with the truth of the colonial regime, socioeconomic injustices, and present-day democracy, the modern world came with a major re-immersion into Dharma. The most influential were Mahatma Gandhi, B.R. Ambedkar, and Sarvepalli Radhakrishnan; each of them re-contextualized Dharma in a philosophical, political, or

moral context suitable to the modern moral questions.

6.1 Gandhi's Dharma: Truth (Satya) and Non-Violence (Ahimsa) :

To Mahatma Gandhi, Dharma was core to personal ethics as well as group politics. Gandhi linked Dharma with satya (truth) and ahimsa (non-violence), on the basis of Bhagavad Gita, the Upaniad Gita and Jain philosophy. He said: Truth is my God; non-violence is the vehicle of fulfilling Him

(Gandhi, 1997). Gandhi perceived selfless service as the sacrifice service, the highest form of Dharma, based on the concept of niškama karma, or actionless action, in the Gita. His theory of Satyagraha, or force of truth, made the assertion that moral means and ends are necessarily united, and made moral conviction a tactic of political struggle. This was how Gandhi transformed moral discipline to be an active form of spirituality.

In terms of politics, Dharma served as the moral cornerstone of his campaigns for civil disobedience, noncooperation, and social cohesion. However, Ambedkar, who argued that social inequity could not be moralised, criticised his defence of varna as a viable (albeit non-hierarchical) social structure. Gandhi, however, showed how Dharma might function as a living principle of truth, justice, and compassion in public life through his synthesis of spirituality and politicsiv.

6.2 Ambedkar's Dhamma: Reason, Equality, and Justice :

The way that B.R. Ambedkar engaged with Dharma was very distinct. He condemned the Dharmasastras, particularly the Manusmriti, as ideological instruments of societal dominance in Annihilation of Caste (Ambedkar, Annihilation of Caste, 1936). Ambedkar believed that human dignity and contemporary democracy could not coexist with the Brahmanical idea of Dharma. Ambedkar reinterpreted the Dhamma as a logical and egalitarian moral code in The Buddha and His Dhammav. He saw Buddhism as a "religion of principles, not rules," rejecting metaphysics and ritualism. According to him, religion's real purpose is "to reconstruct the world and not to escape from it (Ambedkar, The Buddha and his Dhamma, 1957).

The New Vehicle Buddhism by Ambedkar was a social gospel, which combined the concepts of liberty, equality and fraternity, the three tenets of democratic constitution of India, with the ethical rationality (Ambedkar, The Buddha and his Dhamma, 1957). His 1956 open conversion to Buddhism which was followed by hundreds of thousands of Dalits was both socio-political transformation and spiritual freedom. Eleanor Zelliot asserts that the reinterpretation of Ambedkar took religion as an instrument of moral reconstruction and justice.

6.3 Radhakrishnan's Dharma: The Ideal of Spiritual Humanism :

Sarvepalli Radhakrishnan was a statesman and a philosopher who also contributed another view in the concept of Dharma. He stated Dharma to be the law of the inner life, the moral principle

that is universal, a law of obligation and inner life development (Radhakrishnan, The Hindu View of Life, 1927). The Dharma, by Radhakrishnan, was the ethical foundation of a universal spiritual humanism which cut across religious boundaries.

Instead of opposing each other, he maintained that the two, Hinduism and Buddhism, reveal the contradictory sides of the Indian philosophic soul: Hinduism with its synthesis, unity with the world, and Buddhism with its compassion and renunciation. Therefore, Dharma as propounded by Radhakrishnan was metaphysical in nature, connecting both religion and reason, which would later be reiterated on pluralism, the interreligion dialogue, and secular ethics.

7. Comparative Analysis: Dharma and Dhamma in Dialogue :

The comparison of the Buddhist Dhamma and Hindu Dharma shows how the continuity and change are intertwined. Both of them believe in an inherent moral order and have the same language root (dhr, "to uphold"). The scope and applicability of their statements are however very different.

Hinduism has made Dharma contextual under the societal obligation (svadharma) and by the cosmic order (Rta). It has been traditionally linked to one of their standing in the varna-ashrama system. The Buddhist Dhamma, in turn, spreads the morality everywhere by not being tied to ritual, caste, and philosophical guesses. The Dhammapada encourages the moral awareness and compassion of all creatures whereas the Manusmriti governs duty by social status. Wilhelm Halbfass has termed this interaction as a dialectic of continuity and critique. Dharma was considered in Buddhism as a friendly and transforming form of moral causality law and not denied. This dialectic continued in the present times through Gandhi and Ambedkar with Gandhi seeking moral change within tradition and Ambedkar re-creating it based on logical, egalitarian viewpoint.

The perfect life of self-transcendence is moral life, which is common to both traditions despite their differences. The Dhammapada also preaches to love detachment which concurs with the concept of selfless action in the Bhagavad Gita. They both imagine a moral system that is governed through conscience and intent instead of through authority and force. This shared conception supports the claim by Radhakrishnan that Indian philosophy is a continuing debate about what the happy life is and not a set of systems that are discrete. Therefore, Dharma and Dhamma are complimentary parts of the same civilisational song, one that keeps the order and the other sets it free.

8. Conclusion :

The meaning of Dharma has been the moral guide of India, ever since the hymns of the doctrines of the Buddha, the inscriptions of Ashoka and the ethical thought of Gandhi and Ambedkar. It has questioned authority, legitimised power, and at the same time maintained social order and brought moral revolutions. It is powerful because it is paradoxical: Dharma is cosmic and simultaneously

very human, everlasting and dynamic, conservative and changing.

The Dhamma of Buddhism liberates the person of ignorance and attachment whereas the Dharma in Hinduism binds the person to the moral and cosmic order. Gandhi considered the meaning of Dharma to be living a truthful and nonviolent life whereas Ambedkar perceived Dhamma to be the ethical pillar of social justice. When all this is summed up, it demonstrates that it is reinterpretation and not rigidity which makes Indian ethics flourish.

Amartya Sen (2005) has theorized that the country has its moral and intellectual energy in the argumentative tradition of India, an endless dialogue between power and questioning, religion and rationality. To practice Dharma is to practice this living tradition and it is the continued quest to discover the truth, justice and compassion in human life. Ultimately, Dharma endures, the principle that supports and opposes the world, a constant reminder of the fact that the pursuit of moral truth is the ultimate law.

REFERANCES :

- Gombrich, R. (2006). Theravada Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo. Routledge. ii Dalai Lama. (1999). Ethics for the New Millennium. Riverhead Book.
- Thapar, R. (1997). Asoka and the Decline of the Mauryas. Oxford University Press.
- Gandhi, M. K. (1997). Hind Swaraj and Other Writings. Cambridge University Press. v Ambedkar, B. R. (1957). The Buddha and His Dhamma. Government of Maharashtra.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 135-140

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में संलग्न बाल श्रमिक एवं उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन

निधि लोधी, शोध छात्रा,
प्रो. कविराज, आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226007

सारांश :–

भारत में बाल श्रम एक जटिल समस्या है जो गरीबी, शिक्षा, ऋण ग्रस्तता, प्रवासन, पारिवारिक सुरक्षा और श्रम निगरानी नीतियों की कमजोरी से जुड़ी हैं। बाल श्रम पर अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय रिपोर्ट है यह दर्शाती हैं कि खतरनाक काम बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा और भविष्य पर गहरा असर डालते हैं। उत्तर प्रदेश भारत के उन राज्यों में है जहां संगठित और असंगठित क्षेत्र के उद्योगों में बाल श्रम की समस्या लंबे समय से बनी हुई है। उत्तर प्रदेश के विभिन्न औद्योगिक केंद्रों जैसे फिरोजाबाद के कांच उद्योग, मुरादाबाद के पीतल उद्योग, अलीगढ़ के ताला उद्योग, भदोही के कालीन उद्योग, खुर्जा के चीनी मिट्टी उद्योग और आस–पास के अन्य क्षेत्रों जैसे छोटी घरेलू इकाइयों और कुटीर उद्योगों में बच्चे काम करते दिखाई देते हैं। विभिन्न उद्योगों में बच्चों का कार्य करना न केवल उन्हें शिक्षा से वंचित करता है बल्कि यह उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डालता है। इस शोध पत्र के माध्यम से उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में संलग्न बाल श्रमिकों की स्थिति एवं उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द – बाल श्रम, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा, कार्य स्थितियां।

परिचय :–

राष्ट्रीय श्रम आयोग 2002 की रिपोर्ट में बाल श्रम की श्रेणी में उन बच्चों को रखा गया है जो अपने घर–परिवार के बाहर न्यूनतम मजदूरी पर काम करते हैं। विश्व में लगभग 25 करोड़ बाल श्रमिक परिवार हैं। बच्चे परिवार से बाहर विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में संलग्न रहते हैं, प्रायः बच्चों के इस श्रम का उपयोग परिवारिक कार्यों के लिये भी होता है। बच्चे घर में हो रहे उत्पादन प्रक्रिया के हिस्सेदार बनते हैं और कई बार घर से बाहर जाकर वस्तु एवं सेवाओं के उत्पादन प्रक्रिया में भी योगदान देते हैं। बालश्रम वर्तमान समय में बच्चों के शोषण का सबसे बड़ा स्रोत बन गया है। बालश्रम की अवधारणा इस बात की द्योतक है कि बच्चों द्वारा कम उम्र में कार्य प्रारंभ कर दिया जाता है, जो कि बच्चों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए घातक है। बाल श्रम के कारण बच्चों की एक बड़ी आबादी अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित है, वे अर्थव्यवस्था के विभिन्न

क्षेत्रों खासकर असंगठित क्षेत्रों में काम करते हुए पाए जाते हैं। इस तरह वे निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने के गारंटीकृत मूलभूत अधिकार से वंचित हो जाते हैं।

उत्तर प्रदेश जनसंख्या, गरीबी और असमानता के कारण बाल श्रम से सर्वाधिक प्रभावित राज्यों में गिना जाता है। जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार उत्तर प्रदेश में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों की कुल आबादी 7.0 करोड़ है जिनमें लगभग 22 लाख बच्चे कामकाजी बच्चे हैं जो कि पूरे देश की सर्वाधिक जनसंख्या है। पूरे देश के कुल कामकाजी बच्चों में से 21 प्रतिशत से अधिक कामकाजी बच्चे केवल उत्तर प्रदेश से हैं। इसी प्रकार विश्व के कुल कामकाजी बच्चों में 2 प्रतिशत बच्चे उत्तर प्रदेश से हैं। प्रदेश में कुछ श्रमिकों में 14 वर्ष से कम आयु के कामकाजी बच्चों की संख्या 3 प्रतिशत है जबकि 10 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों की कार्य में सहभागिता 6 प्रतिशत है। इसी प्रकार 5 से 9 आयु वर्ग में यह संख्या 3 प्रतिशत है[1]।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में संलग्न बाल श्रमिक :

भारत जैसे विकासशील देश में गरीबी, बेरोजगारी, विकास का निम्न स्तर, कानूनों में लचीलापन, अभिभावकों की समझ में कमी आदि कारण बाल श्रम की समस्याओं को बढ़ावा देते हैं। उत्तर प्रदेश देश के उन राज्यों में से है जहां बाल श्रम की समस्या लंबे समय से लगातार रही है। प्रदेश में बाल श्रम एक प्रमुख समस्या है जो गरीबी, अशिक्षा, ऋणग्रस्तता आदि कारकों से जुड़ी हुई है। राज्य की औद्योगिक भाग, लघु, सूक्ष्म और पारिवारिक इकाइयों पर आधारित हैं, जहां बच्चे परिवार की आय बढ़ाने के लिए कार्य करते हैं। प्रदेश के विभिन्न उद्योगों जैसे फिरोजाबाद का कांच उद्योग, अलीगढ़ के ताला उद्योग, मुरादाबाद के पीतल उद्योग, भदोही के कालीन उद्योग आदि में ठेकेदारों द्वारा विशेषकर बच्चे, कम लागत वाले श्रमिक के रूप में उपयोग किए जाते हैं। इस तरह कम उम्र में ही बच्चों का काम पर लग जाना उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है जिसके कारण वह कम उम्र में ही विभिन्न गंभीर बीमारियों जैसे अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, रतौंधी, फेफड़ों में कैंसर, चर्म रोग, यक्ष्मा रोग आदि से ग्रसित हो जाते हैं जो कि प्रत्यक्ष रूप से उनके जीवन प्रत्याशा को काम करता है। इस तरह बच्चे शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ शिक्षा से भी वंचित हो जाते हैं।

कालीन उद्योग, मिर्जापुर भदोही :–

कालीन बुनने की कला अत्यंत प्राचीन है, यह उद्योग एक अत्यंत विषम औद्योगिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है जिसमें ठेकेदारों, बिचौलियों व दलालों की एक लंबी कड़ी काम करती है। इस उद्योग में बहुत बच्चे, प्रवासी मजदूर और बंधुआ मजदूर होते हैं। इन बच्चों को उद्योगों में लगाए जाने की जिम्मेदारी बिचौलियों की रहती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, भदोही, इलाहाबाद और वाराणसी के सैकड़ों गांवों में लगी हजारों खड्डियों पर कालीन बनाने का काम होता है[2]। प्रो. जी. पी. मिश्रा एवं पी. एन. पांडेय ने योजना आयोग, भारत सरकार द्वारा प्रयोजित एक प्रोजेक्ट के तहत मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) में कालीन उद्योग में लगे बाल श्रमिकों का गहन अध्ययन किया। उन लोगों ने मिर्जापुर के 492 घरों का रैंडम सैंपल लिया था जिनमें प्रत्येक घर में से कम से कम एक बच्चा उद्योग क्षेत्र में मजदूरी करता है। उन्होंने पाया कि 3005 की जनसंख्या में 1556 मजदूर है। इस प्रकार पूरी आबादी में श्रम शक्ति का हिस्सा 52 प्रतिशत है। उन्होंने यह भी पाया कि कुल 492 घरों में कुल 1631 बच्चे थे, जिनमें 1122 बालक एवं 509 बालिकाएं थी, जो 14 वर्ष से कम उम्र के थे और इस प्रकार बच्चों की संख्या

कुल जनसंख्या का 54 प्रतिशत थी। वहाँ कुल 608 बाल श्रमिक पाए गये जिनमें 576 बालक एवं 32 बालिकाएं थे इस प्रकार बाल श्रमिक का प्रतिशत बच्चों की कुल संख्या का 52 प्रतिशत था। उन्होंने पाया कि करीब 97 प्रतिशत बाल श्रमिक अपने परिवार के जीवन–निर्वहन हेतु पारिवारिक आय के पूरक के रूप में मजदूरी पर काम करते हैं[3]।

स्वास्थ्य समस्याएँ –

कालीन उद्योग में कार्यरत बाल श्रमिकों को अंधेरे, गंदगी भरे और स्वच्छ हवा के अभाव वाली झोपड़ियों में लगे लूमों में काम करना पड़ता है, जिससे वह रोगग्रस्त हो जाते हैं। लगातार पैर लटकाकर बैठने के कारण पैर के निचले भाग में सूजन, जोड़ों में दर्द जैसी समस्याएं हो जाती हैं। लगातार ऊन रेसों एवं मिश्रित धूल के कणों के फेफड़ों में जाने से श्वांस संबंधी गंभीर समस्याएं हो जाती हैं। अपर्याप्त रोशनी वाली जगहों में काम करने से बच्चों में रतौंधी और कमजोर दृष्टि की समस्या उत्पन्न हो जाती है। कालीन उद्योग में प्रयुक्त होने वाले सभी प्रकार के रंगों और कैमिकल में मिश्रित क्रोम और मेटल बच्चों की सेहत पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है।

पीतल बर्तन उद्योग, मुरादाबाद –

मुरादाबाद शहर मुख्यतः पीतल के बर्तनों एवं कलात्मक वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध है। एक अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि बड़े–बड़े कारखानों में बाल श्रमिक नहीं है परन्तु दूसरी ओर बहुल प्रक्रिया वाली इकाइयों जैसे मोल्डिंग, बेल्डिंग, स्क्रैपिंग, इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा पॉलिश आदि की प्रक्रियाओं में बाल श्रमिकों की भरमार है। इस उद्योग से लगभग 1.50 लाख लोग जुड़े हुए हैं जिसमें करीब 40 हजार बाल श्रमिक है। हालांकि बाल श्रमिकों की संख्या विभिन्न एजेंसियों ने अलग–अलग आंकी है। श्रमायुक्त, उत्तर प्रदेश के अनुसार 1988 में 2000, जिला उद्योग केंद्र के अनुसार 5000, इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट सर्विसेज रिपोर्ट 1983 के अनुसार 1,50,000, नेशनल इंडस्ट्री डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन के अनुसार 7566 तथा नीरा बुर्रा (1998) के अनुसार 40,000 बाल श्रमिक मुरादाबाद में काम करते हैं[4]।

बाल श्रमिकों को लाने की जिम्मेदारी प्रायः दलालों को दी जाती है जो आसपास के गांव के रहने वाले होते हैं तथा बाल श्रमिकों को लाने की कीमत लेते हैं। कारखानों के मालिक और ठेकेदार बच्चों को इसलिए काम पर रखते हैं कि उन्हे नियंत्रित करना आसान होता है। फैक्ट्री के मालिक बाल श्रमिकों के माँ–बाप को अग्रिम ऋण देते हैं जिसके कारण बच्चों को काम करना बाध्यकारी होता है।

स्वास्थ्य समस्याएँ –

इस उद्योग में ढलाई और पॉलिश दो सबसे खतरनाक प्रक्रियाएं होती है। बच्चो द्वारा यह प्रक्रिया करना बेहद खतरनाक होता है क्योंकि सांचे में धातु को एक निश्चित तापमान पर पिंघलाया जाता है, फिर उसका निरीक्षण करना और पिंघले हुए धातु को ढलाई के सांचे तक ले जाना बहुत कठिन होता है। जरा सी भी असावधानी होने पर बच्चा गंभीर रूप से जल जाता है। इसके अलावा पॉलिश करते समय उनकी सांसों में धातु कण और कैमिकल घुलते हैं। बर्तनों की एसिड से धुलाई करते समय उनको चर्म रोग के साथ–साथ आंखो में जलन की मुख्य समस्या हो जाती है। इस उद्योग में काम करने से आंच, गैस और कई प्रकार के कैमिकलों के कारण उन्हें आसानी से श्वास और फेफड़ों संबंधी बीमारियां हो जाती हैं। ये समस्या कुपोषण और खराब कार्यस्थल के कारण और भी गंभीर हो जाती है।

कांच उद्योग, फिरोजाबाद –

फिरोजाबाद की चूड़ी और कांच का बना सामान विश्व प्रसिद्ध है। फिरोजाबाद में 289 निबंधित चूड़ी बनाने के कारखाने स्थित है और उनमें से करीब दो तिहाई बंद पड़े हैं लेकिन दूसरी ओर बहुत सारी अनुबंधित इकाईयाँ है जो सरकार को टैक्स दिए बिना मुनाफा कमा रही है। इन इकाइयों में लगभग 50 हजार बाल श्रमिक काम करते हैं, कुल श्रमिकों की संख्या 2 लाख है। बाल श्रमिक 800 डिग्री सेल्सियस तापमान वाली भट्टियों पर काम करते हैं। यहाँ के चूड़ी उद्योगों के मालिकों का मानना है कि यदि बच्चों को चूड़ी उद्योग में काम पर नहीं रखा जाए तो उनका उत्पादन लगभग एक चौथाई कम हो जाएगा, बाल श्रमिकों को रखे जाने के कारणों के नियोजकों का कहना है कि "बच्चों के बिना कांच उद्योग नहीं चल सकता। वे कार्यस्थल पर वयस्कों से ज्यादा तेज गति से काम करते हैं इसलिए उत्पादन बढ़ जाता है"।

कांच उद्योग में बड़े पैमाने पर बाल नियोक्ता है। चूड़ी बनाने की प्रक्रिया में विभिन्न स्तरों पर बच्चे कार्य करते हैं। बच्चों से जुड़ाई (सिरों को जोड़ना), छटाई (चुनना), कटाई (पहिए की मदद से विभिन्न पैटर्न उकेरना) और चूड़ियों की गिनती और पैकिंग के कार्य करवाए जाते हैं। चूड़ियों की सजावट लड़कियों और महिलाओं द्वारा की जाती है। यह फैक्ट्रियां साल भर में आठ महीने और केवल रात में ही चलती है। अकेले फिरोजाबाद में लगभग 250 ऐसी फैक्ट्रियां हैं जिनमें कुल एक लाख श्रम शक्ति में 60 हजार बच्चे कार्यरत हैं[5]। नियोजकों के अनुसार बाल श्रमिकों को रखने का कारण बच्चों की गरीबी है। बच्चों को कम मजदूरी पर रखा जाता है जिससे नियोजकों को काफी लाभ होता है।

स्वास्थ्य समस्याएं –

यहाँ भट्टियां एक से अधिक शिफ्टों में चलती है। यहाँ सीसा को पिंघलाकर चूड़ियां और कांच के अन्य सजावटी सामान की ढलाई होती है। भट्टियों का तापमान 800–1200 F? होता है जिससे उत्पन्न होने वाली गर्मी, शीशों के प्रेस करने की प्रक्रिया में शोर और विभिन्न कैमिकलों से युक्त धूलकणों से कई खतरनाक बिमारी हो जाती है, जो बच्चों की उम्र 10–15 वर्ष कम कर देता है, बच्चों में खांसी और फेफड़ों का कैंसर हो जाता है जो क्रोमएसिड और क्रोम एवं बाईक्रोम मिश्रित धूलकणों से युक्त वायु प्रदूषण का सीधा कुप्रभाव होता है। यहाँ अस्थमा और ब्रोंकाइटिस के कई मामले आते हैं। बाल श्रमिक अधिकांश नेत्र रोगों से पीड़ित हो जाते हैं, बाल श्रमिकों में तपेदिक के मामले में फिरोजाबाद पहले स्थान पर है।

ताला उद्योग, अलीगढ़ –

अलीगढ़ शहर ताला उद्योग के लिए विख्यात है। करीब 100 वर्षों से वहाँ ताला बनाने का काम बड़ी तादाद में किया जाता है प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वहाँ करीब 90,000 लोग ताला उद्योग में लगे हुए हैं। उसमें से करीब 10,000 बच्चे 14 वर्ष से कम उम्र के हैं। हालांकि सरकारी आंकड़ों के अनुसार वहाँ करीब 55,000 मजदूर ताला उद्योग में लगे हुए हैं उनमें से करीब 5000 बाल श्रमिक हैं। एक अध्ययन में यह भी पाया गया कि मुस्लिम बहुल बस्तियों में शैक्षिक स्थिति दयनीय है तथा जो बच्चे स्कूल जाते भी हैं उनकी हाजिरी बहुत कम है और ड्रॉपआउट रेट अधिक है[6]। लगभग 80 प्रतिषत मुस्लिम बच्चे बीच में ही अपनी पढ़ाई बंद कर देते हैं और कार्य में संलग्न हो जाते हैं। ताला उद्योग में प्रायः पीस रेट पर मजदूरी दी जाती है। वयस्कों को कम मजदूरी दिए जाने के कारण वे लोग अपने बच्चों को पारिवारिक पेशे में लगाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। शुरू–शुरू

में बच्चों को मुश्किल से 50 रूपये दिया जाता है और हुनर सीखने के नाम पर लगभग एक वर्ष तक बच्चों को वेतन नहीं दिया जाता। ताला उद्योग में खतरनाक उत्पादन प्रक्रियायें होती है किंतु इसे बाल श्रमिक (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 के तहत लंबे अरसे तक प्रतिबद्ध नहीं किया गया था, अर्थात् इसे खतरनाक पेशा या प्रक्रिया नहीं माना गया था जबकि पॉलिश करना, इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा स्प्रे रंगाई आदि बच्चों के लिए ही नहीं अपितु सभी श्रमिकों के स्वास्थ्य के लिए घातक है।

स्वास्थ्य समस्याएं –

बाल श्रमिक जब बफिंग मशीन, इलेक्ट्रोप्लेटिंग और स्प्रे मशीनों पर काम करते हैं, तो इसका स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। पॉलिश की मशीनों पर काम करने वाले बच्चे प्रायः फेफड़ों के कैंसर के शिकार होते हैं। बच्चों को खतरनाक रसायन जैसे पोटैशियम सायनाइड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड तथा सल्फ्यूरिक एसिड के घोल में नंगे हाथ काम करना पड़ता है[7], जिससे लंबे समय तक काम करने के कारण इनमें से अधिकांशतः बच्चे गंभीर शारीरिक विकृतियों के शिकार हो जाते हैं और कई बार उनकी मृत्यु हो जाती है। स्प्रे मशीनों पर काम करते हुए बच्चों में श्वांस संबंधी समस्याएं, बुखार, दमा और खांसी जैसी बीमारियों के लक्षण आसानी से पाए जाते हैं। एक अध्ययन से पता चला कि यहाँ खनिज पदार्थ मिश्रित धूलकण (लोहा एवं ब्रास) के साथ–साथ पोलिश करते समय क्रोम, निकल और अन्य खतरनाक पदार्थों के कण फेफड़ों में चले जाते हैं, जिसके कारण बच्चों में यक्ष्मा रोग हो जाता है।

चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग, खुर्जा –

बुलंदशहर जिले में स्थित खुर्जा कस्बे में चीनी मिट्टी के बर्तनों एवं अन्य सामानों का निर्माण लगभग 600 वर्षों से किया जा रहा है और अधिकांश लोग इसे पुश्तैनी पेशा बनाए हुए हैं। वहाँ करीब 20,000 मजदूर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस कार्य में लगे हुए हैं इसमें से 5000 बाल श्रमिक हैं जो 14 वर्ष से कम उम्र के है। बच्चों को उद्योग के विभिन्न प्रक्रियाओं में लगाया जाता है। जिसमे बच्चे माल की सफाई, साँचो के निर्माण, ढलाई, फिनिशिंग आदि में शामिल हैं। यह बच्चे मिट्टी को काटने और डालने का काम करते हैं, उसे सांचों में फिट किया जाता है और फिर सुखाने के लिए बाहर निकाल दिया जाता है। इतनी कड़ी मेहनत के बावजूद बाल श्रमिकों को केवल सहायक के रूप में चिन्हित किया जाता है और इसलिए उन्हें नगण्य राशि का भुगतान किया जाता है[8]।

स्वास्थ्य समस्याएं –

चीनी मिट्टी उद्योग में काम करने वाले बच्चों में सिलकोसिस नाम की बिमारी हो जाती है, जो सिलिका के कणों का सांस के द्वारा फेफड़ों में जाने से होती है। इस उद्योग में जो बाल श्रमिक ढलाई की भट्टियों पर काम करते हैं, वे आमतौर पर 45 वर्ष की आयु तक आंखो की कम रोशनी की समस्या से ग्रसित हो जाते हैं। ढलाई के अलावा सैंपलों को बदलना और उसका निरीक्षण भी आंखो के लिए खतरनाक होता है क्योंकि सैंपलों को निरीक्षण छिद्र में रखा जाता है जहाँ उसका परीक्षण किया जाता है कि वे ठीक से पक गए हैं या नहीं। इस प्रक्रिया में बहुत अधिक तापमान लगभग 1400 डिग्री सेल्सियस के अंतर्गत काम करने के कारण आंखो को गंभीर क्षति पहुंचती है। बच्चों के हाथों पैरों को नुकीले बर्तनों के टुकड़ों से कटने से बचाने के लिए कोई उपाय नहीं किया जाता, जबकि ये घटनाएं आम तौर पर होती है।

निष्कर्ष –

उत्तर प्रदेश जैसे जनसंख्या प्रधान राज्य में बाल श्रम का प्रश्न एक गहन सामाजिक–आर्थिक चुनौती के रूप में उभरकर सामने आता है। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राज्य के प्रमुख उद्योगों–जैसे कि कालीन उद्योग (मिर्जापुर, भदोही), काँच व चूड़ी उद्योग (फिरोजाबाद), पीतल एवं धातु उद्योग (मुरादाबाद) तथा असंगठित क्षेत्रों में बाल श्रमिकों की उपस्थिति सर्वाधिक पाई जाती है। निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में बाल श्रम के स्थायित्व का मूल कारण संरचनात्मक गरीबी, अषिक्षा, परिवार की आर्थिक निर्भरता, सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण तथा उद्योगों द्वारा सस्ते श्रम की सतत् मांग है। उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में बाल श्रम की वर्तमान स्थिति विधायी प्रावधानों और व्यावहारिक यथार्थ के बीच गहरे अंतर्विरोध को दर्शाती है। बाल श्रम की समस्या का निवारण केवल विधायी प्रावधानों से संभव नहीं है। इसके लिए सार्वभौमिक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सुनिश्चितकरण, परिवारों हेतु सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा का प्रावधान, कठोर श्रम निरीक्षण तंत्र का विकास तथा स्थानीय समाज की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य है, तभी बाल श्रमिकों के शोषण की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकेगा और बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सुरक्षित जीवन के संवैधानिक अधिकार वास्तविक रूप से प्राप्त हो सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. उत्तर प्रदेश बाल श्रम कार्य परियोजना, 2016
2. Sekar, Helen R. (2007). “Carpet Weaving in Allahabad, Koshambi, Varanasi, Jaunpur, Sohebhadra, Faizabad, Bhadohi and Mirzapur Districts of Uttar Pradesh,” in Child Labour: Situation and Strategies For Elimination, V.V.Giri National Labour Institute, Noida, pp. 41-43
3. शर्मा, सुभाष, ‘भारत में बाल मजदूर’, 2010, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 112–116
4. Burra,Neera, (1986) ‘Born To Child Labour’ Oxford University Press , New Delhi
5. Barge, Sandhya, et al., (1998). Child Labour in Glass-Bangles Industry of Ferozabad – Uttar Pradesh: An Economic Analysis, In Economics of Child Labour in Hazardous Industries of India, edited by Anker, Richard, et al., Hindustan Publishing Corporation, New Delhi, pp. 48-67.
6. सत्यार्थी, कैलाश, ‘तुम पहले क्यों नहीं आए’ 2023, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ.101
7. Sekar, Helen R., & Mohammad, Noor. (2001). “Child Labour in Home Based Lock Industries of Aligarh,” Series No. 018/2001, V.V. Giri National Labour Institute, Noida
8. Sharma, u. (2006). *child labour in india.* new delhi: mittal publisher.

ईमेल : nidhi.bhu1997@gmail.com

ईमेल : kaviraj@lkouniv.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 141-145

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Pesrspective of Women Empowerment in India : Measuring the Needs, Issues & Policy

Ravi Singh

Department of Political Science, University of Delhi.

Abstract :

Everywhere in the world, women's empowerment is the only foundation for social justice, poverty alleviation and sustainable economic prosperity. India is a patriarchal country and moving towards equality here means facing the challenges. This article talks about different aspects of women empowerment, including socio-economic, political and economic aspects. Despite diverse and progressive laws, women continue to face numerous challenges, including low female workforce participation, gender-based violence, and unequal access to financial and digital resources. This study combines previous research and examines macroeconomic and social data to identify structural barriers to genuine empowerment. The article concludes with political policy suggestions that emphasize the importance of behaviour change and broad support. The essay concludes with policy recommendations that focus on the need for gender-sensitive, broad-based institutional support and grassroots change to build an equal and independent India.

Keywords :

Women Empowerment, Gender Equality, Female Labour Force Participation, Indian Public Policy, Patriarchal Systems, Socio-Economic Development, Inclusive Growth.

Introduction :

The issue of women empowerment in India holds a prominent place in developed economics, sociology and public policy. It is very important to discuss this. Women constitute nearly half of the 1.4 billion population, so their participation in work is not just a matter of human rights and social justice The macroeconomic stability of the country. In a socio-political context, empowerment is defined as the process of increasing the ability of people or groups to make choices and translate those choices into desired actions and outcomes. For women in India, this means shifting from a position of systemic pressure bound by patriarchal norms to one of agency, autonomy, and equality.

The condition of women in India has been poor since its inception. However, the Indian Constitution prohibits discrimination based on gender. Millions of women are identified by deep social and cultural hierarchies. In India, women hold many positions like president, co-operate leader, space experts and many more. Despite this, India today struggles with gender imbalance, domestic violence, and women's underrepresentation in the workforce. This paper attempts to address this issue and emphasizes the importance of empowering Indian women. It highlights the challenges of existing systems in urban and rural areas and evaluates government interventions to reduce gender gaps.

Literary Review :

The framework for women's empowerment is very broad, based on feminist theory, developmental economics, and sociology. Many people have discussed empowerment in developing countries for many years.

Conceptualizing empowerment :

Empowerment can be understood from Amartya Sen's capability approach (1999). Sen argues that development is measured not just by economic growth but by the expansion of human capabilities, the freedom people have to live the lives they choose. For Indian women, this means being deprived of education, healthcare and basic rights. Taking this further, Naila Kabeer (2001) describes empowerment as the ability to make life choices in an environment that was previously denied. Kabeer empowerment is divided into three parts: resources, agency and achievement.

Economic dimensions and labour force :

Desai and Joshi (2019) have well understood the implications of declining female labour force participation (FLFP) in India at a time of fast economic growth. His research emphasizes the U-shaped hypothesis, which states that as household income increases, women often leave agriculture due to social stigma. But they lack the education to enter the formal high school sector. According to Klasen and Pieters (2015) all these barriers are structural, including the burden of home maintenance due to lack of money, lack of infrastructure, and lack of jobs in good sectors for women.

Socio-Cultural and institutional barriers :

The literature written on socio-logical barriers shows a strong influence of patriarchy. Agarwal (1994) emphasizes the role of property rights. She argues that women who lack land are more vulnerable to domestic violence and poverty. Furthermore, according to studies by the International Centre for Research on Women (ICRW), the continued prevalence of child marriage and dowry system links the girls of India to devaluation and it is also directly linked to female feticide and deteriorating sex ratio.

Gaps in existing literature :

While there has been a wealth of research on the economic and health metrics of Indian women, longitudinal studies assessing the micro-level impact of recent digital inclusion and post-pandemic labour shifts are lacking. This paper builds on existing frameworks by integrating current data on the digital divide and evaluating the local impact of modern government policies.

Methodology :

This article adopts a descriptive and analytical research design based on secondary sources, which also includes a methodological approach.

- **Data Sourcing :** Synthesizing quantitative data and qualitative insights from reliable institutional reports. The main sources include the National Family Health Survey (NFHS-5), the Periodic Labour Force Survey (PLFS) conducted by the National Statistical Office (NSO), the National Crime Records Bureau (NCRB), and data from the World Bank and the World.
- **Thematic Analysis :** Structuring the analysis around three main themes: Economic/ Occupational Challenges, Educational/Digital Inequalities, and Socio-Legal Environment.
- **Policy Evaluation :** Reviewing existing legal and welfare frameworks to assess their alignment with identified socio-economic constraints.

By triangulating data from government, international, and academic sources, this method ensures a complete, evidence-based review of the current situation, without the constraints of a geographically limited primary sample.

Analysis :

An examination of women's empowerment in India reveals a complex interrelationship between structural stagnation and social progress. The results are grouped into main functional categories below.

- **Labour Force Participation and Economic Empowerment -** The female workforce is a significant and significant aspect of India's growth story. While there has been a slight increase in the number of working women in rural areas, the PLFS figures show that the number of women in rural areas remains low. This is very low compared to global standards. This economic backwardness of women is primarily due to three reasons: the burden of unpaid care work (the unpaid care economy), and insecurity in the unorganized sector.
- **The Digital Divide and Educational Attainment -** Thanks to programmes such as the Sarva Shiksha Abhiyan, India has achieved gender parity in gross enrolment ratio at the elementary level and has made significant progress in primary education. Additionally, a new barrier has emerged: the "digital divide." In a rapidly changing digital economy, patriarchal mind sets severely limit women's access to internet-enabled devices.

- The main markers of a woman's social empowerment are her bodily autonomy and public safety. A high frequency of crimes against women—such as kidnapping, assault, and "cruelty by husband or his relatives" (domestic abuse)—is consistently reported in the NCRB data.
- **Public Safety :** A woman's economic freedom is strongly restricted by the persistent fear of sexual harassment in public spaces, which limits her options for employment, transportation, and viable working hours.
- **Maternal Health :** Anaemia among Indian women remains extremely high, affecting over 50% of women aged 15-49 according to NFHS-5 data, despite a significant increase in institutional deliveries under the Janani Suraksha Yojana. This nutritional shortfall is a direct result of intrahousehold inequality, as traditional practices often dictate that women eat the leftover food after the male members of the household have finished.

Conclusion and Recommendations :

In India, the path to women's empowerment is a constant struggle against deeply ingrained structural, cultural, and financial obstacles rather than a linear trajectory. The conversion of progressive inputs into true economic and social agency remains severely limited, notwithstanding India's success in passing strong, gender-sensitive legislation and attaining parity in elementary education.

As the analysis shows, empowerment cannot be viewed in isolation. If a girl cannot travel safely to her place of work, Or if she is forced to do unpaid domestic work because of societal expectations, then educating her is useless. True empowerment requires dismantling patriarchal structures that determine a woman's worth solely based on her relationship with men.

To build an equal and free India, the following strategic policies are recommended :

- **Financing and recognizing care work :** The care economy requires significant government investment. Creating high-quality, government-funded childcare and eldercare facilities will free up time for millions of women, allowing them to enter the formal workforce.
- **Bridging the digital and financial gap :** Policy should directly focus on improving women's digital literacy. Future-proofing jobs for women requires both local digital training and subsidized technological devices for female students and village business owners.
- **Improving urban infrastructure and law enforcement :** Public safety must be considered an essential economic issue. Necessary interventions include well-lit streets, safe and subsidized public transport, and the rapid implementation of zero-tolerance measures against workplace harassment.
- **Engage boys and men :** Legal action should be combined with aggressive behaviour change campaigns. To weaken the restrictive patterns of traditional gender roles and promote fair division of

household chores, gender sensitization should be incorporated into the educational curriculum from the early stages of childhood development.

Ultimately, the socio-economic status of India's women is directly linked to the country's goal of becoming a global economic powerhouse. Unlocking the potential of half a billion women Rather, it is the most effective way to achieve sustainable development and national resilience. State policy must move away from a protectionist welfare approach to a holistic strategy that ensures women have unhindered agency, physical safety, and full economic integration.

Reference :

- Agarwal, B. (1994). A field of one's own: Gender and land rights in South Asia. Cambridge University Press.
- Agarwal, V., Maity, S., & Sahu, T. N. (2022). Female entrepreneurship, employability and empowerment: Impact of the MUDRA loan scheme. Journal of Developmental Entrepreneurship.
- Dalal, K. (2011). Does economic empowerment protect women from intimate partner violence?. Journal of Injury and Violence Research.
- Desai, S., & Joshi, O. (2019). The paradox of declining female labour force participation in an expanding economy. Studies in Indian Economic Development.
- Deshpande, A., & Singh, J. (2021). Dropping out, being pushed out or can't get in? Decoding declining labour force participation of Indian women. SSRN Electronic Journal.
- Gupta, R., Nimesh, R., Singal, G. L., Bhalla, P., & Prinja, S. (2018). Effectiveness of India's National Programme to save the girl child: Experience of Beti Bachao Beti Padao (B3P) programme from Haryana State. Health Policy and Planning.
- Kabeer, N. (2001). Reflections on the measurement of women's empowerment. In Discussing Women's Empowerment-Theory and Practice, Swedish International Development Cooperation Agency.
- Klasen, S., & Pieters, J. (2015). What explains the low female labour force participation rate in urban India? The World Bank Economic Review.
- Kumari, S., & Siotra, V. (2023). Indian females in the twenty-first century: How they have fared? An analysis using geospatial techniques. GeoJournal.
- Paul, A., & Thompson, K. M. (2018). Negotiating digital spaces in everyday life: A case study of Indian women and their digital use.
- Rawat Mahila B.Ed. College. (2023, March 14). Women's empowerment in India and its importance. Rawat Educational Group.
- Singh, P., & Pattanaik, F. (2020). Unfolding unpaid domestic work in India: Women's constraints, choices, and career. Palgrave Communications.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 146-148

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रधानमंत्री पद का नैतिक और लोकतांत्रिक नेतृत्व : अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल का एक समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ. विरमा राम देवासी, निर्देशक
कांता भाटी, शोधार्थी,
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर।

भारतीय राजनीतिक इतिहास में प्रधानमंत्री पद की प्रतिष्ठा और कार्यशैली अलग–अलग कालखंडों में बदलती रही है। जहाँ स्वतंत्रता के शुरुआती दशकों में जवाहरलाल नेहरू का आदर्शवादी लोकतंत्र और इंदिरा गांधी का केंद्रीकृत–अधिनायकवादी नेतृत्व देखा गया, वहीं 1990 का दशक राजनीतिक अस्थिरता और वैचारिक बिखराव का दौर था। इसी पृष्ठभूमि में अटल बिहारी वाजपेयी का उदय भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता का प्रतीक बना। वाजपेयी जी भारत के पहले ऐसे गैर–कांग्रेसी प्रधानमंत्री थे जिन्होंने अपना 5 वर्ष का कार्यकाल (1999–2004) सफलतापूर्वक पूरा किया। उनका नेतृत्व केवल राजनीतिक जोड़–तोड़ का परिणाम नहीं था, बल्कि उसमें एक नैतिक गरिमा और लोकतांत्रिक सहिष्णुता अंतर्निहित थी। उन्होंने संसद को केवल कानून बनाने की संस्था नहीं, बल्कि जनता की सामूहिक चेतना का मंच माना। नैतिक और लोकतांत्रिक नेतृत्व का सैद्धांतिक ढांचा राजनीतिक दर्शन में 'नैतिक नेतृत्व' का अर्थ है– निर्णय प्रक्रिया में व्यक्तिगत या दलीय हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों और संवैधानिक मर्यादाओं को प्राथमिकता देना।

मैक्स वेबर के 'करिश्माई और तार्किक–कानूनी नेतृत्व' के सिद्धांत के आलोक में यदि वाजपेयी जी का अध्ययन किया जाए, तो वे इन दोनों का एक अनूठा सम्मिश्रण थे। उनका वक्तृत्व कौशल करिश्माई था, परंतु उनकी प्रशासनिक शैली संवैधानिक सीमाओं से बंधी थी। वाजपेयी जी का 'राजधर्म' दर्शन वाजपेयी जी का नेतृत्व दर्शन प्राचीन भारतीय अवधारणा 'राजधर्म' से प्रेरित था। उनके अनुसार, राजा या शासक का कोई व्यक्तिगत धर्म या भेद–भाव नहीं हो सकताय उसका एकमात्र कर्तव्य अपनी प्रजा की बिना किसी भेदभाव के रक्षा और सेवा करना है। 'सरकारें आएंगी, जाएंगी, पार्टियां बनेंगी, बिगड़ेंगी। मगर यह देश रहना चाहिए, इस देश का लोकतंत्र अमर रहना चाहिए।' – अटल बिहारी वाजपेयी (संसद में ऐतिहासिक भाषण, 1996) यह दर्शन उनके शासनकाल में नीतिगत निर्णयों का आधार बना, जिसने बहु–सांस्कृतिक और बहु–धार्मिक भारत को एक सूत्र में पिरोए रखा।

गठबंधन राजनीति का सफल संचालन और लोकतांत्रिक सहिष्णुता राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) और 'आम सहमति' की राजनीति 1996 में मात्र 13 दिन, 1998 में 13 महीने और अंततः 1999 से 2004 तक सरकार चलाकर वाजपेयी जी ने यह सिद्ध किया कि भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में गठबंधन सरकारें भी स्थिर और विकासोन्मुखी हो सकती हैं। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) की

कठोर विचारधारा से लेकर क्षेत्रीय, धर्मनिरपेक्ष और वाम–झुकाव वाले दल (जैसे DMK, तृणमूल कांग्रेस, नेशनल कॉन्फ्रेंस) शामिल थे। वाजपेयी जी ने 'राष्ट्रीय साझा कार्यक्रम' बनाकर विवादित मुद्दों (जैसे धारा 370, राम मंदिर, और समान नागरिक संहिता) को ठंडे बस्ते में डाल दिया। यह उनके लोकतांत्रिक नेतृत्व की पराकाष्ठा थी, जहाँ उन्होंने अपनी मूल पार्टी (BJP) के एजेंडे से ऊपर गठबंधन सहयोगियों की आकांक्षाओं को सम्मान दिया। विपक्ष के प्रति सम्मान और संसदीय मर्यादा वाजपेयी जी के लोकतांत्रिक नेतृत्व की सबसे बड़ी विशेषता थी। विपक्ष के प्रति अगाध सम्मान। वे नेहरूवादी संसदीय परंपरा के वाहक थे। 1971 के भारत–पाक युद्ध के समय इंदिरा गांधी की प्रशंसा करना हो या नेता प्रतिपक्ष के रूप में रचनात्मक आलोचना, उन्होंने कभी भी राजनीतिक विरोध को व्यक्तिगत शत्रुता में नहीं बदलने दिया। उनकी इसी छवि के कारण उन्हें 'अजातशत्रु' (जिसका कोई शत्रु न हो) कहा गया। नीतिगत निर्णय और सामरिक नैतिकता वाजपेयी सरकार के नीतिगत निर्णयों में राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक उदारीकरण और सामाजिक कल्याण का एक संतुलित दृष्टिकोण दिखाई देता है।

क्षेत्र प्रमुख नीति/निर्णय लोकतांत्रिक एवं नैतिक प्रभाव सामरिक सुरक्षा पोखरण–II परमाणु परीक्षण (1998) भारत को परमाणु शक्ति संपन्न बनाया, लेकिन साथ ही 'नो फर्स्ट यूज' की नैतिक नीति घोषित की। विदेश नीति लाहौर बस यात्रा और आगरा शिखर सम्मेलन आतंकवाद झेलने के बावजूद पड़ोसी देश पाकिस्तान के साथ शांति की लोकतांत्रिक पहल की। अवसंरचना स्वर्णिम चतुर्भुज योजना देश के चारों कोनों को राजमार्गों से जोड़कर आर्थिक एकीकरण किया। सामाजिक न्याय 86वाँ संविधान संशोधन (सर्व शिक्षा अभियान) 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा को 'मूल अधिकार' बनाकर लोकतांत्रिक समता की नींव रखी।

कारगिल युद्ध (1999) और सामरिक संयम कारगिल संकट के दौरान वाजपेयी जी का नेतृत्व उनके नैतिक और लोकतांत्रिक साहस का अद्वितीय उदाहरण है। अंतरराष्ट्रीय दबाव और सैन्य उकसावे के बावजूद, उन्होंने भारतीय सेना को 'नियंत्रण रेखा' पार न करने का सख्त आदेश दिया। इस रणनीतिक संयम ने भारत को वैश्विक मंच पर एक जिम्मेदार परमाणु शक्ति के रूप में स्थापित किया और पाकिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग–थलग कर दिया। एक अकादमिक शोध–पत्र तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक नेतृत्व की कमियों का निष्पक्ष विश्लेषण न किया जाए।

वाजपेयी जी के नेतृत्व के समक्ष कुछ गंभीर नैतिक और राजनीतिक चुनौतियाँ आईं, जहाँ उनके निर्णयों पर सवाल उठे : 2002 के गुजरात दंगे और 'राजधर्म' का संकट वाजपेयी जी के प्रधानमंत्री काल का सबसे बड़ा नैतिक संकट 2002 के गुजरात दंगे थे। अहमदाबाद के शाह आलम कैंप में प्रेस कॉन्फ्रेंस के दौरान उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को कैमरे के सामने 'राजधर्म' निभाने की सलाह दी थी।

आलोचनात्मक बिंदु :

आलोचकों और राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि वाजपेयी जी दंगों को रोकने में नाकाम रही राज्य सरकार को बर्खास्त कर सकते थे, लेकिन गठबंधन के दबाव और अपनी ही पार्टी के भीतर आंतरिक वैचारिक विरोध (हार्डलाइनर्स) के कारण वे कठोर दंडात्मक कदम नहीं उठा सके। यह उनके नैतिक नेतृत्व की एक सीमा को रेखांकित करता है, जहाँ दलीय राजनीति राष्ट्रीय नैतिकता पर भारी पड़ गई। वैचारिक अंतर्विरोध वाजपेयी जी को अक्सर 'दक्षिणपंथ का उदारवादी मुखौटा' कहा जाता था। उनके पूरे कार्यकाल में मातृ संस्था और स्वदेशी जागरण मंच के साथ उनका टकराव चलता रहा। आर्थिक मोर्चे पर उन्होंने 'विनिवेश मंत्रालय' बनाकर सरकारी

कंपनियों का निजीकरण किया, जिसे संघ के आर्थिक विंग ने 'स्वदेशी मूल्यों' के खिलाफ माना।

इस प्रकार, वे अपनी वैचारिक जड़ों और आधुनिक लोकतांत्रिक शासन की आवश्यकताओं के बीच लगातार जूझते रहे 'इंडिया शाइनिंग' और ग्रामीण उपेक्षा 2004 के चुनाव में उनकी सरकार ने 'इंडिया शाइनिंग' (भारत उदय) का नारा दिया। तकनीकी और शहरी विकास तो हुआ, लेकिन कृषि क्षेत्र संकट में रहा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पिछड़ गई। यह नीतिगत विफलता उनके नेतृत्व के लोकतांत्रिक मूल्यांकन को कमजोर करती है, क्योंकि विकास का लाभ समाज के अंतिम छोर तक समान रूप से नहीं पहुँच सका, जिसके परिणामस्वरूप 2004 में जनमंच ने उन्हें सत्ता से बाहर कर दिया।

निष्कर्ष :

अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री पद के कार्यकाल का समालोचनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनका नेतृत्व भारतीय लोकतंत्र के संक्रमण काल में एक 'स्थिरता के स्तंभ' के रूप में उभरा। उन्होंने यह साबित किया कि नैतिक मूल्य और लोकतांत्रिक मर्यादाएं व्यावहारिक राजनीति के विरोधी नहीं, बल्कि उसके पूरक हैं। गठबंधन की मजबूरियों और वैचारिक अंतर्विरोधों के कारण कुछ मोर्चों (जैसे 2002 का गुजरात संकट) पर उनके नेतृत्व की सीमाएं जरूर उजागर हुईं, तथापि संसदीय गरिमा, विपक्ष के प्रति सहिष्णुता, और राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखने की उनकी कला अनुकरणीय है। आधुनिक भारतीय राजनीति में जब ध्रुवीकरण और संवादहीनता बढ़ रही है, तब वाजपेयी जी का 'आम सहमति' और 'राजधर्म' का मॉडल आज भी प्रासंगिक और मार्गदर्शक है।

संदर्भ :

1. वाजपेयी, अटल बिहारी (2000). मेरी इक्यावन कविताएँ, नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन। (यह पुस्तक उनके मानवीय और नैतिक दर्शन को समझने का प्राथमिक स्रोत है)।
2. गुहा, रामचंद्र (2007). इंडिया आफ्टर नेहरू (India After Gandhi), नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स। (इस ग्रंथ में वाजपेयी काल के गठबंधन और कश्मीर नीति का उत्कृष्ट ऐतिहासिक विश्लेषण है)।
3. थापर, करण (2018). डेविल्स एडवोकेट : द अनटोल्ड स्टोरीज, नई दिल्ली : हार्पर कॉलिन्स। (2002 के संकटों और वाजपेयी जी के आंतरिक संघर्षों पर प्रकाश डालती है)।
4. संसदीय वाद–विवाद (Parliamentary Debates). लोकसभा और राज्यसभा के आधिकारिक रिकॉर्ड (1996, 1999, 2002), भारत सरकार।
5. सिंह, एन. के. (2015). नॉट बाई रीजन अलोनरू पॉलिटिक्स, हिस्ट्री एंड रेजिलिएंट इंडिया, नई दिल्ली : रूपा पब्लिकेशन्स। (वाजपेयी सरकार के आर्थिक सुधारों का प्रामाणिक विवरण)।
6. जर्नल संदर्भ (IJARPS – 2022). अटल बिहारी वाजपेयी की लोकतांत्रिक सोच और समकालीन भारतीय राजनीति का विश्लेषण, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 149-153
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका

रामदेव

भारतीय लोकतंत्र की सफलता का आधार स्थानीय स्वशासन की मजबूत व्यवस्था है। पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण विकास एवं जनसहभागिता का प्रमुख माध्यम हैं। भारत में 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा महिलाओं के लिए न्यूनतम 33 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया गया। राजस्थान देश का पहला राज्य है जहाँ पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ 2 अक्टूबर 1959 को हुआ। वर्तमान में राजस्थान में महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है। महिलाओं की बढ़ती भागीदारी ने ग्रामीण शासन, सामाजिक न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। इसके बावजूद महिलाओं को सामाजिक रूढ़ियों, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता तथा पुरुष प्रतिनिधियों के हस्तक्षेप जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में राजस्थान पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका, योगदान, चुनौतियों तथा संभावनाओं का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : पंचायती राज, महिला सशक्तिकरण, राजस्थान, स्थानीय स्वशासन, ग्रामीण विकास।

1. प्रस्तावना :

भारत को ग्रामों का देश कहा जाता है। देश की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तभी संभव है जब शासन में प्रत्येक वर्ग की सहभागिता सुनिश्चित हो। पंचायती राज व्यवस्था स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक शासन का आधार है। राजस्थान में पंचायती राज का ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि यहाँ 2 अक्टूबर 1959 को नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ किया गया था। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी ने ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन को गति प्रदान की है। महिलाओं को आरक्षण मिलने से वे निर्णय निर्माण प्रक्रिया में शामिल हुई हैं तथा विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इससे न केवल महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास को भी नई दिशा मिली है।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

- राजस्थान पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।
- महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी एवं नेतृत्व क्षमता का मूल्यांकन करना।
- पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के योगदान का विश्लेषण करना।
- महिलाओं के समक्ष आने वाली चुनौतियों का अध्ययन करना।
- महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध पद्धति :

यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। अध्ययन के लिए निम्न स्रोतों का उपयोग किया गया है :—

- पुस्तकें।
- शोध पत्रिकाएँ।
- सरकारी रिपोर्टें।
- राजस्थान पंचायती राज विभाग के प्रकाशन।
- जनगणना रिपोर्ट।
- महिला एवं बाल विकास विभाग की रिपोर्टें
- विभिन्न शोध आलेख एवं इंटरनेट स्रोत।

4. राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था का विकास :

राजस्थान पंचायती राज व्यवस्था का अग्रणी राज्य रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की आवश्यकता महसूस की गई। बलवंत राय मेहता समिति (1957) की सिफारिशों के आधार पर राजस्थान में पंचायती राज प्रणाली लागू की गई। राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था तीन स्तरीय है :—

- ग्राम पंचायत।
- पंचायत समिति।
- जिला परिषद।

73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई।

5. पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं का आरक्षण :

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं के लिए कम से कम 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। राजस्थान सरकार ने इसे बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया। महिलाओं को निम्न पदों पर आरक्षण प्रदान किया गया :—

- सरपंच
- उपसरपंच
- पंचायत समिति सदस्य

- प्रधान
- जिला परिषद सदस्य
- जिला प्रमुख

इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप हजारों महिलाएँ स्थानीय शासन में प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सकीं।

6. राजस्थान पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका :

(क) ग्रामीण विकास में योगदान – महिला जनप्रतिनिधियों ने ग्रामीण विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वे सड़क, बिजली, पानी तथा आवास योजनाओं की निगरानी करती हैं।

(ख) शिक्षा के क्षेत्र में योगदान – महिला सरपंचों ने विद्यालयों में छात्राओं के नामांकन को बढ़ाने, ड्रॉपआउट कम करने तथा बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(ग) स्वास्थ्य एवं पोषण – महिलाओं ने टीकाकरण, मातृ स्वास्थ्य, पोषण अभियान तथा आंगनबाड़ी सेवाओं को मजबूत बनाने में योगदान दिया है।

(घ) स्वच्छता अभियान – स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत शौचालय निर्माण एवं स्वच्छता जागरूकता में महिला प्रतिनिधियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

(ङ) महिला सशक्तिकरण – महिला प्रतिनिधियों ने स्वयं सहायता समूहों के गठन, महिला शिक्षा तथा घरेलू हिंसा के विरुद्ध जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।

7. महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी का प्रभाव :

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी से अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं :–

- लोकतंत्र में समावेशिता बढ़ी।
- महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ा।
- निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी।
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में पारदर्शिता आई।
- सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जागरूकता बढ़ी।

8. महिलाओं के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ :

1. **अशिक्षा** – ग्रामीण क्षेत्रों में कई महिला प्रतिनिधि पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं हैं, जिससे प्रशासनिक कार्यों में कठिनाई होती है।
2. **प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व** – कई स्थानों पर निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पति या परिवार के पुरुष सदस्य निर्णय लेते हैं।
3. **सामाजिक रूढ़ियाँ** – पितृसत्तात्मक समाज महिलाओं के स्वतंत्र नेतृत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करता।
4. **आर्थिक निर्भरता** – आर्थिक रूप से निर्भर होने के कारण कई महिलाएँ स्वतंत्र निर्णय लेने में

कठिनाई अनुभव करती हैं।

5. **प्रशासनिक प्रशिक्षण का अभाव** – कई महिला प्रतिनिधियों को प्रशासनिक एवं वित्तीय प्रबंधन का पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिलता।

9. महिला नेतृत्व के सफल उदाहरण :–

राजस्थान के अनेक जिलों में महिला सरपंचों ने उत्कृष्ट कार्य किए हैं। उन्होंने जल संरक्षण, बालिका शिक्षा, स्वच्छता अभियान तथा महिला स्वावलंबन के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। कई ग्राम पंचायतों ने महिला नेतृत्व में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय पुरस्कार भी प्राप्त किए हैं।

10. महिला सशक्तिकरण एवं पंचायती राज :

पंचायती राज संस्थाएँ महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम बनी हैं। पंचायतों में भागीदारी से महिलाओं में :–

- नेतृत्व क्षमता विकसित हुई।
- सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी।
- आर्थिक निर्णयों में सहभागिता बढ़ी।
- राजनीतिक जागरूकता का विकास हुआ।
- लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ बढ़ी।

11. सुझाव :

- महिला प्रतिनिधियों को नियमित प्रशिक्षण दिया जाए।
- डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाएँ।
- प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व पर रोक लगाई जाए।
- महिला स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहन दिया जाए।
- पंचायत स्तर पर महिला नेतृत्व विकास कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।
- शिक्षा एवं कौशल विकास पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया जाए।

12. निष्कर्ष :

राजस्थान पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। महिलाओं ने ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। यद्यपि उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, फिर भी उनकी बढ़ती भागीदारी ग्रामीण लोकतंत्र को मजबूत बना रही है।

महिला नेतृत्व ने यह सिद्ध किया है कि अवसर मिलने पर महिलाएँ प्रभावी प्रशासन एवं विकास कार्यों का सफल संचालन कर सकती हैं। अतः महिला सशक्तिकरण को और मजबूत करने के लिए प्रशिक्षण, शिक्षा तथा संस्थागत सहयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994।
- भारत का संविधान (73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992)।
- बलवंत राय मेहता समिति रिपोर्ट, 1957।
- महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान।
- पंचायती राज विभाग, राजस्थान सरकार।
- सिंह, बी.एल. – पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास।
- शर्मा, आर.सी. – भारतीय स्थानीय स्वशासन।
- यादव, एम.एस. – महिला सशक्तिकरण एवं पंचायती राज।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 154-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'आधे–अधूरे' नाटक में पारिवारिक विखंडन : वर्तमान संदर्भ में

अमित, शोधार्थी

प्रो. जगदेव कुमार शर्मा, शोध निर्देशक

पीठ प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, मानविकी विभाग (हिंदी)

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

शोध सार :–

प्रस्तुत शोध पत्र मोहन राकेश के कालजयी नाटक 'आधे–अधूरे' के माध्यम से समकालीन मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त पारिवारिक विखंडन की समस्या का गहन विश्लेषण करता है। स्वातंयर्त्योत्तर भारत में बदलते सामाजिक–आर्थिक परिवेश, शहरीकरण और टूटते पारंपरिक मूल्यों ने परिवार जैसी सुदृढ़ संस्था को किस प्रकार खोखला कर दिया है, यह इस अध्ययन का मुख्य केंद्र है। शोध पत्र में नाटक के मुख्य पात्रों 'सावित्री, महेंद्रनाथ और उनके बच्चों' के अंतर्संबंधों के माध्यम से आर्थिक हीनता, संवादहीनता, स्त्री–पुरुष के अहं का टकराव और 'पूर्ण पुरुष' की अंतहीन तलाश जैसे कारकों की पड़ताल की गई है। प्रस्तुत शोध पत्र में यह भी रेखांकित किया गया है कि कैसे आर्थिक दबाव, बदलती स्त्री–पुरुष भूमिकाएं और अनियंत्रित मनोवैज्ञानिक आकांक्षाएं एक छत के नीचे रहते हुए भी परिवार के सदस्यों को एक दूसरे से मीलों दूर कर देती है जिससे परिवार केवल एक ढांचा मात्र रह जाता है।

बीज शब्द – मोहन राकेश, आधे–अधूरे, पारिवारिक विखंडन, मध्यवर्गीय विद्रूपता, स्त्री–पुरुष संबंध, संवादहीनता, मनोवैज्ञानिक अलगाव।

प्रस्तावना –

मोहन राकेश द्वारा रचित आधे–अधूरे (1969) हिंदी नाट्य साहित्य का एक युगांतरकारी नाटक है जो स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज विशेषकर महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों और पारिवारिक विखंडन की त्रासदी को अत्यंत यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करता है। हिंदी साहित्य में 'नई कहानी' और 'नए नाटक' के पुरोधा मोहन राकेश का नाटक 'आधे–अधूरे' समकालीन समाज के खोखलेपन और पारिवारिक विघटन का एक जीवंत दस्तावेज है। यह नाटक उस दौर में लिखा गया था जब भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। यह आलेख एक स्तर पर स्त्री पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज है। नाटक में महानगर के मध्यम श्रेणी के परिवार के स्त्री पुरुष संबंध, प्रेम और पारिवारिक मूल्यों के विविध कोणों का कड़वाहट से भरा चित्रण किया गया है। मोहन राकेश ने इस नाटक में एक मध्ययुगीन परिवार के विघटित होते हुए और टूटे हुए संबंध और जीवन मूल्यों की नंगी तस्वीर को पेश किया है। इन खंडित संबंधों की विडंबना यह है कि व्यक्ति स्वयं

अधूरा होते हुए भी दूसरों का अधूरापन उनके लिए असहनीय हो जाता है। नाटक का मुख्य स्वर भी यही है कि पूर्णता की तलाश वाजिब नहीं है।

आधे अधूरे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल एक परिवार के टूटने की कहानी नहीं है बल्कि यह उस संस्था के भीतर से खोखले होने की दास्तां है जहां लोग मजबूरी वश एक साथ रह रहे हैं। नाटक की शुरुआत में ही 'काले सूट वाला आदमी' (प्रस्तावना) इस विखंडन की सार्वभौमिकता को स्पष्ट करते हुए कहता है : 'शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं वह आदमी मैं हूं.... मैं किन परिस्थितियों में जीता हूं। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता।'[1] मोहन राकेश का यह नाटक दिखाता है कि आज के भौतिकतावादी युग में व्यक्ति किस प्रकार स्वयं तक ही सीमित होकर रह गया है वह समाज से दिन–प्रतिदिन कटता जा रहा है वह दिन–रात भाग दौड़ करता है और स्वयं के लिए अधिकाधिक सुविधाएं जुटा लेना चाहता है। उसी प्रकार इस नाटक की मुख्य पात्र सावित्री भी जीवन की लालसा और व्यक्तित्व की सार्थकता की आकांक्षा की अभिव्यक्ति के लिए एक पूर्ण–पुरुष की खोज का विकल्प इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है।

नाटक का परिवार कोई आदर्श परिवार नहीं है यह एक ऐसा परिवार है जो हर दिन टूटता है, बिखरता है और फिर अगले दिन उसी घुटन के साथ जीने के लिए मजबूर हो जाता है। यह कहना आवश्यक नहीं होगा कि संपूर्ण नाटक में नाटककार ने संपूर्णता की खोज को भ्रामक बताया है और विकल्प न होने से व्यक्ति को इसी तरह का जीवन जीने को इसकी वजह बताया है। नाटक की शुरुआत के प्रसंग में काला सूट वाला आदमी कहता है कि "यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है...... सब कुछ इसमें निर्धारित या अनिर्धारित है..... सब कुछ अनिश्चित रहता है इसी परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती– या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और मैं उसकी भूमिका लेकर उसे झेलता। नाटक अंत तक फिर भी इतना ही निश्चित बना रहता और यह निर्णय करना उतना ही कठिन होता कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी मेरी या उस स्त्री की या परिस्थितियों की या तीनों के बीच से उठाते हुए सवालों की।"[2] यह कथन जीवन की अर्थहीनता और पहचान के संकट को मुख्य स्वर देता है कि आधुनिक जीवन में कुछ भी पूर्व निर्धारित या व्यवस्थित नहीं है। नाटक के पात्र इस कथन के माध्यम से स्वयं के व्यक्तित्व और नाटक की कथावस्तु दोनों को अपूर्ण व अधूरे धरातल पर खड़ा कर देता है। यहां अनिश्चितता केवल सहयोग नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य की नियति है। आधे अधूरे के पात्र व्यक्तित्व के प्रतीक न होकर स्थिति के प्रतीक है जहां कोई भी व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति का स्थान ले सकता है और अंत में उसे वही सामान परिणाम झेलना पड़ेगा।

नाटक की पृष्ठभूमि एक ऐसे घर की है जहाँ का वातावरण अस्त–व्यस्त है। साधारण तौर पर तो यह मध्य वित्तीय से निम्न मध्य वित्तीय स्तर पर आते परिवार की कहानी प्रतीत होती है। किंतु टूटने बिखरने के कगार पर पहुंचा यह परिवार केवल आर्थिक कारण से ही नहीं है बल्कि आंतरिक परिस्थितियों से उपजे समीकरण है जो बड़े ही त्रासद हो गए हैं। घर का यह बिखराव दरअसल उस परिवार के सदस्यों के मानसिक टूटन का प्रतीक है। परिवार में पांच सदस्य हैं कमाऊ पत्नी सावित्री, बेरोजगार और असफल पति महेंद्रनाथ, बड़ी बेटी बिन्नी, बेरोजगार और कुंठित बेटा अशोक और छोटी बेटी किन्नी जो उपेक्षा का शिकार होकर समय से पहले बड़ी हो रही है। कमरे में बिना इस्तरी किए कपड़े, बिखरी हुई किताबें और टूटी हुई कुर्सियाँ दरअसल उस परिवार

के सदस्यों के मानसिक बिखराव का दर्पण हैं। मध्यवर्गीय परिवारों में आर्थिक सुरक्षा एक महत्वपूर्ण धुरी होती है। महेंद्रनाथ व्यवसाय में असफल हो चुका है और अब पूरी तरह से अपनी पत्नी सावित्री की आय पर निर्भर है। घर की पूरी आर्थिक और व्यावहारिक जिम्मेदारी उठाते–उठाते सावित्री भी टूटने लगती है। उसकी यह घुटन और आर्थिक दबाव उसके इस संवाद में स्पष्ट रूप से फूट पड़ता है : "किसी तरह इस घर का कुछ बन सके, कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का। जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके..... मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारी नहीं उठाती रह सकती।"[3] यही आर्थिक असंतुलन और सत्तात्मक संघर्ष परिवार के विखंडन का पहला और सबसे प्रमुख कारण बनता है। जो महेंद्रनाथ कभी घर का गृह स्वामी हुआ करता था आज उसकी हालत उसके ही घर में एक नौकर के समान है। अब उसका अस्तित्व उस घर में सिर्फ एक ठप्पा या रबड़ का टुकड़ा के समान है। यह आर्थिक निर्भरता महेंद्रनाथ के भीतर गहरी हीन भावना भर देती है। एक तरह से उसकी स्थिति स्त्री की कमाई पर पलते पुरुष की हो गई है। परिवार की आर्थिक स्थिति व महेंद्रनाथ की बेकरी ने ही परिवार को ऐसा बना दिया है कि वह दोनों पति–पत्नी एक दूसरे को सह नहीं पाते व एक दूसरे से नफरत करते हुए भी एक साथ रहने को विवश है।

'आधे–अधूरे' में पति–पत्नी का संबंध किसी भी प्रकार के प्रेम, सम्मान या सहकार पर आधारित नहीं है। महेंद्रनाथ एक पराजित व्यक्ति है। महेंद्र नाथ सावित्री से असंतुष्ट होते हुए भी और बहुत से मामलों में असहमत होते हुए भी उससे बहुत प्रेम करता है। वह जानता है कि वह अपनी पत्नी की नजरों में गिर चुका है। घर में अपनी खोई हुई अहमियत और दुर्दशा को व्यक्त करते हुए वह एक जगह अत्यंत मार्मिक और विचलित कर देने वाला संवाद बोलता है : 'मैं इस घर में एक रबर स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ– बार बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा।'[4] महेंद्र नाथ अपने घर में बार–बार अपमानित होते हुए बार–बार उसे वातावरण से, पत्नी से भगाने के लिए मजबूर हो जाता है किंतु अपने मन की कुछ दुर्बलताओं के कारण व सावित्री को इतना चाहने के कारण उस पर इतना निर्भर है कि हर बार घर से जाकर भी वापस उसी घर में लौट आता है।

सावित्री एक महत्वाकांक्षी स्त्री है जो एक 'पूर्ण पुरुष' की तलाश में है। महेंद्रनाथ की असफलता उसे बाहर के पुरुषों (सिंघानिया, जगमोहन, शिवजीत) की ओर आकर्षित करती है। लेकिन नाटक के उत्तरार्द्ध में महेंद्रनाथ का मित्र जुनेजा, सावित्री के इस भटकाव को आईना दिखाते हुए बहुत सटीक बात कहता है : 'जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक साथ भर लेना चाहती थी उसमें जो था गए भी धीरे–धीरे बाहर फिसलता गया है।"[5] वास्तव में महेंद्र नाथ की जगह सावित्री के जीवन में कोई अन्य पुरुष होता तो भी वह साल–दो–साल बाद यही महसूस करती कि उसने गलत आदमी का चुनाव कर लिया है। वह अंत तक नहीं समझ सकी की एक जगह ही, एक साथ अनेक चीजों की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतिरेकतावादी पूर्णता की तलाश मिथ्या है। विवश होकर सावित्री को उसी आधे–अधूरे महेंद्र से ही जुड़ना पड़ता है।

यह असफलता ही सावित्री के स्वभाव को क्रूर और कटु बना देती है। अंत में वह जगमोहन के साथ नया जीवन शुरू करने का निश्चय करती है। लेकिन वहां भी उसे असफलता ही हाथ लगती है। जगमोहन भी उसे अब महेंद्र नाथ की तरह अपूर्ण, अधूरा व नकली लगता है। अंततः सभी पुरुषों को परखने के बाद सावित्री का भ्रम टूटता है और वह पुरुष सत्ता के खोखलेपन को इन शब्दों में उजागर करती है कि 'मैंने आपसे कहा है न, बस! सब–के–सब..... सब–के–सब! एक से! बिल्कुल एक से हैं आप लोग! अलग–अलग मुखौटे, पर

चेहरा? चेहरा सबका एक ही!'[6] इसी अभाव जनित मानसिक असंतोष के कारण वह महेंद्र नाथ से कटती चली जाती है और एक पूर्ण पुरुष की तलाश में भटकती रहती है तथा अलग–अलग अधूरे आदमियों से टकराती है। अपनी कल्पना के अनुसार गढ़ा हुआ पूर्ण पुरुष उसे इन चारों पुरुषों में से किसी में भी नहीं मिलता।

आधे अधूरे नाटक में स्त्री पुरुष के मध्य दांपत्य जीवन के खोखलेपन के साथ–साथ पारिवारिक जीवन के विघटन की झांकी देखी जा सकती है। घर का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ रहता है। उस तनाव ग्रस्त वातावरण में रहना उनके लिए मजबूरी बन गया है। सावित्री को घर में घुसने के बाद वहां के बिखराव, अव्यवस्था को देखकर अकेलापन महसूस होता है तो उसकी बड़ी बेटी बिन्नी को उस घर में कोई मनहूस चीज छुपी महसूस होती है जो उसे सहज नहीं रहने देती। घर की छोटी बेटी इधर–उधर की बातों में लीन रहती है। उस घर का बेटा अशोक तो बेगानों की तरह उस घर में रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी बेगानेपन में रहना सब की मजबूरी बन गई है। परिवार के सदस्यों के मध्य जिस प्रकार का प्रेम होता है उस प्रेम का यहां सर्वथा अभाव है।

आधे–अधूरे में सावित्री की बड़ी लड़की बिन्नी ठीक मां की प्रतिलिपि है। मां की गृहस्थी की तरह उसकी गृहस्थी भी उजड़ी हुई है। जिस प्रकार सावित्री महेंद्रनाथ से संतुष्ट नहीं है उसी प्रकार बिन्नी और मनोज जितने करीब है उतने ही अपरिचित और दूर है। बिन्नी मनोज को नीचा दिखाने व मानसिक आघात पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। जब दोनों के मध्य तनाव होता है तो बिन्नी घर छोड़कर अपनी मां के पास आ जाती है। वह अपनी मां से कहती है कि "मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूं जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वभाविक नहीं रहने देती।"[7] उन दोनों के बीच छोटी–छोटी बातें भी अचडन बनने लगती है। और मन के अंदर एक गुब्बार सा भरा रहता है। बिन्नी इसी मौके की तलाश में रहती है कि कब किस तरह वह मनोज पर अपने मन की भड़ास निकाल सके। ऐसा लगता है कि उसके मां–बाप के जीवन में जो बिखराव और कड़वाहट है वही उसके साथ भी चला गया है। उसके व्यक्तित्व में बिखराव है ऐसा लगता है कि अपने दांपत्य की दरारों को भरने के लिए बिन्नी को भी बाहर का सहारा लेना पड़ेगा और वह नए सहारे भी कहीं न कहीं अधूरे ही होंगे।

अशोक (बेटा) युवा है लेकिन उसमें कोई उत्साह या लक्ष्य नहीं है वह दिन भर पत्रिकाओं से तस्वीरें काटता रहता है। उसे पता है कि उसकी मां अन्य पुरुषों के साथ संबंध रखती है और उसका पिता एक डरपोक इंसान है। पिता के प्रति अशोक के मन में प्रच्छन्न सहानुभूति का भाव है परंतु मां के प्रति वितृष्णा और असहमति का भाव विद्यमान है। वह अक्सर अपनी मां पर व्यंग्य करता है। उसका यह भटकाव पारिवारिक दिशा–निर्देश और स्नेह के अभाव का सीधा परिणाम है। माता–पिता के खोखले संबंधों और पारिवारिक कलह ने अशोक को दिशाहीन और विद्रोही बना दिया है। अपने पिता महेंद्रनाथ की तरह अशोक भी अपने भविष्य की चिंता नहीं करता और न ही उसे सुधारने के लिए कोई प्रयत्न करता है। एक तरह से वह अपने पिता महेंद्र नाथ की ही प्रतिलिपि है। मध्यवर्गीय समाज के दोहरे चरित्र और परिवार की झूठी बुनियाद पर गहरी चोट करते हुए वह कहता है : 'नहीं बरदाश्त है, तो बुलाती क्यों ऐसे लोगों को घर पर जिनके आने से...? जिनके आने से हम जितने छोटे हैं उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।'[8] वह अपनी मां पर सीधा व्यंग्य करते हुए कहता है कि तुमने जब भी किसी को इस घर में बुलाया है तो उसका पद, पैसा और प्रतिष्ठा देखकर बुलाया है। उसका यह आक्रोश

पारिवारिक स्नेह के अभाव का सीधा परिणाम है।

सावित्री की छोटी बेटी किन्नी हर जगह अपनी उपस्थिति विद्रोह से बताती है। माता–पिता के झगड़ों के बीच वह पूरी तरह उपेक्षित है। वह अपनी उम्र से कहीं आगे की बातें सोचने और करने लगी है। यौन जिज्ञासाओं में उसकी गहरी रुचि है। किन्नी मुंहफट, जिद्दी तथा सिर चढ़ी है और साथ ही आत्म केंद्रित भी है। वह कहती है कि : 'नहीं आऊंगी। अंदर जाओ तो बाल खींचे जाते हैं। बाहर आओ तो किटपिट–किटपिट–किटपिट और खाने को कोयला अब उधर आकर इनके तमाचे और खाने हैं।'[9] घर में कोई उसकी बातें सुनने वाला नहीं है। जब वह कुछ कहना चाहती है तो उसे डांट कर चुप कर दिया जाता है। उसका विद्रोही स्वभाव और अभद्र भाषा इस बात का प्रमाण है कि जिस घर में माता–पिता के बीच सामंजस्य न हो वहां बच्चों का बचपन कैसे कुचल दिया जाता है।

नाटक के गहन विश्लेषण से पारिवारिक विखंडन के कुछ ठोस कारण उभर कर सामने आते हैं जहां हर पात्र केवल अपने बारे में सोचता है। परिवार एक इकाई के रूप में काम नहीं करता। सावित्री अपनी आकांक्षाओं में उलझी है, महेंद्र नाथ अपनी कुंठाओं में और बच्चे अपने–अपने एकाकीपन में। समर्पण और त्याग की भावना इस घर से पूरी तरह अनुपस्थित है। बदलती हुई लैंगिक भूमिकाएं भी इस नाटक में मुख्य रुप से दिखाई देती है कि जब स्त्री घर की दहलीज लांघकर अर्थोपार्जन करने लगती है, तो उसका आत्मविश्वास बढ़ता है, जो पुरुष के पारंपरिक अहंकार से टकराता है। साथ ही परिवार के सदस्यों के बीच में घटती संवादहीनता भी परिवार के सदस्यों को स्वाभाविक नहीं रहने देता। वे संवाद नहीं करते, केवल एक–दूसरे को आहत करते हैं। ये लोग एक दूसरे से बात नहीं करते बल्कि एक दूसरे पर बात करते हैं। नाटक में पूर्णता की तलाश को नकारा गया है। इसलिए जुनेजा कहता है "कि असल बात इतनी है कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है......। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता इसलिए जिस किसी के साथ भी जिंदगी शुरु करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती।"[10] सावित्री का यह सोचना कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाएगा जो सर्वगुण संपन्न हो एक छलावा है। जुनेजा उसे सच्चाई का आईना दिखाता है कि जो जिंदगी से बहुत कुछ चाहते हैं उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है अगर तुमने महेंद्र नाथ की जगह किसी और से भी शादी की होती तब भी उसकी यही स्थिति होती। असंतोष व्यक्ति के भीतर होता है परिस्थितियों में नहीं।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः, यह शोध सिद्ध करता है कि 'आधे–अधूरे' मात्र एक पारिवारिक नाटक नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य की आंतरिक रिक्तता और सामाजिक विघटन का एक समाजशास्त्रीय दस्तावेज है। मोहन राकेश का 'आधे–अधूरे' मात्र एक पारिवारिक कलह की गाथा नहीं है, बल्कि यह आधुनिक मनुष्य की विडंबनाओं, मध्यवर्गीय जीवन की विद्रूपताओं और टूटते मानवीय संबंधों का एक प्रामाणिक समाजशास्त्रीय अध्ययन है। नाटक में पारिवारिक विखंडन इस सीमा तक पहुँच चुका है कि घर एक आश्रय के बजाय एक 'नर्क' प्रतीत होता है। नाटक का केंद्रीय भाव यही है कि संपूर्णता की तलाश वाजिब नहीं है जो व्यक्ति एक साथ जीवन में सब कुछ हासिल करना चाहते हैं वह पाते हैं कि धीरे–धीरे वह अपने हाथों से उन सभी चीजों को भी खोते चले जाते हैं जो उनके पास है। सावित्री का बार–बार नए–नए पुरुषों की ओर आकर्षित होना यह दिखाता है कि वह अपने जीवन से

संतुष्ट नहीं है। वह अपने लिए एक पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही है। जो पूर्णता उसे एक समय महेंद्र नाथ में दिखाई दी थी वही सावित्री आज महेंद्र नाथ को अपने लिए एक गलत आदमी समझ रही है। आज के उपभोक्तावादी और भागदौड़ भरे युग में, जहाँ सहिष्णुता कम हो रही है और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियां हावी हो रही हैं, यह नाटक हमें इस बात पर चिंतन करने के लिए विवश करता है कि महत्वकांक्षाओं की अंधी दौड़ में कहीं हम अपने सबसे करीबी रिश्तों और परिवार रूपी वटवृक्ष को तो नहीं काट रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. राकेश, मोहन. (1969). आधे–अधूरे. राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली. पृष्ठ संख्या 12
2. वही ... पृष्ठ संख्या 12
3. वही... पृष्ठ संख्या 54
4. वही... पृष्ठ संख्या 38
5. वही... पृष्ठ संख्या 91
6. वही... पृष्ठ संख्या 93
7. वही... पृष्ठ संख्या 28
8. वही... पृष्ठ संख्या 53
9. वही... पृष्ठ संख्या 40
10. वही... पृष्ठ संख्या 90

शर्मा, डॉ. जगदेव कुमार. (2017) आधुनिक हिंदी नाटक के पुरोधा मोहन राकेश, लोक संस्कृति प्रकाशन दिल्ली।

मदन, इन्द्रनाथ. (1975) मोहन राकेश का नाटक. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

वर्मा, रामस्वरूप. (1982). हिंदी नाटक और रंगमंच. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली.

कुमार, डॉ. सुधीर. (2001). आधुनिक हिंदी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना. वाणी प्रकाशन, दिल्ली.

विभिन्न साहित्यिक शोध पत्रिकाएं एवं 'आधे–अधूरे' पर प्रकाशित आलोचनात्मक आलेख।

फोन नं. 8287894253

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 160-165

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Marxian Historiography : Historical Materialism, Class Analysis, and the Writing of History

DIVYA KOTHARI

Abstract :

Marxian historiography constitutes one of the most influential paradigms in modern historical scholarship. Emerging from the theoretical formulations of Karl Marx and Friedrich Engels, it reoriented historical inquiry away from dynastic narratives and political events toward the material conditions of social existence, modes of production, and class relations. This paper examines the epistemological foundations of Marxian historiography, its methodological contributions, major historiographical interventions, and its influence on global and Indian historical scholarship. It argues that Marxian historiography remains indispensable not because of any deterministic explanatory power but because of its capacity to uncover the structural relations of power embedded within economic and social formations. Through a critical examination of the works of Marx, Engels, E. P. Thompson, Eric Hobsbawm, Antonio Gramsci, D. D. Kosambi, R. S. Sharma, and Irfan Habib, the paper demonstrates the continuing relevance of historical materialism in contemporary historical analysis.

Introduction :

The emergence of Marxian historiography marked a fundamental rupture in nineteenth-century historical thought. Prior to Marx, historical writing was dominated by political narratives centered on rulers, states, diplomacy, and military conflicts. History was generally conceived as the record of great individuals and extraordinary events. Marx's intervention transformed this understanding by locating historical change within the material processes of production and reproduction of social life.

Marx famously asserted that "the mode of production of material life conditions the social, political and intellectual life process in general."[1] This proposition became the cornerstone of historical materialism, the methodological foundation of Marxian historiography. Historical development was no longer viewed as the product of divine will, heroic individuals, or abstract ideas; instead, it was understood as the outcome of contradictions within material social relations.

The significance of Marxian historiography extends beyond Marx's own writings. Throughout the twentieth century, historians associated with the British Marxist tradition, the French Annales School, and later postcolonial scholarship engaged with, revised, and critiqued Marxist historical methods. Consequently, Marxian historiography evolved into a sophisticated intellectual tradition rather than a rigid theoretical doctrine.

Historical Materialism as Method :

Historical materialism provides both an ontology and an epistemology of historical inquiry. At its core lies the proposition that human beings must produce the means of their existence before engaging in political, cultural, or intellectual activities.[2] Production therefore becomes the primary historical activity.

Marx conceptualized society as consisting of an economic base and a superstructure. The economic base comprises the forces and relations of production, while the superstructure includes political institutions, legal systems, ideology, religion, and culture.[3] Although critics have frequently interpreted this model as mechanically deterministic, Marx's own writings suggest a more dialectical relationship between structure and agency.

The historical process unfolds through contradictions between productive forces and relations of production. When existing social relations become obstacles to productive development, revolutionary transformations occur. The transition from feudalism to capitalism exemplifies this process.

This dialectical conception distinguished Marxian historiography from positivist historical methodologies. Rather than merely describing events, Marxist historians sought to uncover the structural mechanisms underlying historical change.

Class Struggle and Historical Change :

Perhaps the most celebrated proposition of Marxian historiography appears in the opening sentence of The Communist Manifesto: "The history of all hitherto existing society is the history of class struggles."[1]

Class struggle functions as the dynamic force driving historical transformation. Classes emerge from specific relations of production and occupy antagonistic positions within economic structures. Historical periods are therefore characterized by dominant forms of class conflict: master versus slave, lord versus serf, capitalist versus worker.

However, sophisticated Marxist historians have moved beyond simplistic binary models. E. P. Thompson's seminal work The Making of the English Working Class demonstrated that class is not merely an objective economic category but also a historical relationship shaped through lived

experience and collective consciousness.[6] Thompson's intervention challenged structuralist Marxism by restoring human agency to historical processes.

Similarly, Antonio Gramsci expanded Marxist historiography through his concept of hegemony. He argued that ruling classes maintain dominance not solely through economic control but through cultural and ideological leadership.[7] This insight significantly broadened Marxist historical inquiry into areas previously neglected by economic reductionism.

The British Marxist Historians :

The twentieth century witnessed the institutionalization of Marxian historiography through the work of British Marxist historians.

E. P. Thompson :

Thompson rejected deterministic interpretations of historical materialism. His historical method emphasized experience, culture, and agency. According to Thompson, classes are historical formations created through social interaction rather than static economic categories.[8]

Eric Hobsbawm :

Eric Hobsbawm combined Marxist theory with rigorous empirical scholarship. His analyses of capitalism, industrialization, nationalism, and revolution transformed modern historiography. His trilogy—The Age of Revolution, The Age of Capital, and The Age of Empire—demonstrated how global historical developments could be understood through the expansion of capitalist social relations.[9]

Christopher Hill :

Hill's studies of seventeenth-century England interpreted the English Revolution as a bourgeois revolution emerging from transformations within property relations and class structures.[10]

Collectively, these historians shifted historical inquiry toward labor, popular movements, and social structures.

Marxian Historiography in India :

Indian Marxist historiography emerged in response to colonial and nationalist historical traditions. Colonial historians often portrayed India as static and incapable of autonomous historical development. Marxist historians challenged these assumptions by emphasizing social formations and economic transformations.

D. D. Kosambi :

D. D. Kosambi is widely regarded as the founder of scientific Marxist historiography in India. His work integrated archaeology, numismatics, anthropology, and textual analysis within a materialist framework.[11] Kosambi argued that historical development in India could only be understood through

the study of changing productive forces and social relations.

R. S. Sharma :

R. S. Sharma's influential work on Indian feudalism applied Marxist categories to ancient and early medieval India. He argued that land grants, agrarian expansion, and decentralization reflected feudal tendencies analogous to European developments.[12]

Irfan Habib :

Habib's studies of Mughal agrarian systems emphasized surplus extraction, class relations, and economic structures. His scholarship remains a model of Marxist economic history.[13]

Bipan Chandra :

Bipan Chandra analyzed colonialism as a system of economic exploitation. He interpreted Indian nationalism as a historically progressive response to colonial capitalist domination.[14]

Critiques of Marxian Historiography :

Despite its achievements, Marxian historiography has faced substantial criticism.

The first critique concerns economic determinism. Critics argue that reducing historical causation to economic factors neglects the autonomy of culture, religion, and politics.[15]

Second, poststructuralist historians challenge the notion of grand narratives. Scholars such as Michel Foucault reject universal explanatory frameworks and emphasize fragmented regimes of knowledge and power.[16]

Third, Subaltern Studies scholars criticized orthodox Marxist historiography for privileging elite political movements over autonomous popular consciousness. Ranajit Guha argued that peasant insurgencies possessed their own political logic that could not be reduced to class categories alone.[17]
Fourth, feminist historians have highlighted Marxism's historical tendency to marginalize gender as an analytical category. Scholars such as Joan Scott demonstrated that gender relations cannot simply be subsumed within class analysis.[18]

These critiques have compelled Marxian historiography to become more flexible and interdisciplinary.

Contemporary Relevance :

The resurgence of global inequality, financial crises, labor precarity, and neoliberal restructuring has renewed scholarly interest in Marxian approaches. Contemporary historians increasingly employ Marxist concepts to study globalization, environmental history, imperialism, and capitalist accumulation.

Recent scholarship on world-systems analysis, global labor history, and environmental degradation continues to draw heavily upon Marxian categories.[19] Even scholars who reject orthodox

Marxism often employ concepts derived from historical materialism.

Consequently, Marxian historiography remains less a closed doctrine than a living tradition of critical inquiry.

Conclusion :

Marxian historiography revolutionized the study of history by shifting attention from political events to the structural dynamics of production, class relations, and social conflict. Through historical materialism, it provided a coherent framework for understanding long-term historical transformations. Although criticized for economic determinism and challenged by postmodern, feminist, and subaltern perspectives, Marxian historiography has continually adapted and expanded.

Its enduring significance lies in its ability to reveal the material foundations of power and inequality. As contemporary societies confront widening economic disparities and global capitalist transformations, Marxian historiography continues to offer indispensable tools for historical analysis.

Footnotes :

1. Karl Marx, A Contribution to the Critique of Political Economy (Moscow: Progress Publishers, 1977), 20.
2. Karl Marx and Friedrich Engels, The German Ideology (New York: International Publishers, 1970), 47.
3. Ibid., 64–66.
4. Karl Marx, Capital, Vol. 1 (London: Penguin Classics, 1976), 874–895.
5. Karl Marx and Friedrich Engels, The Communist Manifesto (London: Penguin Books, 2002), 219.
6. E. P. Thompson, The Making of the English Working Class (New York: Vintage Books, 1966), 9–12.
7. Antonio Gramsci, Selections from the Prison Notebooks (New York: International Publishers, 1971), 57.
8. Thompson, The Making of the English Working Class, 10
9. Eric Hobsbawm, The Age of Revolution: Europe 1789–1848 (London: Weidenfeld & Nicolson, 1962).
10. Christopher Hill, The World Turned Upside Down (London: Penguin, 1972).
11. D. D. Kosambi, An Introduction to the Study of Indian History (Mumbai: Popular Prakashan, 1956).
12. R. S. Sharma, Indian Feudalism (New Delhi : Macmillan, 1980).
13. Irfan Habib, The Agrarian System of Mughal India (New Delhi : Oxford University Press,

1999).
14. Bipan Chandra, India's Struggle for Independence (New Delhi : Penguin, 1988).
15. Isaiah Berlin, Karl Marx: His Life and Environment (Oxford: Oxford University Press, 1963).
16. Michel Foucault, Power/Knowledge (New York: Pantheon Books, 1980).
17. Ranajit Guha, Elementary Aspects of Peasant Insurgency in Colonial India (Delhi: Oxford University Press, 1983).
18. Joan W. Scott, "Gender: A Useful Category of Historical Analysis," American Historical Review 91, no. 5 (1986): 1053–1075.
19. Immanuel Wallerstein, The Modern World-System (New York: Academic Press, 1974).

Select Bibliography :

- Berlin, Isaiah. Karl Marx : His Life and Environment. Oxford: Oxford University Press, 1963.
- Gramsci, Antonio. Selections from the Prison Notebooks. New York: International Publishers, 1971.
- Guha, Ranajit. Elementary Aspects of Peasant Insurgency in Colonial India. Delhi: Oxford University Press, 1983.
- Habib, Irfan. The Agrarian System of Mughal India. New Delhi: Oxford University Press, 1999.
- Hobsbawm, Eric. The Age of Revolution: Europe 1789–1848. London: Weidenfeld & Nicolson, 1962.
- Kosambi, D. D. An Introduction to the Study of Indian History. Mumbai: Popular Prakashan, 1956.
- Marx, Karl. Capital. Vol. 1. London: Penguin Classics, 1976.
- Marx, Karl, and Friedrich Engels. The German Ideology. New York: International Publishers, 1970.
- Sharma, R. S. Indian Feudalism. New Delhi: Macmillan, 1980.
- Thompson, E. P. The Making of the English Working Class. New York: Vintage Books, 1966.

Name :- Divya Kothari
Father's Name :- Rajendra Kumar kothari
Mother's Name :- Saroj kothari
E- Mail ID :- divs.1kothari@gmail.com
Address :- 185, Raipur, Bhilwara, Rajasthan.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 166-173

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव– पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में

श्री जनेंद्र कुमार दीवान, संस्कृत विभाग, सहा. प्रा., शा. वि. या. ता. स्नातकोत्तर स्वशासी महा. दुर्ग, (छ.ग.)

प्रो. सीमा पाण्डेय, इतिहास विभाग, गु.घा.वि.वि., बिलासपुर (छ.ग.)

सुभाष कुमार, इतिहास विभाग, गु.घा.वि.वि., बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश :

मौर्योत्तर काल से ही दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया। प्रारंभ में भारतीय व्यापारी व्यापार के उद्देश्य से इन क्षेत्रों में गए, किंतु बाद में उन्होंने वहाँ स्थायी बस्तियाँ स्थापित कर लीं। सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु विदेशों में धर्म–प्रचारक मंडल भेजे गए, जिससे भारतीय संस्कृति का विस्तार और अधिक तीव्र गति से हुआ। बौद्ध धर्म के साथ–साथ शैव, वैष्णव तथा अन्य पौराणिक धर्मों के अनुयायी भी दक्षिण–पूर्व एशिया पहुँचे और वहाँ भारतीय धर्म एवं संस्कृति का प्रचार किया। मलाया, जावा, सुमात्रा, कंबोज तथा बर्मा जैसे क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। मलाया में गणेश, शिव, दुर्गा, विष्णु आदि की मूर्तियाँ, संस्कृत एवं तमिल अभिलेख तथा हिंदू मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जावा में चंडी कालसन, चंडी सारी, चंडी सेवु, चंडी मेंदुत, बोरोबुदूर तथा लारा जोंग्रांग जैसे मंदिर भारतीय स्थापत्य, धर्म और कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

कंबोज के अंगकोरवाट, बायोन, बंते स्रेयी तथा फ्नोम बाखेंग जैसे स्मारकों की भित्तियों पर रामायण, समुद्र–मंथन तथा अन्य भारतीय धार्मिक कथाओं का अंकन भारतीय संस्कृति की व्यापकता को प्रमाणित करता है। बर्मा में पाली भाषा, बौद्ध धर्म तथा भारतीय धर्मशास्त्रों पर आधारित सामाजिक एवं कानूनी व्यवस्था का विकास हुआ। वहाँ अनेक नगरों और प्रदेशों के नाम भी भारतीय नगरों एवं जनपदों के नाम पर रखे गए थे। इस प्रकार दक्षिण–पूर्व एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय संस्कृति, धर्म, भाषा, कला और स्थापत्य का वहाँ गहरा प्रभाव था। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने इस पूरे क्षेत्र को 'वृहत्तर भारत' की संज्ञा दी है।

कीवर्ड :– वृहत्तर भारत, दक्षिण–पूर्व एशिया, बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म, मंदिर स्थापत्य, पुरातात्विक साक्ष्य, भारतीय संस्कृति।

साहित्य समीक्षा :

दक्षिण–पूर्व एषिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव पर अनेक इतिहासकारों एवं विद्वानों ने अध्ययन किया है। सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी कृति दक्षिण–पूर्व और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति में भारतीय धर्म, भाषा, कला एवं स्थापत्य के प्रसार का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। धनपति पाण्डेय ने आधुनिक एशिया का इतिहास में मलाया, जावा, सुमात्रा, कंबोज तथा बर्मा में भारतीय प्रभाव के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का विश्लेषण किया है। उपेन्द्र सिंह तथा रामशरण शर्मा ने भारतीय सभ्यता के विस्तार और सांस्कृतिक संपर्कों पर प्रकाश डाला है। उपलब्ध साहित्य भारतीय प्रभाव की चर्चा तो करता है, किन्तु पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के स्वरूप और प्रभाव का समग्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। अतः यह अध्ययन इस रिक्तता को भरने का प्रयास करता है।

शोध समस्या :

दक्षिण–पूर्व एशिया के विभिन्न देशों में प्राप्त मंदिरों, मूर्तियों, अभिलेखों तथा अन्य पुरातात्विक अवशेषों से भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव स्पष्ट होता है, किन्तु यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि भारतीय संस्कृति का प्रसार किन माध्यमों से हुआ तथा पुरातात्विक साक्ष्य किस सीमा तक इस प्रभाव को प्रमाणित करते हैं। इसी समस्या का अध्ययन इस शोध का मूल विषय है।

अध्ययन के उद्देश्य :

- दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के प्रमुख स्वरूपों का अध्ययन करना।
- मलाया, जावा, सुमात्रा, कंबोज और बर्मा में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण करना।
- भारतीय धर्म, भाषा, कला एवं स्थापत्य के प्रसार का मूल्यांकन करना।

शोध परिकल्पना :

- दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार मुख्यतः व्यापारियों एवं धर्मप्रचारकों के माध्यम से हुआ।
- दक्षिण–पूर्व एशिया में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव की पुष्टि करते हैं।
- भारतीय धर्म, भाषा, कला एवं स्थापत्य ने दक्षिण–पूर्व एशिया की सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है।

शोध पद्धति :

यह अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। पुस्तकों, शोध–पत्रों तथा प्रकाशित स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है। प्राप्त तथ्यों का वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गए हैं।

अध्ययन का महत्व :

यह अध्ययन दक्षिण–पूर्व एशिया और भारत के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को समझने में सहायक है। साथ ही यह भारतीय संस्कृति की वैश्विक पहुँच तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान की प्रक्रिया को स्पष्ट करता

है। पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव की प्रामाणिकता को स्थापित करना इस अध्ययन का प्रमुख योगदान है।

दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव – पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में

चित्र क्र. 1 दक्षिण–पूर्व एशिया (स्रोत : विकिपीडिया)

प्राचीन भारत के मौर्योत्तर काल में दक्षिण–पूर्व एशिया भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के एक विशाल क्षेत्र के रूप में विकसित हो गया था। यद्यपि प्रारम्भ में भारतीय साहसी व्यापारी व्यापारिक लाभ की दृष्टि से इस क्षेत्र की यात्राएँ करते थे, किंतु कालांतर में अनेक भारतीयों ने वहाँ स्थायी रूप से निवास करना आरम्भ कर दिया। व्यापार के अतिरिक्त इस प्रक्रिया में एक अन्य महत्वपूर्ण कारक सम्राट अशोक का धर्म–विजय का आदर्श था। कलिंग युद्ध के पश्चात उनके हृदय–परिवर्तन ने उन्हें बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु प्रेरित किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने राज्य के संसाधनों का उपयोग करते हुए विभिन्न देशों में धर्म–प्रचारक मंडल भेजे। साथ ही, बौद्ध धर्म की तृतीय महासभा ने आचार्य उपगुप्त के नेतृत्व में विदेशों में प्रचारकों को भेजने की योजना को मूर्त रूप दिया।[1]

इन प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय सभ्यता और संस्कृति धीरे–धीरे भारत की सीमाओं को लाँघकर दूरस्थ द्वीपों एवं क्षेत्रों तक पहुँचने लगी। बौद्ध धर्म के प्रचार से प्रेरित होकर शैव, वैष्णव तथा अन्य पौराणिक धर्मों के अनुयायी भी दक्षिण–पूर्व एशिया की ओर अग्रसर हुए और वहाँ अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव का विस्तार किया। व्यापारियों के साथ–साथ धर्म प्रचारकों ने भी इन क्षेत्रों में स्थायी निवास स्थापित किए। उन्होंने मठों, आश्रमों तथा धार्मिक केंद्रों की स्थापना कर स्थानीय निवासियों को अपने धर्म और संस्कृति से परिचित कराया तथा बड़ी संख्या में उन्हें अपना अनुयायी बनाया। चूँकि इन क्षेत्रों में उस समय तक संगठित रूप में विकसित सभ्यता और संस्कृति का अभाव था, इसलिए स्थानीय समाज ने भारतीय संस्कृति को अपेक्षाकृत सहजता से आत्मसात कर लिया।

मलाया : बंगाल की खाड़ी के दक्षिण–पूर्व में स्थित मलाया, जिसे वर्तमान में मलेशिया कहा जाता है, प्राचीन काल में भारतीय सांस्कृतिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण भाग था। इसका उत्तरी भाग बर्मा (म्यांमार) और स्याम (थाईलैंड) से जुड़ा हुआ था, जबकि पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा समुद्र से घिरी हुई थी। इसी कारण इसे मलाया प्रायद्वीप कहा जाता है। प्राचीन काल में यहाँ भारतीय उपनिवेशों का अस्तित्व था, जहाँ भारतीय धर्म, दर्शन, भाषा

और संस्कृति का व्यापक प्रभाव था। इस तथ्य की पुष्टि क्षेत्र में प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों तथा प्राचीन चीनी स्रोतों से होती है। चीनी लेखकों के अनुसार मलाया में "लंग–किया–सु" नामक एक प्राचीन राज्य था, जिसकी स्थापना दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में हुई थी। यह भारतीय उपनिवेश "पूर्व का द्वार" कहलाता था।[2] मलाया में भारतीय संस्कृति के अनेक पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हुए हैं। केड्डा पर्वत क्षेत्र के सूंगई वातु नामक स्थल से एक हिन्दू मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ से गणेश, दुर्गा, शिव, नंदी तथा अन्य पौराणिक देवी–देवताओं की पत्थर निर्मित मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार मलाया के पश्चिमी तट पर स्थित तकुआ–पा से भी अनेक प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। फानोंग पर्वत क्षेत्र से विष्णु की एक प्राचीन प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसे छठी या सातवीं शताब्दी ईस्वी का माना जाता है।

खौ–फा–नरई क्षेत्र से प्राप्त मंदिर अवशेषों में पौराणिक देवी–देवताओं की प्रतिमाओं के साथ–साथ तमिल भाषा का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार तकुआ–पा और लिगोर के खंडहरों से संस्कृत अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों और पुरातात्विक साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का व्यापक प्रसार था। मलाया प्रायद्वीप के प्रमुख संस्कृत अभिलेखों में वेल्जली प्रांत से प्राप्त सात अभिलेख, उसी क्षेत्र से प्राप्त चार अन्य अभिलेख, तकुआ–पा का अभिलेख, लिगोर के पाँच अभिलेख तथा चौया के दो अभिलेख उल्लेखनीय हैं। वेल्जली प्रांत से प्राप्त संस्कृत अभिलेख बौद्ध धर्म से संबंधित हैं। वहाँ प्राप्त प्रस्तर खंडों पर स्तूप तथा सात छत्रों की आकृतियाँ भी अंकित हैं। मलाया प्रायद्वीप में प्राप्त पुरातात्विक अवशेष भारतीय उपनिवेशों की व्यापकता पर प्रकाश डालते हैं। लांजोकिए के अनुसार–"ये उपनिवेश संख्या में पर्याप्त थे और पूर्वी तट पर चुमफोन, चौया, वेण्डन नदी घाटी, नखोन श्रीधम्मराट (लिगोर), थल (पटानी के समीप) तथा सेलेंसिंग में, जबकि पश्चिमी तट पर मलक्का, वेल्जली प्रांत, तकुआ–पा, लन्या तथा तेनासेरिम नदियों के मुहानों पर स्थित थे।"

इंडोनेशिया : मलेशिया और इंडोनेशिया के सांस्कृतिक इतिहास में जावा और सुमात्रा का विशेष महत्व है। जावा में आज भी अनेक प्राचीन चैत्य एवं मंदिरों के अवशेष विद्यमान हैं। प्राचीन काल में यहाँ कई भारतीयकृत राज्य समृद्ध अवस्था में विद्यमान थे। सुमात्रा में शैलेन्द्र साम्राज्य की राजधानी श्रीविजय स्थित थी, जो बौद्ध शिक्षा और संस्कृति का एक प्रमुख केंद्र था। यद्यपि जावा, सुमात्रा तथा मलाया के अनेक बौद्ध और पौराणिक धार्मिक केंद्र कालांतर में नष्ट हो गए, तथापि उनके अवशेष आज भी भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इनमें मध्य जावा स्थित दिएंग के मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह क्षेत्र चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है तथा यहाँ प्राचीन जावा के अनेक मंदिर विद्यमान हैं। यहाँ स्थित आठ मंदिरों को सामूहिक रूप से "पाण्डव मंदिर" कहा जाता है।

जावा में प्राप्त मूर्तियों में दुर्गा, गणेश, शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य पौराणिक देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ सम्मिलित हैं। इन प्रतिमाओं के साथ उनके वाहनों का भी अंकन किया गया है। जावा के इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास के अध्ययन में चीनी साहित्य तथा संस्कृत भाषा में प्राप्त चार अभिलेखों का विशेष महत्व है। चीनी यात्री फाह्यान भारत से लौटते समय 414 ईस्वी में जावा पहुँचा था। उसके विवरण के अनुसार वह जिस जलयान से यात्रा कर रहा था, उसमें लगभग 400 भारतीय यात्री भी सवार थे। फाह्यान के विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय जावा में शैव तथा वैष्णव धर्मों का पर्याप्त प्रभाव था।[3] जावा में प्राप्त एक शैल–स्तंभ को स्थानीय

परंपरा के अनुसार वह स्थान माना जाता है जहाँ अर्जुन ने अपने हाथी को बाँधा था। दिएंग के मंदिरों की स्थापत्य शैली गुप्तकालीन भारतीय वास्तुकला से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होती है।

चंडी कालसन : शैलेन्द्र शासकों द्वारा जावा पर अधिकार स्थापित करने के पश्चात अनेक चैत्यों एवं स्तूपों का निर्माण कराया गया। इनमें चंडी कालसन को सर्वाधिक प्राचीन बौद्ध स्मारकों में गिना जाता है। 778 ईस्वी के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस चैत्य का निर्माण शैलेन्द्र नरेश द्वारा देवी तारा के सम्मान में कराया गया था। इसी अभिलेख में कालसन ग्राम को बौद्ध संघ को दान स्वरूप प्रदान किए जाने का भी उल्लेख मिलता है। जावा में 'चंडी' शब्द का प्रयोग सामान्यतः मंदिरों के लिए किया जाता था। कालसन का मंदिर एक वर्गाकार चबूतरे पर निर्मित है तथा इसका मुख्य भाग भी वर्गाकार योजना पर आधारित है। इसकी वास्तुकला भारतीय तथा स्थानीय तत्वों के सुंदर समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

चंडी सारी : चंडी कालसन से लगभग आधा मील उत्तर दिशा में चंडी सारी स्थित है। वर्तमान में इसके केवल कुछ अवशेष ही शेष हैं, क्योंकि स्थानीय निवासियों द्वारा इसके प्रस्तर खंडों और अन्य निर्माण सामग्री का उपयोग मकान निर्माण में किया जाता रहा है। यह एक द्वि–मंजिला संरचना थी, जिसमें ऊपरी भाग का उपयोग विहार के रूप में तथा निचले भाग का उपयोग मंदिर के रूप में किया जाता था। यहाँ प्राप्त बौद्ध प्रतिमाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मंदिर की दीवारों एवं कोटरों को विविध मूर्तियों से अलंकृत किया गया था। इन अवशेषों से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव था तथा यहाँ स्थापित भारतीयीकृत राज्य के निवासी बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।

चंडी सेवु : चंडी सेवु चंडी सारी के पूर्व में स्थित है। यहाँ से प्राप्त एक अभिलेख को 782 ईस्वी का माना जाता है, जिससे यह संकेत मिलता है कि इसका निर्माण शैलेन्द्र वंश के प्रारंभिक काल में हुआ था। चंडी सेवु कोई एकल मंदिर नहीं, बल्कि मंदिरों का एक विशाल समूह है। विस्तृत क्षेत्र में फैले इस परिसर में लगभग 240 मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[4] यह दक्षिण–पूर्व एशिया के सबसे बड़े बौद्ध मंदिर परिसरों में से एक माना जाता है।

चंडी मेंदुत तथा चंडी पावोन : चंडी मेंदुत तथा चंडी पावोन के अवशेष केदू के मैदान में प्राप्त होते हैं। इनका निर्माण लगभग आठवीं शताब्दी ईस्वी में हुआ माना जाता है। यहाँ प्राप्त मूर्तियों में बौद्ध एवं पौराणिक दोनों परंपराओं के प्रभाव दिखाई देते हैं। एक अष्टभुजा देवी की प्रतिमा के दोनों ओर मानव आकृतियों का अंकन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चंडी मेंदुत मंदिर में बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की भव्य प्रतिमाएँ स्थापित हैं। यहाँ धर्मचक्र –प्रवर्तन मुद्रा में लगभग दस फीट ऊँची बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई है। चंडी मेंदुत की मूर्तिकला को दक्षिण–पूर्व एशिया की उत्कृष्टतम बौद्ध कला कृतियों में स्थान दिया जाता है। इसके समीप ही चंडी पावोन स्थित है, जो आकार में अपेक्षाकृत छोटा किंतु अत्यंत आकर्षक मंदिर है। इसके आसपास भी अनेक मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

बोरोबुदूर महाचैत्य : इसी क्षेत्र में विश्वविख्यात बोरोबुदूर महाचैत्य स्थित है, जो नौ क्रमिक चबूतरों पर निर्मित एक विशाल बौद्ध स्मारक है। इसके शीर्ष पर घंटाकार स्तूप निर्मित है। इस महाचैत्य के गलियारों में हजारों उत्कीर्ण चित्र एवं शिल्पांकन विद्यमान हैं, जो बुद्ध के जीवन, जातक कथाओं तथा बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का चित्रात्मक निरूपण करते हैं। इन उत्कीर्ण चित्रों में तत्कालीन समाज के दैनिक जीवन, पशु–पक्षियों, सामाजिक गतिविधियों, नरक और स्वर्ग की अवधारणाओं तथा विविध धार्मिक कथाओं का अत्यंत जीवंत चित्रण मिलता है।

इसके अतिरिक्त ललितविस्तर ग्रंथ के आधार पर बुद्ध के जीवन–चरित्र को भी शिल्पाकृतियों में अंकित किया गया है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि बोरोबुदूर का निर्माण 750 से 850 ईस्वी के मध्य शैलेन्द्र वंश के शासनकाल में हुआ। यह आज भी विश्व का सबसे विशाल महायान बौद्ध स्मारक माना जाता है।[5]

चंडी लारा जोंग्रांग : चंडी लारा जोंग्रांग, जिसे वर्तमान में प्राम्बानन मंदिर समूह के नाम से जाना जाता है, प्राम्बानन घाटी में स्थित है। यहाँ मुख्यतः हिन्दू पौराणिक देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इस परिसर में आठ प्रमुख मंदिर तथा लगभग 156 छोटे–बड़े मंदिरों के अवशेष विद्यमान हैं। यहाँ स्थित शिव मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इसकी भित्तियों पर रामायण की कथा का विस्तृत अंकन किया गया है। इन शिल्पचित्रों में राम के लंका अभियान तक की कथा का चित्रण मिलता है, जबकि आगे की कथा ब्रह्मा मंदिर की भित्तियों पर अंकित है। यद्यपि स्थापत्य की दृष्टि से लारा जोंग्रांग का मंदिर समूह बोरोबुदूर की तुलना में कुछ कम भव्य प्रतीत होता है, तथापि रामायण कथा के अत्यंत सजीव एवं कलात्मक चित्रण के कारण इसका विशिष्ट स्थान है। रामायण के दृश्यांकन की दृष्टि से यह दक्षिण–पूर्व एशिया की सर्वश्रेष्ठ कला उपलब्धियों में से एक माना जाता है। पूर्वी जावा के मंदिरों में चंडी जगो का बौद्ध मंदिर इसका अनुपम उदाहरण है, जहाँ एक साथ बौद्ध तथा अन्य पौराणिक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक एशिया का आधुनिक इतिहास में लिखा है कि– 'इंडोनेशिया में प्राप्त शिलालेखों की भाषा विशुद्ध संस्कृत है। इनके राजा भारतीय आदर्शों के अनुसार शासन करते थे। उनके आचार–विचार, चरित्र, व्यवहार आदि सब भारतीय थे। गंगा की पवित्रता की भावना भी इनमें प्रचलित थी। शैव, वैष्णव तथा बौद्ध, तीनों भारतीय धर्म इन उपनिवेशों में प्रचलित थे। यदि बीच में समुद्र का व्यवधान न होता, तो इन्हें भारत का ही प्रदेश माना जा सकता था।' कंबोज देश के अंगकोर क्षेत्र में विद्यमान भारतीय संस्कृति के ठोस अवशेषों के अंतर्गत उदयादित्यवर्मा के 'सदोक काक थोम' अभिलेख में वर्णित शब्द– 'तब परमभट्टारक परम शिवलोक (यशोवर्मा) ने यशोधरपुर नगरी बसाई और जगत–ता–राजा (देवराज) को हरिहरालय से ले आए। फिर परमभट्टारक ने केंद्रीय शिखर (मंदिर) बनवाया और वामशिव ने उसके मध्य में पवित्र लिंग (देवराज) को प्रतिष्ठापित किया।' यशोवर्मा द्वारा बसाई गई यशोधरपुर नगरी लगभग तीन सदियों तक कंबोज देश की राजधानी रही। तत्पश्चात अंगकोर क्षेत्र में एक नई नगरी का निर्माण जयवर्मन सप्तम द्वारा कराया गया, जिसे अंगकोर थोम के नाम से जाना गया। यह यशोधरपुर के पश्चात राजधानी बनी। उपर्युक्त दोनों राजधानियों के पुरावशेष भारतीय संस्कृति, धर्म तथा स्थापत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

बर्मा : स्वर्णभूमि में बर्मा भी एक महत्वपूर्ण राज्य था। यहाँ के लोग उसी प्रकार जीवन–यापन करते थे, जैसे भारत में बौद्ध धर्मावलंबी लोग करते थे। चूँकि यह प्रदेश बौद्ध धर्म का प्रमुख केंद्र था, अतः यहाँ पाली भाषा का अध्ययन–अध्यापन व्यापक रूप से होता था। पुरातात्विक स्रोतों के अनुसार बर्मा में शैव एवं वैष्णव धर्म का भी प्रचार–प्रसार हुआ था। यहाँ मुख्यतः बौद्ध धर्म की स्थविर (थेरवाद) शाखा के विद्वानों का प्रभाव था।

1442 ईस्वी का एक अभिलेख, जो एक बर्मी शासनाधिकारी द्वारा उत्कीर्णित है, उसकी पत्नी द्वारा बौद्ध संघ को दान दिए जाने का वर्णन करता है। अभिलेख में उद्यान, कृषि–भूमि, दास आदि के अतिरिक्त अनेक ग्रंथों को भी संघ को दान दिए जाने का उल्लेख है, जिनकी संख्या 295 बताई गई है। ये ग्रंथ पाली भाषा में लिखे गए थे तथा कुछ संस्कृत में भी थे। इस समय विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि भारत में बौद्ध धर्म पतन के

कगार पर था, किंतु बर्मा में उसका विकास निरंतर जारी था। बर्मा के बौद्ध स्थविरवादी विद्वानों का लंका से घनिष्ठ संबंध था। धर्म संबंधी मामलों में लंका के विद्वानों का तथा राजनीति संबंधी मामलों में भारत का अनुसरण बर्मा द्वारा किया जाता था। बर्मा का धम्मसत्थ ग्रंथ, जो कानून एवं आचार–व्यवहार से संबंधित माना जाता है, पाली भाषा में लिखित है तथा भारतीय हिंदू धर्मशास्त्र ग्रंथों को आधार बनाकर सामाजिक कानूनों की रचना की गई है। इनका संकलन दक्षिणी बर्मा के राजा बगरू ने 13वीं सदी में धम्मसत्थ नाम से करवाया था। वहाँ चूँकि भारतीय उपनिवेश बसाए गए थे, अतः अधिकांश प्रदेशों के नाम भारतीय प्रदेशों के नाम पर रखे गए थे, जैसे– कंबोज, गांधार, अवंती, अपरांत आदि। इसी प्रकार नगरों के नाम भी वाराणसी, चंपानगर, कुसुमपुर, मिथिला, पुष्कलावती, राजगृह, संकाश्य तथा वैशाली आदि रखे गए थे। अशोक मौर्य के समय बौद्ध धर्म का चहुँमुखी विकास हुआ था। अतः अपने महान राजा की स्मृति में तथा उनके कर–कमलों से बौद्ध धर्म के प्रसार के परिणामस्वरूप उत्तरी बर्मा में इरावदी नदी के समीप 'मौर्य' नामक प्रदेश बसाया गया। यहाँ तक कि बर्मा में रह रहे भारतीय नागरिकों को अपना मूल देश इतना अधिक प्रिय था कि उन्होंने बर्मा में एक दूसरे भारत का निर्माण कर डाला। वहाँ की सभ्यता और संस्कृति तथा भारत की सभ्यता और संस्कृति में अत्यधिक समानता पाई जाने लगी।

इस प्रकार उपर्युक्त पुरातात्विक स्रोतों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि दक्षिण–पूर्व एशिया के विविध राज्यों में केवल भारतीय राजाओं के ही शिलालेख एवं अभिलेख प्राप्त नहीं हुए, बल्कि भारत के साहसी व्यापारियों द्वारा उत्कीर्ण अभिलेख भी यहाँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। यद्यपि धर्म–प्रचारार्थ इस क्षेत्र में सर्वप्रथम बौद्ध संघ द्वारा प्रयास किए गए थे, तथापि बाद के समय में उनसे प्रेरित होकर शैव एवं वैष्णव प्रचारक भी यहाँ प्रवेश करते गए और शीघ्र ही वहाँ के निवासियों को हिंदू धर्म का अनुयायी बनाने लगे। इन धर्मों के अनुयायियों द्वारा निर्मित मंदिर, मठ, चैत्य आदि आज भी अवशेषों के रूप में विद्यमान हैं और भारतीय धर्म तथा संस्कृति इन देशों के हृदय में अब भी स्थित हैं। कंबोडिया, बर्मा तथा स्याम आदि देशों के नागरिक बौद्ध धर्म का अनुसरण करते हैं तथा भारत को अपनी धर्मभूमि मानते हैं। यद्यपि मलेशिया और इंडोनेशिया की जनता आज मुस्लिम धर्मावलंबी हो चुकी है, तथापि उनकी रहन–सहन, प्रथाओं, परंपराओं, जीवन–शैली, भाषा तथा संस्कृति पर भारत की अमिट छाप आज भी विद्यमान है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की व्यापकता को देखते हुए अनेक विद्वान इन क्षेत्रों को 'वृहत्तर भारत' कहकर संबोधित करते हैं।

संदर्भ :

1. विद्यालंकार, सत्यकेतु, दक्षिण–पूर्व और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति, 1991 (5वाँ सं.), पृ. 9, श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय, डॉ. धनपति, आधुनिक एशिया का इतिहास, 2005 (तृतीय सं.), पृ. 816, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. पाण्डेय, डॉ. धनपति, आधुनिक एशिया का इतिहास, 2005 (तृतीय सं.), पृ. 828, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. विद्यालंकार, सत्यकेतु, दक्षिण–पूर्व और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति, 1991 (5वाँ सं.), श्री सरस्वती

सदन, सफदरजंग, नई दिल्ली।

5. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AC%E0%A5%8B%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%AC%E0%A5%81%E0%A4%A6%E0%A5%81%E0%A4%B0

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. विद्यालंकार, सत्यकेतु, दक्षिण—पूर्व और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति, 1991 (5वाँ सं.), श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग, नई दिल्ली।
2. जैन, माथुर, आधुनिक विश्व इतिहास (प्रबोधन से वैश्वीकरण तक), 2018 (23वाँ सं.), जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर।
3. पाण्डेय, डॉ. धनपति, आधुनिक एशिया का इतिहास, 2005 (तृतीय सं.), नरेंद्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगला रोड, दिल्ली।
4. वर्मा, दीनानाथ, एशिया का आधुनिक इतिहास, 1987, भारतीय भवन, कदमकुआँ, पटना।
5. विद्यालंकार, सत्यकेतु, सुदूरपूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास, 1999 (16वाँ सं.), श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग, नई दिल्ली।
6. झा, एस. आलोक, विश्व का इतिहास, 2018, ओक ब्रीज पब्लिशिंग प्रा. लि., गुरुग्राम, हरियाणा।
7. कुमार, रवि, इंडोनेशिया में हिन्दू पुनरुत्थान, 2018, प्रभात प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
8. चतुर्वेदी, डॉ. ए. के., भारत का इतिहास, 2022, SBPD पब्लिकेशन।
9. सिंह, उपिन्दर, प्राचीन भारत का इतिहास, 2016, पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा. लि., चेन्नई, तमिलनाडु, भारत।
10. शर्मा, रामशरण, भारत का प्राचीन इतिहास, 2018, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, इंडिया।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 174-180

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किसान अस्मिता और समकालीन हिंदी गजल

राजश्री सिंह, शोधार्थी,
डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

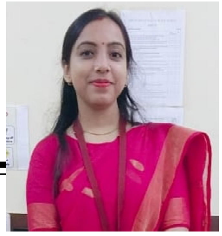

शोध सार :

प्रस्तुत शोध आलेख में समकालीन हिंदी गजल के माध्यम से कृषि संस्कृति के ह्रास और कृषक जीवन की विकट चुनौतियों का अत्यंत मार्मिक व संवेदनशील विश्लेषण किया गया है। मशीनीकरण, आधुनिकीकरण और एकल परिवारों के चलन ने संयुक्त परिवार पर टिकी परंपरागत आत्मनिर्भर कृषि व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया है, जिससे ग्रामीण संस्कृति संकट में आ गई है। खेतों की बढ़ती लागत, कर्ज का दुष्चक्र, प्राकृतिक आपदाएं (बाढ़, सूखा) और बाजारवाद की मार के कारण देश का अन्नदाता लगातार हाशिए पर जा रहा है तथा वह आत्महत्या की ओर कदम बढ़ाने को विवश है। ज्ञानप्रकाश पांडेय, वशिष्ठ अनूप और रामकुमार कृषक जैसे प्रमुख गजलकारों ने अपनी रचनाओं में किसान की इस मरणांतक व्यथा, खोते स्वाभिमान और दोहरी पीड़ा को पुरजोर आवाज दी है। समकालीन हिंदी गजल शहरी वर्ग की संवेदनहीनता को झकझोरते हुए किसान को याचक या भीखमंगा समझने के बजाय उसकी गरिमा, मेहनत और पसीने की वाजिब कीमत देने की वकालत करती है। यह विधा नवीन बाजार–व्यवस्था के खतरों के प्रति सचेत करते हुए कृषि संस्कृति और किसान की अस्मिता को अक्षुण्ण रखने का एक वैचारिक आह्वान है।

बीज शब्द :

समकालीन हिंदी गजल, किसान अस्मिता, कृषि संस्कृति, मशीनीकरण, बाजार–व्यवस्था, कर्ज और आत्महत्या, ग्रामीण संवेदना, अन्नदाता की गरिमा।

भारत किसानों का देश माना जाता है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या खेती पर निर्भर है। वैसे भी खेती या किसानी ही मानव समाज और सभ्यता का भरण–पोषण करती है। भले आधुनिक समाज हद से अधिक मशीनीकरण का आदि हो चुका है, मगर उसके पास न अन्न का कोई विकल्प है और न किसानी का। किसानी (कृषि) मानव समाज और सभ्यता की रीढ़ है। जब रीढ़ मजबूत होगी तो समाज भी मजबूत होगा। जब यह रीढ़ कमजोर हो जाएगा तो निश्चित तौर पर मानव समाज भी कमजोर होगा। लेकिन दुर्भाग्यवश साल–दर–साल किसान कमजोर होते गया है। पिछले कुछ दशक से किसान आत्महत्याएँ बढ़ी है और साल–दर–साल बढ़ती ही जा रही है। किसान और किसानी जर्जर अवस्था को प्राप्त होते जा रही है। ऐसी दशा में समसामयिक हिन्दी गजल किसान की आवाज बनकर उभरी है। इसमें किसान के दुःख–दर्द, और शोषण को मुखरित किया गया

है। किसान चेतना को जागृत करने में समसामयिक हिंदी गजल का विशेष योगदान है।

किसान को धरतीपुत्र कहा जाता है। इसलिए धरती से उसका विशेष लगाव है। अपनी जमीन का मोह वह मरते दम तक नहीं छोड़ता। प्रेमचंद के 'गोदान' के प्रमुख चरित्र होरी के माध्यम से इस बात को भली–भाँति समझा जा सकता है। इसी लगाव से कृषक संस्कृति और कृषक चेतना का विकास होता है। कृषि कृषक की जिंदगी की तरह होती है। उससे विलग वह जीवन की कल्पना नहीं करता।

21वीं सदी मशीनीकरण के चरम की सदी है। इसने किसान जीवन एवं कृषि संस्कृति के समक्ष कई चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। इन चुनौतियों का सामना करने में किसान अकेला पड़ते जा रहा है। आज उसकी कृषि खतरे में है, उसका जीवन खतरे में है। ऐसी दशा में समकालीन हिन्दी गजल उसके इस एकाकी संघर्ष में उसके साथ खड़ी दिखाई पड़ती है।

मशीनीकरण की संस्कृति ने कृषि संस्कृति को चौपट कर दिया है। इस दौर में ग्रामीण संस्कृति के विनाश की कीमत पर शहरी संस्कृति का विकास किया जा रहा है। मशीनीकरण का संबंध जहाँ शहरी संस्कृति से है, वहीं ग्रामीण संस्कृति का संबंध किसानी से है। ग्रामीण संस्कृति के नष्ट होने का मतलब है कृषि संस्कृति का भी नष्ट हो जाना। दोनों एक–दूसरे से इस प्रकार जुड़ी हैं कि एक खत्म होगी तो दूसरी भी खुद–ब–खुद खत्म हो जाएगी। अतः कृषि संस्कृति को बचाने का अर्थ है एक ही साथ दो–दो संस्कृतियों को बचाना। मगर दुर्भाग्य हम इसे बचाने में दिन–पर–दिन नाकामयाब होते जा रहे हैं। किसान लगातार आत्महत्या की ओर कदम बढ़ाने को मजबूर होते जा रहे हैं –

'जोत के खेत ये दहकान जो घर जाते हैं.
अपने हालात की तस्वीर से डर जाते हैं
पगहा बरते हुए जोखू ने क्या सोचा होगा
लोग पगहे से लटककर भी तो मर जाते हैं।'[1] – ज्ञानप्रकाश पांडे

ऐसी अवस्था में भी लोग जब रोटी की कीमत नहीं समझते तब सचमुच कहना पड़ता है कि मशीनी युग में मनुष्य भी एक मशीन बन गया है। खेतों की लागत पैदावार से नहीं निकलती। लागत के पैसे किसान कहाँ से लाए? यदि नौकरी या मजदूरी करे तो किसानी छूटे और किसानी करे तो नौकरी। किसान को नौकरी क्या खाक मिलेगी जब अच्छों–अच्छों पढ़े–लिखों को नौकरी नहीं मिलती! ऐसे में किसान क्या करे? कब तक कर्ज लेकर खेती करे? पहले संयुक्त परिवार होता था। कुछ भाई नौकरी करते तो कुछ भाई किसानी और कृषक संस्कृति फलती–लहलहाती रहती। मगर आधुनिकीरण की पश्चिमी नकल की शिकार होकर संयुक्त परिवार बिखरते चले गए और साथ ही साथ किसानी भी बिखरती चली गई। किसानी संयुक्त परिवार की चीज है। जब परिवार एकल होते जाएगा कृषि भी टूटती चली जाएगी। ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता में एकल संस्कृति की धुन जबसे लगी है कृषि चौपट हो गई है। इस ओर अभी विश्लेषकों का ध्यान नहीं गया है। किसान की भूख, उसकी जहालत, उसकी दुर्दशा तक ही विश्लेषकों और काव्यकारों की दृष्टि अटक कर रह गई है।

'अन्नदाता चला गया ऊपर
सबकी थाली में लो सजी रोटी
तेज बारिश में बुझ गया चूल्हा

अब तवे पर है अधपकी रोटी।'[2] – डॉ. भावना

किसान जीवन और कृषि संस्कृति के समक्ष कई समस्याएं एवं कई चुनौतियाँ हैं। कृषि लागत का उसके पास कोई स्रोत नहीं है तो संयुक्त परिवार बिखरने से कृषि के लिए आवश्यक आदमी नहीं है उनके पास। खेती एक आदमी के वश की बात नहीं। अब हल–बैल वाली खेती भी नहीं रही। अब मशीनों से खेती होने लगी है। ऐसे में अब कृषि बहुत महंगी हो गई है। अब वह आम आदमी के वश की बात नहीं। अब आम लोग जो अपनी खेती–बारी छोड़ने की स्थिति में नहीं हैं, वे पीसने लगे हैं। खेती वे छोड़ नहीं सकते और यदि करें तो यह उन्हें दिन–पर–दिन कर्जदार बनाती जाती है। वे खेती छोड़ भी दें तो क्या करें! 'यह क्या करें' का सवाल उनकी जिंदगी का एक बड़ा सवाल है। इसका हल उनके पास नहीं है। कर्ज, तबाही, बेबशी में उसका जीवन दिन–पर–दिन असहाय बनता जा रहा है –

'हमारे गाँव में चलकर कभी देखें नजारा यह,
मगर के साथ कैसे आदमी पानी में रहता है।
गरीबों के लिए इज्जत बचाना है बहुत मुश्किल,
अभी भी गाँव में होरी परेशानी में रहता है।'[3] – वशिष्ठ अनूप

ऐसी अवस्था में सवाल उठता है कि किसान खेतों में क्या उगा पाएगा, कितना उगा पाएगा? किसान खेत को अपने खून से सींचकर देश का पेट पालता है, मगर उसकी थाली से निवाले गायब हैं। सालभर के दाने वह मुश्किल से जुगाड़ पाता है। ऐसे में फिर सवाल खड़ा होता है कि उसकी गृहस्थी कैसे चले, उसका संसार कैसे चले? दूसरे की गृहस्थी को रोटी–दाल देने वाले अन्नदाता के समक्ष यह समस्या मुँह बाए खड़ी रहती है कि उसकी गृहस्थी का नून–तेल कहाँ से आए। वह रोजमर्रा की जिंदगी से रोज सौ–सौ लड़ाइयां लड़ रहा है। खेती के मोर्चे पर बाढ़, सूखा, ओला–पाला तो झेल ही रहा है अपनी गृहस्थी में भी धूप, ओला–पाला झेलने को विवश है। किसान की इस व्यथा–कथा को समसामयिक हिंदी गजल न केवल समझती है, बल्कि बखूबी बयाँ भी करती है –

'चिंता गरीबी की ही है भाषण में सभी के,
लगता है सारे उसकी गरीबी से जुड़े हैं।
सूखा हो चाहे बाढ़ हो, ओला हो कि पाला,
ये सब किसान की ही तबाही से जुड़े हैं।
इंसान चाहता है कि पहले वो करे हल,
उन मसलों को जो उसकी गृहस्थी से जुड़े हैं।"[4] – ओमप्रकाश यति

रोजमर्रा की जिन्दगी से सौ–सौ लड़ाई लड़ने वाला कृषक खेतों में उगाए क्या और अपने घर लाए क्या! जिन खेतों में उसकी किसानी खिलखिलाती थी, अब उन्हीं खेतों में घनघोर चुप्पी पसरी है। घर में चूल्हा सिसक रहा है और बाहर में खेत सिसक रहे हैं। अब खेती किसान का इम्तिहान लेनी लगी है। वह खेती–बारी करके न ठीक से बाल–बच्चों को पढ़ा–लिखा पा रहा है और न उनका शादी–विवाह कर पा रहा है। वह अपनी बेबशी, अपनी लाचारी किससे कहे, कौन सुनेगा। संविधान के रखवालों की कानों पर तो जूँ भी नहीं रेंगता! –

'अब न गेहूँ न धान खेतों में

बो रहा क्या किसान खेतों में
सर्द चूल्हे सिसक रहे हर सूं
जल रहा संविधान खेतों में
कल तलक खिलखिला के हँसते थे
अब न लेकिन जुबान खेतों में
ब्याह बिटिया का क्या करे 'हरखू'
बस उगा है लगान खेतों में
तरबतर कौन यूँ पसीने से
दे रहा इम्तिहान खेतों में।'[5] – ज्ञानप्रकाश पाण्डेय

किसान और किसानी के इन दुखड़ों को सुनकर किसका कलेजा न फट जाए! समकालीन हिन्दी गजल ने किसान के इन दुःखों को मार्मिक आवाज दी है –

'एक छोटी–सी जान के टुकड़े,
हूँ–ब–हूँ आसमान के टुकड़े
फट पड़ेगी जमीं कलेजे की
आप सुनिए किसान के दुखड़े।'[6] – के०पी० अनमोल

किसान किन हालातों में जिंदा है ये वे नहीं सोचते जो खाना प्लास्टिकों में भर–भर कर कचरे की ढ़ेर पर फेंकते हैं। फेंकने वाले इन शहरियों के घर अनाज उन्हीं किसानों के घर से आते हैं जिनके दयनीय हालात का वर्णन ऊपर में हुआ है। शहरी संवेदना अन्न से नहीं जुड़ पा रही है, क्योंकि वह अन्न उत्पादन के कष्ट को नहीं देखी है। किसानी की तपिस को जिसने नहीं देखा, चिलचिलाती धूप में जिसने खेतों में पसीने नहीं बहाए उन्हें अन्न बर्बाद करने में पीड़ा नहीं होगी। खेत से रोटी बनने तक की प्रक्रिया किसान के मेहनत की कहानी है। फिर भी शहर के बंद फ्लैटों में सोंधी रोटी की खुशबू लेने वालों के कानों पर किसानों और किसानी की दयनीय, जर्जर और मरांतक खबरों को सुनकर जूं तक नहीं रेंगती। ऐसे में इक्कीसवीं सदी की हिन्दी गजल संवेदना की आवाज बनकर उभरती है और उनके सत्य को सबके समक्ष उजागर करती है –

'मिली है रोज सजा मुझको सत्य कहने की,
मगर मैं खुश हूँ मेरा स्वाभिमान जिंदा है।
तुम्हें अनाज शहर में तो मिल रहा है रोज,
पता है गाँव में कैसे किसान जिंदा है।'[7] – हरेराम समीप
'वही रोटियों का मरम जानता है
जिसे दाना–दाना जुटाना पड़ा है।'[8] – वशिष्ठ अनूप

किसान एक तरफ जिंदा रहने की जद्दोजहद में है तो दूसरी तरफ अपनी खेती बचाने की कशमकश में है। एक तरफ लागत के स्रोत की तलाश करता है तो दूसरी तरफ लागत निकाल पाने की चिंता। मुसीबतें इतनी ही नहीं है, बल्कि इसी में बाढ़, सूखा और ओला–पाला भी झेलना है उसे। वह रोज मरता है और रोज जिंदा होता है। उसकी जीवन कर्ज और लगान के हवाले है तो फसल और खेती कुदरत के हवाले। किसान क्या करे

और क्या न करे –

'कर्ज पीकर फसल न घर आई,
अब दलालों का भाव क्या देखूँ।'[9] – अनिरुद्ध सिन्हा
'पड़ता है कभी सूखा तो बाढ़ कभी आती
यह खेत किसानों को कुदरत के हवाले है।'[10] – ओमप्रकाश यति

किसान सिर्फ इतना चाहता है कि उसकी खेती बची रहे। इसके लिए जरूरी है कि खेती से उसकी गृहस्थी चल जाए, उसके बाल–बच्चों का भरण–पोषण हो जाए। अपना खून–पसीना खेत में बहाता है, सालों भर उसी में अपना जीवन खपाता है तो इतनी उम्मीदें तो उसकी इससे होनी ही चाहिए। इतनी मेहनत करके उसे यह क्यों कोई जताए कि उसकी पैदावार की लागत या एमएसपी देकर उसे कोई खैरात दे रहा है? उसे तो बस अपनी मेहनत और पसीने की कीमत चाहिए –

'हम पसीने के दम पर उगाते खुशी
भीख में कोई दौलत नहीं चाहिए।'[11] – वशिष्ठ अनूप
'खून और पसीने से सींचते हैं फसलों को
तब कहीं किसानों के खेत लहलहाते हैं।'[12] – वशिष्ठ अनूप

देश का किसान आज फटेहाल है। दूसरों की थाली तक निवाला पहुंचाने वाले किसान की थाली से निवाला गायब होते जा रहा है। अन्नदाता की गुजारिश है कि उसे कुछ देते समय भीखमंगा न समझा जाए। देश का पेट–पालक पालक होता है। वह देश का भरण–पोषण करने के लिए रात–दिन जीतोड़ मेहनत करता है। इसलिए देश के प्रति जब उसका यह सेवाभाव है तो देश भी जब उसे सब्सिडी या लागत दे तो सेवा भाव से ही दे। उसकी मेहनत और गरिमा का सम्मान करे।

किसान कई सौ बरसों से देश की सेवा कर रहा है। इस युग में वह खस्ताहाल हो गया है। उसके इन मुश्किलातों के युग में अब देश का फर्ज है कि उसकी सेवा करे। विशेषकर शहरी वर्ग को आगे आना चाहिए और किसान और किसानी को फिर से देश की शान बनाने के लिए सहयोग करना चाहिए। कुछ युक्ति निकालनी चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता उसका हर दिन नई–नई मुसीबतों के साथ ही बितता रहेगा :–

'मुश्किलों पर मुश्किलें लाता है दिन,
खोलकर कुछ और कस जाता है दिन।
जोत कर हर हाल ऊसर में हमें,
दूसरों की फसल बन जाता है दिन।
सोचता है आज उबरेगा मगर
आज के संग खुद डूब जाता है दिन।'[13] – रामकुमार कृषक

खेती के साथ किसान की मान–प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है। गोदान का होरी इसी प्रतिष्ठा को बचाने की जद्दोजहद में अपनी जान गवाँ बैठता है। खेती–गृहस्थी को किसान पुरखों की पगड़ी की तरह सम्भाल कर रखना चाहते हैं। मगर आज के इन हालातों में उन्हें दोनों गंवानी पड़ रही है। उनकी इस गहरी पीड़ा को सिर्फ वहीं समझ सकते हैं जो खेती–गृहस्थी से पुश्तैनी रूप से जुड़े हुए हैं–

'उड़ी पुरखों की वो पगड़ी हवा में खानदानी भी,
था खाली पेट पहले ही गई खेती किसानी भी।'[14] – विनय मिश्र

खेती–बारी की पुरानी व्यवस्था में एक सुख था, एक शान थी। नई व्यवस्था ने इस सुख और शान दोनों को खत्म कर दिया। पुरानी व्यवस्था स्वनिर्भर व्यवस्था थी। मवेशियों के गोबर और फसलों की राख ही ऊर्वरक का काम करते थे। पैदावर से ही किसान बीज बचा कर रख लेते थे। नई व्यवस्था ने इस पुरानी व्यवस्था को ध्वस्त किया मगर इतनी आसान व्यवस्था किसान को मुहैया नहीं करवा सकी। नई व्यवस्था में किसान और किसानी बाजार–व्यवस्था के हवाले है। फलस्वरूप किसान कर्ज लेने को मजबूर है, अपनी उपज को कम दाम पर बेचने को मजबूर हुआ है। एक लम्बी प्रक्रिया से गुजर कर अब वह आत्महत्या को मजबूर होने लगा है। सामंती व्यवस्था में होरी की गर्दन सामंत के हाथों में थी, इस नयी व्यवस्था में बाजार के हाथों में है। वह तब मरने को विवश था, अब आत्महत्या करने को –

'नहीं करते थे खेतिहर आत्महत्या,
उपज बेशक थी कम सौ साल पहले।'[15] – देवेन्द्र आर्य

और

'बीज बोए थे खुशी के खुदकुशी बोई न थी,
चार कंधों पर फसल ऐसी कभी ढोई न थी।'[16] – रामकुमार कृषक

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि समसामयिक दौर में किसानी अब निरंतर घाटे का सौदा बनती जा रही है। यह नवीन व्यवस्था अपनी विसंगतियों के चलते किसानों को अपनी मौत मर जाने को विवश कर रही है। आज हमारे सामने यह यक्ष प्रश्न खड़ा है कि क्या अब हमारी सदियों पुरानी पुश्तैनी किसानी भी पूरी तरह बाजार के हवाले हो जाएगी? क्या अब मल्टीनेशनल कम्पनियां हमारी उपजाऊ खेतियों को लीज पर लेकर देश के स्वाभिमानी किसानों को अपने ही खेतों में बंधुआ मजदूर बना देंगी? वर्तमान समय की बदलती परिस्थितियां और नीतियां दुर्भाग्यवश उसी तरफ इशारा कर रही हैं।

ऐसे संक्रमण काल में, समकालीन हिंदी गजल ने केवल किसान के इस मरणांतक यथार्थ, कर्ज और बेबसी का रोना नहीं रोया है, बल्कि उसने बाजारवाद और शहरी संवेदनहीनता के खिलाफ प्रतिरोध की एक नई जमीन तैयार की है। यह विधा किसान की अस्मिता और पुरखों की खानदानी पगड़ी को महफूज रखने का एक पुरजोर वैचारिक आह्वान है। जब तक हम अन्नदाता के श्रम की गरिमा को पहचानकर समता–मूलक मूल्य स्थापित नहीं करेंगे, तब तक एक आधुनिक और प्रगतिशील समाज का निर्माण असंभव है। इसी जन–चेतना को जगाने और कृषि संस्कृति की रक्षा करने में समसामयिक हिंदी गजल अपनी अर्थवत्ता और प्रासंगिकता को अक्षुण्ण बनाए हुए है।

संदर्भ :

1. शुक्ल, डॉ. विनय कुमार (संपा.), 'गजल त्रयोदश', खंड–1, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2021, पृष्ठ–131
2. शुक्ल, डॉ. विनय कुमार (संपा.), 'गजल त्रयोदश', खंड–1, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण :

2021, पृष्ठ–67

3. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–208
4. शुक्ल, डॉ. विनय कुमार (संपा.), 'गजल त्रयोदश', खंड–3, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2021, पृष्ठ–70
5. शुक्ल, डॉ. विनय कुमार (संपा.), 'गजल त्रयोदश', खंड–1, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2021, पृष्ठ–132
6. शुक्ल, डॉ. विनय कुमार (संपा.), 'गजल त्रयोदश', खंड–1, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2021, पृष्ठ–123
7. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–108
8. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–189
9. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–135
10. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–172
11. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–189
12. भावना, डॉ., 'बदलते परिवेश में हिंदी गजल', श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृष्ठ–189
13. कृषक, रामकुमार, 'नीम की पतियाँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 1984, पृष्ठ–67
14. मिश्र, विनय, 'सच और है', मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ–20
15. आर्य, देवेंद्र, 'मोती मानुष चून', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ–27
16. कृषक, रामकुमार, 'अपजस अपने नाम', परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ–110

ईमेल – rajshreesingh26@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 181-186
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य और वर्तमान चुनौतियाँ

नीरज कुमार चौधरी, शोधार्थी,
डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

शोध सार :

हिंदी कथा–साहित्य में विनोद कुमार शुक्ल का लेखन एक ऐसे सृजनात्मक हस्तक्षेप के रूप में उपस्थित है, जो तकनीक, उपभोक्तावाद और तीव्र प्रतिस्पर्धा के इस दौर में लुप्त होती मानवीय संवेदनाओं को पुनर्जीवित करता है। वर्तमान समय की अमानवीयता और बाजारीकरण की चुनौतियों के बीच उनका साहित्य किसी वैचारिक घोषणापत्र के बजाय जीवन की कोमल और सूक्ष्म सच्चाइयों से निर्मित होता है। आलोचकों द्वारा 'जादुई यथार्थवाद' कहे जाने वाले उनके शिल्प के भीतर दरअसल साधारण जीवन का असाधारण सौंदर्य और एक 'कोमल यथार्थ' छिपा है, जो पाठक को रूखे यथार्थ से दूर नहीं ले जाता, बल्कि उसे और अधिक मानवीय बनाने की प्रेरणा देता है। 'खिलेगा तो देखेंगे' और 'हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़' जैसी कृतियों के माध्यम से वे आधुनिक सभ्यता के अकेलेपन, प्रकृति से टूटते जुड़वा और आज की यांत्रिक व उद्योग बन चुकी शिक्षा व्यवस्था पर गंभीर सवाल खड़े करते हैं। मामूली से मामूली आदमी को साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित करने वाला उनका यह कथा–संसार मनुष्य की गरिमा, मासूमियत और आंतरिक शांति की पुनर्खोज का एक अनूठा प्रयास है। जब सूचनाओं के शोर में हम जीवन–बोध से रिक्त होते जा रहे हैं, तब विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य हमारे समय की अमानवीयता के विरुद्ध भीतरी मनुष्यता को बचाए रखने का एक सशक्त नैतिक व वैचारिक विकल्प प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द :

विनोद कुमार शुक्ल, कथा–साहित्य, वर्तमान चुनौतियाँ, उपभोक्तावाद, कोमल यथार्थ, प्रकृति–सापेक्ष जीवन, मानवीय संवेदना, भीतरी मनुष्यता।

हिंदी कथा–साहित्य में विनोद कुमार शुक्ल का स्थान एक ऐसे रचनाकार के रूप में सुरक्षित है, जिन्होंने कथा को न तो मात्र सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज बनने दिया और न ही कल्पना के अतिलौकिक लोक में भटका दिया। उनका लेखन जीवन की उस सूक्ष्म, कोमल और संवेदनशील परत को उद्घाटित करता है, जिसे आधुनिक सभ्यता ने लगभग ढँक दिया है। विनोद कुमार शुक्ल का साहित्य हमें यह अनुभव कराता है कि यथार्थ

केवल वही नहीं है जो दिखाई देता है, बल्कि वह भी यथार्थ है जिसे हम महसूस तो करते हैं, पर शब्दों में पकड़ नहीं पाते।

वर्तमान समय में जब मनुष्य तकनीक, उपभोक्तावाद और प्रतिस्पर्धा के दबाव में लगातार असंवेदनशील होता जा रहा है, तब विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य एक मानवीय हस्तक्षेप के रूप में सामने आता है। उनके प्रायः सभी उपन्यास उनकी इसी वैकल्पिक जीवन–दृष्टि का प्रतिनिधि पाठ है, जो आज की सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक चुनौतियों पर गहराई से विचार करने के लिए विवश करता है। आनंद हर्षुल का यह कथन विनोद कुमार शुक्ल के इसी जीवन दृष्टि को रेखांकित करता है – ''अपने समय में, एक संवेदनशील रचनाकार की उपस्थिति, अपने समय को जानने–समझने और अपने समय में हस्तक्षेप के सतत प्रयत्न की उपस्थिति रहती है। यह उपस्थिति जाने–समझे गए अपने समय को, रचना में रूपांतरित करने की उपस्थिति भी उसकी ही उपस्थिति है, जहाँ से वह अपने समय में हस्तक्षेप करता है... यहाँ एक सधी दृष्टि की जरूरत है... यह दृष्टि जैसे सब कुछ समेट लेने की दृष्टि है। यह दृष्टि देखे गए यथार्थ के कलात्मक और वैचारिक रूपांतरण की भी दृष्टि है। यह दृष्टि देखे जाने की जो अप्रतिमता है उसकी भी दृष्टि है। यह अपने होने के बाद भी, स्मृतियों में बचे रहने की दृष्टि है। यह वही दृष्टि है जो अपने समय के भीतर ही, उस रचनाकार की उपस्थिति को विशिष्ट बना देती है। जाहिर है अगर किसी रचनाकार के भीतर यह दृष्टि नहीं है तो उसके पास, उसके अपने समय में उसकी उपस्थिति, उस पानी के चहबच्चे की तरह है, जिसे समय का ताप, भाप में परिवर्तित कर गायब कर देने वाला है।''[1]

आलोचना के क्षेत्र में प्रायः विनोद कुमार शुक्ल को 'जादुई यथार्थवाद' से जोड़ दिया जाता है, किंतु यह पद उनके साहित्य की संपूर्ण प्रकृति को स्पष्ट नहीं करता। जैसा कि अरुण कमल 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास के बारे में कहते हैं – ''विनोद जी का यह उपन्यास अनेक पुष्पों को निचोड़कर निर्मित की गई इत्र की एक बूंद की तरह है। यहां यथार्थ का निचोड़ है जो फैंटेसी में प्रकट होता है। यह जादुई यथार्थवाद नहीं है।''[2] अरुण कमल का यह कथन उनके अन्य उपन्यासों पर भी लागू होता है। शुक्ल के यहाँ जादू किसी चमत्कारिक घटना या असंभव कल्पना से नहीं उपजता, बल्कि साधारण जीवन के असाधारण प्रस्तुतीकरण से उत्पन्न होता है। वे पाठक को ऐसे यथार्थ से परिचित कराते हैं, जिसे हम रोज जीते हैं, पर देखने की आदत खो चुके हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए पाठक को यह अनुभव होता है कि यह संसार कल्पना नहीं, बल्कि वही संसार है, जैसा होना चाहिए था।

मानव समाज का विकास ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्रारंभिक समाज प्रकृति के अधिक समीप था–उसका जीवन सहज, सामूहिक और रागात्मक था। समय के साथ मनुष्य का बौद्धिक विकास हुआ और उसने अपने जीवन को अधिक 'सुव्यवस्थित' करने के लिए जटिल सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया। किंतु यह बौद्धिकता धीरे–धीरे संवेदनहीनता में बदलती चली गई। मनुष्य के जीवन में इस संवेदनहीनता ने पहाड़ जैसा अकेलापन खड़ा किया है जिसे संकेत रूप में दिखाते हुए विनोद कुमार शुक्ल 'खिलेगा तो देखेंगे' में एक जगह लिखते हैं – ''आगे साल का जंगल था। पहाड़ी मिलकर एक होती तो भी अकेलापन एक समय से इतना था कि अभी तक काटने पर उतना ही रहता।''[3] साल के जंगल की तरह आज के समय में घनी आबादी में भी मनुष्य पहाड़ की तरह अकेलापन काटने को विवश है और गुरु जी खो गयी पुरानी हरी–भरी सभ्यता को अपनी खोई

हुई दृष्टि से ढूंढने का प्रयास करते हैं – ''गुरु जी खोयी हुई दृष्टि से संसार ढूंढते थे। कुछ देख रहे होते हैं और संसार को ढूंढ रहे होते हैं।''[4] विनोद कुमार शुक्ल की रचनाएँ इसी बिंदु पर आधुनिक समाज की आलोचना करती हैं। वे संकेत करते हैं कि अत्यधिक बौद्धिक और तकनीकी समाज मनुष्य को सरल जीवन से दूर ले आया है। परिणामस्वरूप जीवन में आनंद, करुणा और आत्मीयता का ह्रास हुआ है। शुक्ल का कथा–संसार इस खोई हुई मानवीयता की पुनर्खोज का साहित्यिक प्रयास है। और जैसे उस दृष्टि को, उस संवेदनशीलता को पाते हुए कह उठते हैं – ''कहीं महुवा, नीम, आम, पलाश, सागौन के हरे–भरे पेड़ थे...पृथ्वी में जो कुछ जीव–जगत, पत्थर, नदी, पहाड़, समुद्र, जंगल, वनस्पति, मनुष्य इत्यादि हैं। ये सब पृथ्वी की सोच की तरह थे। मन की बात की तरह। मनुष्य की सोच में पता नहीं कैसे ब्रह्मांड आ गया था।''[5]

मनुष्य के जीवन से आज सबसे अधिक प्रकृति गायब है। मनुष्य के जीवन से प्रकृति का संग–साथ गायब होने के कारण वर्तमान समय अधिक संकटग्रस्त हुआ है और वर्तमान समय का जीवन कई मोर्चों पर कई तरह की चुनैतियों से रूबरू हुआ है। 'हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़' कृति में 'हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी' केवल आवास का बिंब नहीं है, बल्कि प्रकृति–सापेक्ष जीवन का प्रतीक है। झोपड़ी के पीछे से निकलता चाँद, ओस में नहाकर आती सुबह की रोशनी और परिवेश की शांतिकृये सभी बिंब उस संसार की ओर संकेत करते हैं, जहाँ मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य है। इसके विपरीत आधुनिक जीवन में ऊँची इमारतें हैं, तीखी धूप है और कृत्रिम रोशनियाँ हैं। चाँद और सूरज अब प्राकृतिक अनुभव नहीं, बल्कि दृश्यात्मक वस्तुएँ भर रह गए हैं। शुक्ल इस विरोधाभास के माध्यम से पाठक को यह सोचने पर विवश करते हैं कि विकास के नाम पर हमने वास्तव में क्या अर्जित किया और क्या खो दिया।

इस कृति में चित्रित स्कूल और शिक्षक वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के लिए एक गहन प्रश्न उपस्थित करते हैं। बोलू का स्कूल किसी आदर्शवादी स्वप्नलोक की रचना नहीं, बल्कि शिक्षा के मानवीय स्वरूप का पुनर्स्मरण है। यहाँ शिक्षा भय, प्रतियोगिता और अंक–केन्द्रित नहीं है, बल्कि जिज्ञासा, संवाद और आत्मीयता पर आधारित है। आज के समय में जब शिक्षा एक उद्योग बन चुकी है और शिक्षक 'प्रोफेशनल स्किल' का प्रतीक मात्र रह गए हैं, तब शुक्ल का स्कूल यह प्रश्न उठाता है कि क्या हम ऐसे विद्यालयों की कल्पना नहीं कर सकते, जहाँ बच्चों का मानसिक और भावनात्मक विकास प्राथमिक हो। यह कृति बताती है कि ऐसी शिक्षा असंभव नहीं, बल्कि हमारी मानसिक जड़ता ही उसे अव्यावहारिक मान लेती है। मगर इस उपन्यास में विनोद कुमार शुक्ल बच्चों के स्कूल और पढ़ाई को रोचक बनाने के लिए मानो कई तरह के उपक्रम सुझाते हुए नजर आते हैं। इनमें से एक तरकीब स्कूल में छुट्टी के दिन की पढ़ाई है जिसमें बच्चों को रात स्कूल में ही बितानी है और वे अपनी इस पढ़ाई में अपने घरवालों को भी शामिल कर सकते हैं – ''गुरुजी को यह अनुमान होने लगा था कि बच्चे स्कूल में अपने साथ घर वालों और गाय, कुत्ते, बिल्ली तक को लाने इच्छुक हैं। माँ, पिता, बाबा, अजिया, नाना, नानी को भी। एक छोटी बस्ती अपने घरों से निकलकर अपने बच्चों के स्कूल में छुट्टी का दिन बिताने नहीं, छुट्टी के दिन की उनकी पढ़ाई में शामिल होने आ रही है। खामोश ढम ढमाढम ढम। एक अघोषित घोषणा जैसी। परन्तु लड़कों के उत्साह में हल्ला था।''[6]

विनोद कुमार शुक्ल के कथा–साहित्य में जो 'जादू' दिखाई देता है, वह यथार्थ से पलायन नहीं है। हालांकि विष्णु खरे तो उनके उपन्यास में किसी जादुई यथार्थवाद से इंकार करते हैं – ''विनोद कुमार शुक्ल को

जैसा कि मैं बार–बार कहता रहा हूं, शायद ही किसी 'जादुई यथार्थवाद' का पता हो। इन मामलों में रघुवीर सहाय और नागार्जुन की तरह ''अनपढ़' हैं। उनके उपन्यासों का प्रभाव भले ही जादुई कहा जा सके, उनकी शैली और कथ्य में कोई जादुई चालाकी, तरकीब या नीयत नहीं है।''[7] उनकी शैली का यह जादू दरअसल हमारे बदरंग यथार्थ को बदलने की आकांक्षा से जन्म लेता है। हम इतने रूखे और असंवेदनशील यथार्थ में जीने के आदी हो चुके हैं कि जैसे ही कोई सुंदर और मानवीय यथार्थ सामने आता है, हम उसे 'काल्पनिक' या 'जादुई' कहकर नकार देते हैं। शुक्ल का साहित्य इस मानसिकता को तोड़ता है और यह विश्वास जगाता है कि सुंदर यथार्थ संभव है। उनका जादू हमें यथार्थ से दूर नहीं ले जाता, बल्कि यथार्थ को और अधिक मानवीय बनाने की प्रेरणा देता है।

आलोचकों ने विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य को 'कोमल यथार्थ' और 'संवेदनात्मक यथार्थ' की संज्ञा दी है। यह यथार्थ नारेबाजी नहीं करता, बल्कि चुपचाप मनुष्य के भीतर उतरता है। उनकी भाषा की सादगी और दृष्टि की गहराई ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।

आज का समय उपभोक्तावाद, तकनीकी वर्चस्व और तीव्र प्रतिस्पर्धा का समय है। इस दौर में मानवीय संबंध, प्रकृति से जुड़ाव और आंतरिक शांति लगातार क्षीण होती जा रही है और यही हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती है। ऐसे समय में विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य हमें ठहरकर सोचने का अवसर देता है। उनका साहित्य बताता है कि विकास का अर्थ केवल भौतिक प्रगति नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों का संरक्षण भी है।

विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य वर्तमान समय की अमानवीयता और कृत्रिमता के विरुद्ध एक सृजनात्मक प्रतिरोध है। इनका कथा साहित्य हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि क्या हम अपने जीवन, शिक्षा और समाज को अधिक संवेदनशील और मानवीय बना सकते हैं ! इसी अर्थ में विनोद कुमार शुक्ल का साहित्य न केवल साहित्यिक उपलब्धि है, बल्कि वर्तमान चुनौतियों के बीच एक वैचारिक मार्गदर्शन भी है।

विनोद कुमार शुक्ल के कथा–साहित्य को जब हम वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और मानवीय चुनौतियों के संदर्भ में देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि उनका लेखन किसी घोषणात्मक वैचारिक ढाँचे से नहीं, बल्कि जीवन की सूक्ष्म सच्चाइयों से निर्मित है। एक उदाहरण द्वारा इस बात को समझा जा सकता है – ''सिक्के का उपयोग तो आबादी में होता है। चाहे दो–चार लोगों की आबादी, जो बदले में दो रोटी दे सकें। निर्जन में भूख की तकलीफ से बचने के लिए किसी की हत्या भी नहीं की जा सकती। भूख बर्दाश्त नहीं कर सकते तो रोटी छीनी क्यों नहीं जा सकती? रोटी छीनने का मौका आए इसके पहले लोग भीख माँग लेना पसन्द करते थे। भीख न मिलने पर मर जाते थे।''[8] उनकी कथा संरचना गुदगुदिनुमा होते हुए भी भावनात्मक रूप से गहराई तक असर करती है। इस गद्य से यह महसूस किया जा सकता है कि आजादी के बाद जिस विकास, प्रगति और आधुनिकता के आदर्शों को हमने अपनाया, वे किस तरह खोखले, अराजक और अमानवीय साबित हुए। उनका 'खिलेगा तो देखेंगे' उपन्यास इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है। आदिवासी और ग्रामीण समाज की जिन समस्याओं और सच्चाई को यह सामने रखता है आजादी के बाद के बदलावों और आधुनिकता के दावों की पोल खोलता है।

विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य वर्तमान समय की चुनौतियों 'जैसे बाजारीकरण, अमानवीय विकास, संवेदनहीनता और संबंधों के क्षरण' के बीच मनुष्यता की रक्षा करने वाला साहित्य है। उनकी कहानियाँ

न केवल हमारी पाठकीय चेतना को बदलती हैं, बल्कि यह भी सिखाती हैं कि लेखन अंततः कुछ खोजने और अन्वेषित करने की प्रक्रिया है। 'महाविद्यालय' में जिन दृश्यों को वे रचते हैं उनके भीतर से यही प्रतिध्वनित होता है – ''बाजार मेरा दुश्मन हो गया था। बेईमानी, जमाखोरी, मुनाफाखोरी जैसी चालबाजियाँ मैं समझने लगा था। वाणिज्य, अर्थशास्त्र के शिक्षक महाविद्यालय से निकाल दिये गये थे।''[9]

उनका लेखन हमें यह याद दिलाता है कि मनुष्य की गरिमा, मासूमियत, प्रेम और नैतिकता अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैकृबस उसे देखने के लिए वैसी ही संवेदनशील निगाह चाहिए, जैसी विनोद कुमार शुक्ल की है। इसी बात को रेखांकित करते हुए इनकी कहानियों के सन्दर्भ में जयशंकर लिखते हैं – ''महाविद्यालय की कहानियाँ भी, विनोद कुमार शुक्ल के मानववाद के प्रति गहरी समझदारी और सहानुभूति लिए हुए सरोकारों को बार–बार, बराबर व्यक्त करती रहती हैं। इन कहानियों में निहित लेखक की नैतिक चेतना, उसकी यथार्थ में धँसी हुई जड़ें, मामूली से जीवन से, कहानियों को बाहर ले आती लेखक की कल्पनाशीलता, हम पाठकों की चेतना को प्रभावी ढंग से बदलती रहती हैं।''[10]

विनोद कुमार शुक्ल के कथा–साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे मामूली से मामूली आदमी को साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित करते हैं। उनके कथा साहित्य में जीवन के तनाव, तकलीफ, सवाल, संशय, पीड़ा और पछतावे का उल्लेख दरअसल उस सूक्ष्म मानवीय संसार की ओर संकेत करता है, जिसे मुख्यधारा का साहित्य अक्सर अनदेखा करता रहा है। आज के समय में जब साहित्य भी तेज घटनाओं, सनसनीखेज बड़े विमर्शों की ओर झुक रहा है, विनोद कुमार शुक्ल का लेखन हमें याद दिलाता है कि मनुष्य का असली संघर्ष भीतर घटता है, और वही कथा–साहित्य की सबसे बड़ी चुनौती भी है–भीतरी मनुष्य को बचाए रखना।

शुक्ल जी केवल जीवन का चित्रण नहीं करते, बल्कि जीवन के प्रति एक नैतिक और मानवीय जिम्मेदारी निभाते दिखाई देते हैं। वर्तमान समय की चुनौती यह है कि लेखक अक्सर पर्यवेक्षक बनकर रह जाता है, जबकि विनोद कुमार शुक्ल सहभागी मनुष्य की तरह लिखते हैं। यही कारण है कि उनकी कृतियाँ 'कृतियों से कुछ अधिक' प्रतीत होती हैं – वे पाठक के भीतर संवेदना की पुनर्रचना करती हैं। आज हम सूचनाओं से भरपूर हैं, लेकिन जीवन–बोध से रिक्त होते जा रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के पास भले कम जानकारियाँ थीं, लेकिन जीवन की सारभूत समझ अधिक थी। आज की सबसे बड़ी चुनौती यही है कि जानकारी के शोर में जीवन के सत्य को कैसे पहचाना जाए? शुक्ल का कथा–साहित्य इस प्रश्न का उत्तर देता है – धीमे, साधारण, लेकिन टिकाऊ ढंग से।

विनोद कुमार शुक्ल का कथा–साहित्य आज की चुनौतियों के बीच एक मानवीय हस्तक्षेप की तरह उपस्थित है। वह हमें सिखाता है कि साहित्य का काम दुनिया को तेजी से बदलना नहीं, बल्कि मनुष्य को भीतर से बचाना है। यह कहा जा सकता है कि शुक्ल का लेखन आज के समय के लिए संवेदना, भाषा और जीवन–बोध का नैतिक विकल्प प्रस्तुत करता हैकृजो शायद हमारी सबसे बड़ी जरूरत भी है।

सन्दर्भ :

1. हर्षुल, आनंद, 'दृष्टि मौलिकता की उपस्थिति', हरिनारायण (संपा.), 'कथादेश', अंक–11, जनवरी 2023, दिल्ली, पृष्ठ – 7
2. कमल, अरुण, 'एक साधक रचनाकार', भारद्वाज प्रेम (संपा.), 'अनहोना शिल्प अनहोनी कथाएं (विनोद

कुमार शुक्ल : समग्र मूल्यांकन)', अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, सजिल्द संस्करण : 2016, पृष्ठ – 217

3. शुक्ल, विनोद कुमार, 'खिलेगा तो देखेंगे', आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण : 1996, तीसरा सजिल्द संस्करण : 2011, पृष्ठ संख्या – 89
4. शुक्ल, विनोद कुमार, 'खिलेगा तो देखेंगे', आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण : 1996, तीसरा सजिल्द संस्करण : 2011, पृष्ठ संख्या – 59
5. शुक्ल, विनोद कुमार, 'खिलेगा तो देखेंगे', आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण : 1996, तीसरा सजिल्द संस्करण : 2011, पृष्ठ संख्या – 89
6. शुक्ल, विनोद कुमार, 'हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला पुस्तकालय संस्करण : 2011, पहला पेपर बैक्स संस्करण : 2018, पृष्ठ संख्या – 64
7. खरे, विष्णु, 'हिंदी का अपना पहला 'नेटिव जीनियस'', भारद्वाज प्रेम (संपा.), 'अनहोना शिल्प अनहोनी कथाएं (विनोद कुमार शुक्ल : समग्र मूल्यांकन)', अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, सजिल्द संस्करण : 2016, पृष्ठ – 28
8. शुक्ल, विनोद कुमार, 'खिलेगा तो देखेंगे', आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण : 1996, तीसरा सजिल्द संस्करण : 2011, पृष्ठ संख्या – 42
9. शुक्ल, विनोद कुमार, 'महाविद्यालय', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला पुस्तकालय संस्करण : 1996, दूसरा पेपर बैक संस्करण– नवम्बर : 2022, पृष्ठ – 112
10. जयशंकर, 'आदमी के आदिम जख्म, आदिम मासूमियत', हरिनारायण (संपा.), 'कथादेश', अंक–11, जनवरी 2023, दिल्ली, पृष्ठ – 59

ईमेल – choudharyniraj12@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 187-192
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Fragmented Identity and Female Suffering in Sylvia Plath's Poetry: A Study of *The Colossus* and *Ariel*

Dr Navninder Kaur Grewal, Assistant Professor,
Dr. Arvinder Kaur, Associate Professor,
Department of Languages, Desh Bhagat University, Mandi Gobindgarh

Abstract

Sylvia Plath is one of the most influential poets of the twentieth century whose poetry explores the complexities of female identity, psychological suffering, motherhood, and artistic self-expression. Her poetic journey from *The Colossus* (1960) to *Ariel* (1965) reflects a remarkable transformation in both style and thematic concerns. This paper examines the representation of fragmented identity and female suffering in Plath's poetry, focusing on selected poems from *The Colossus*, *Crossing the Water*, *Winter Trees*, and *Ariel*. The study argues that Plath transforms personal experiences into universal symbols of human struggle, using vivid imagery, mythic allusions, and dramatic voices. Her poems reveal the tensions between domesticity and creativity, dependence and autonomy, despair and rebirth. Through an analysis of poems such as "Poem for a Birthday," "Daddy," "Lady Lazarus," "The Applicant," "Tulips," and "Ariel," the paper demonstrates how Plath's mature poetry moves beyond autobiography to create a powerful artistic vision of female resilience and self-discovery.

Keywords: Sylvia Plath, fragmented identity, female suffering, motherhood, domesticity, confessional poetry, Ariel.

Introduction :

Sylvia Plath occupies a central position in twentieth-century American literature. Although she is often associated with the Confessional School of poetry, her work transcends mere personal revelation. Through a sophisticated use of imagery, symbolism, and dramatic personae, Plath transforms private experiences into universal explorations of suffering, identity, and survival. Her poetry reflects the challenges faced by women in a patriarchal society while simultaneously addressing broader human concerns regarding alienation, mortality, and selfhood.

The evolution of Plath's poetry is particularly evident in the transition from *The Colossus* to

Ariel. While the poems in *The Colossus* display technical precision and intellectual control, the later poems of *Ariel* reveal a more powerful, direct, and emotionally intense voice. This transformation has attracted considerable scholarly attention. According to Linda Wagner-Martin, Plath's later poetry achieves a new level of artistic confidence by integrating personal experience with mythic and symbolic structures (Wagner-Martin 214). Consequently, Plath's mature poetry becomes a compelling exploration of fragmented identity and female suffering.

This paper examines the development of these themes in Plath's poetry. It argues that her representation of women's experiences—particularly in relation to marriage, motherhood, and creativity—reveals a profound struggle for self-definition. Through fragmentation and suffering, Plath's poetic speakers ultimately seek empowerment and renewal.

Fragmented Identity and the Search for Self :

One of the most significant themes in Plath's poetry is the fragmentation of identity. Her speakers frequently experience a sense of division between their inner desires and external expectations. This fragmentation reflects both psychological conflict and social pressure.

"Poem for a Birthday" serves as a crucial example of this theme. The poem presents a journey through confusion, suffering, and eventual reconstruction. The speaker undergoes a symbolic transformation that mirrors a psychological rebirth. Images of darkness, stones, and enclosed spaces suggest a fragmented self struggling to achieve coherence. The repeated references to reduction and diminishment emphasize the loss of identity experienced by the speaker.

The image of the stone appears repeatedly throughout Plath's work as a symbol of emotional isolation and survival. In "The Stones," the speaker declares, "I became a still pebble" (Plath, *Collected Poems* 137). This image suggests both vulnerability and endurance. Although the self is reduced to its most basic form, it remains capable of renewal.

Similarly, Esther Greenwood in *The Bell Jar* experiences fragmentation as she attempts to reconcile societal expectations with her own ambitions. The novel's famous fig-tree metaphor illustrates the paralysis caused by competing life choices. Esther's inability to choose reflects a broader crisis of identity faced by many women in a society that restricts female autonomy (Plath, *The Bell Jar* 73).

According to Christina Britzolakis, fragmentation in Plath's work represents "a crisis of female subjectivity in a culture structured by patriarchal authority" (Britzolakis 89). Thus, fragmented identity becomes both a personal and social condition.

Domesticity and Female Oppression :

Plath's poetry frequently portrays domestic life as a source of confinement and psychological

tension. Rather than idealizing marriage and family, she exposes the inequalities and restrictions embedded within traditional gender roles.

"The Applicant" offers a satirical critique of marriage as an institution. The poem presents marriage as a commercial transaction in which the woman functions as a commodity designed to satisfy male needs. The prospective bride is described as an object capable of performing domestic tasks: "It can sew, it can cook, / It can talk, talk, talk" (Plath, *Ariel* 221). The dehumanizing language reduces the woman to a mechanical appliance.

The poem's satire highlights the expectations imposed upon women in mid-twentieth-century society. Marriage becomes less a partnership than a system of control. Judith Kroll argues that Plath's portrayal of marriage reflects "the conflict between individual freedom and social conformity" (Kroll 118).

Similarly, "Purdah" explores female oppression through the metaphor of seclusion. The speaker initially appears passive and submissive, existing as a decorative possession.

However, the poem gradually reveals an emerging resistance. By the conclusion, the speaker imagines transforming into a lioness capable of destroying her confinement. This transformation reflects Plath's recurring interest in female empowerment.

"The Jailor" presents another disturbing portrait of domination. The speaker describes a relationship characterized by emotional and psychological imprisonment. The imagery of captivity suggests the destructive consequences of unequal power relations. Through such poems, Plath critiques the patriarchal structures that limit female independence.

Motherhood and Ambivalence :

Motherhood occupies a complex and often contradictory place in Plath's poetry. Unlike traditional representations that celebrate maternity as a source of fulfillment, Plath explores its emotional ambiguities.

In "Metaphors," pregnancy is represented through a series of playful yet revealing images. The speaker describes herself as "an elephant, a ponderous house" (Plath, *Crossing the Water* 116). The metaphor emphasizes the physical transformation associated with pregnancy while also suggesting feelings of confinement.

Similarly, "You're" portrays the unborn child through imaginative metaphors that convey affection and wonder. Yet beneath the playful surface lies an awareness of the profound changes motherhood brings to a woman's identity.

More complex representations appear in poems such as "Tulips" and "Three Women." In "Tulips," the speaker longs for freedom from personal attachments and responsibilities.

Hospitalization offers temporary relief from the demands of domestic life. The tulips themselves become symbols of life's persistent claims upon the individual. The speaker confesses, "My husband and child smiling out of the family photo" cling to her like "little smiling hooks" (Plath, *Ariel* 161).

This imagery reveals the tension between love and obligation. The family represents both emotional fulfillment and a threat to personal autonomy. According to Sandra Gilbert and Susan Gubar, Plath's poetry often reflects "the conflict between creative selfhood and maternal self-sacrifice" (Gilbert and Gubar 592).

"Three Women" further explores the complexities of motherhood through three distinct female voices. Each woman embodies a different experience of pregnancy and childbirth. The First Voice celebrates motherhood despite its pain. The Second Voice mourns the loss of a child. The Third Voice rejects maternity altogether. Together, these voices demonstrate the diversity of women's experiences and challenge simplistic notions of maternal fulfillment.

Suffering as a Path to Self-Discovery :

Suffering functions as a central force in Plath's poetry. Rather than presenting pain as meaningless, she frequently portrays it as a catalyst for transformation.

"Lady Lazarus" exemplifies this theme. The speaker repeatedly survives death and emerges stronger after each ordeal. Drawing upon biblical and mythological imagery, the poem transforms personal suffering into a dramatic performance of resilience. The speaker's declaration, "Out of the ash / I rise with my red hair" (Plath, *Ariel* 247), evokes the phoenix myth and symbolizes rebirth.

The poem's power lies in its ability to transform vulnerability into strength. The speaker refuses to remain a passive victim. Instead, she reclaims control over her own narrative. As Marjorie Perloff observes, "Lady Lazarus is less a confession than a theatrical enactment of survival" (Perloff 176).

Similarly, "Daddy" transforms personal grief into a broader exploration of power, oppression, and liberation. Although the poem draws upon autobiographical experiences, it employs exaggerated and symbolic imagery that extends beyond individual history. The father figure becomes a representation of authoritarian control.

The speaker's final rejection of this figure marks an attempt to achieve independence. By confronting and symbolically destroying oppressive influences, she seeks to reconstruct her identity. The poem illustrates Plath's broader concern with overcoming psychological fragmentation through acts of imaginative transformation.

The Symbolism of Rebirth and Female Empowerment :

Many of Plath's later poems emphasize rebirth and empowerment. These themes represent a

significant development from the more restrained emotional landscape of *The Colossus*.

The bee poems, particularly “Stings,” provide powerful examples of female empowerment. The speaker identifies with the queen bee, a figure of authority and independence. Rejecting the role of “honey-drudger,” she seeks to recover her authentic self (Plath, *Ariel* 215).

The queen bee symbolizes creative and personal autonomy. Through this image, Plath challenges traditional representations of women as passive or dependent. Instead, she celebrates female strength and resilience.

“Ariel” similarly portrays a movement toward liberation. The poem’s rapid imagery and dynamic rhythm create a sense of forward momentum. The speaker’s journey culminates in a symbolic transcendence that suggests freedom from limitation and fragmentation.

According to Jacqueline Rose, Plath’s later poetry is characterized by “a relentless drive toward transformation” (Rose 143). This transformation often involves confronting suffering and emerging from it with renewed strength.

The recurring image of rebirth distinguishes Plath’s mature poetry from purely confessional writing. Her speakers do not merely recount experiences; they enact symbolic journeys toward self-discovery and empowerment.

Artistic Development from *The Colossus* to *Ariel* :

The transition from *The Colossus* to *Ariel* represents one of the most remarkable artistic developments in modern poetry. The earlier poems display technical sophistication but often maintain emotional distance. In contrast, the later poems achieve a powerful fusion of form and feeling.

In *The Colossus*, Plath frequently relies upon carefully constructed imagery and formal control. Poems such as “The Manor Garden” and “The Beekeeper’s Daughter” reveal her developing interest in themes that would later dominate her work. However, these poems remain relatively restrained.

By the time of *Ariel*, Plath had developed a more dynamic and expressive style. Her imagery became more daring, her voice more confident, and her emotional range more expansive. The poems no longer merely describe experiences; they recreate them through dramatic intensity and symbolic complexity.

Ted Hughes observed that Plath’s later poems possessed an extraordinary energy and urgency absent from much of her earlier work (Hughes xii). This energy contributes significantly to the enduring impact of *Ariel*.

The development of Plath’s poetic voice demonstrates her ability to transform personal experiences into universally meaningful art. Through increasingly sophisticated imagery and symbolism, she created a body of work that continues to resonate with readers worldwide.

Conclusion :

Sylvia Plath's poetry explores fragmented identity, female suffering, and personal transformation. Her work examines marriage, motherhood, and societal expectations while raising universal questions about identity and survival.

From *The Colossus* to *Ariel*, Plath's poetry shows a growing artistic intensity, portraying psychological conflict, oppression, and the search for renewal. Through powerful imagery, symbolism, and emotional honesty, she transforms personal experience into universal art, showing that suffering can become a source of resilience, creativity, and self-discovery.

Works Cited :

- Britzolakis, Christina. *Sylvia Plath and the Theatre of Mourning*. Oxford UP, 1999. Gilbert, Sandra M., and Susan Gubar. *The Madwoman in the Attic*. Yale UP, 2000. Hughes, Ted, editor. *Collected Poems*. By Sylvia Plath, Harper Perennial, 2008.
- Kroll, Judith. *Chapters in a Mythology: The Poetry of Sylvia Plath*. Harper & Row, 1976. Perloff, Marjorie. *The Poetic Art of Sylvia Plath*. Northwestern UP, 1990.
- Plath, Sylvia. *Ariel*. Faber and Faber, 1965.
- —. *Crossing the Water*. Harper & Row, 1971.
- —. *The Bell Jar*. Faber and Faber, 1963.
- —. *The Colossus and Other Poems*. Faber and Faber, 1960.
- Rose, Jacqueline. *The Haunting of Sylvia Plath*. Harvard UP, 1991.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 193-194
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आर्य और वेद

भूमिका पारीक
लेखिका

वैदिक काल 1500 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व के बीच का समय था। यह प्राचीन भारत की एक प्रमुख सभ्यता थी जो 1400 ईसा पूर्व तक सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के बाद विकसित हुई। इसी काल में वेदों की रचना हुई थी और इसी कारण इस युग का नाम 'वैदिक काल' पड़ा। वेद इस युग की जानकारी के मुख्य स्रोत भी हैं। वैदिक काल की शुरुआत आर्यों या इंडो–आर्यों के आगमन के साथ हुई। चूँकि शुरुआती आर्यों के बारे में हमारी जानकारी इन्हीं वेदों पर आधारित है, इसलिए इस काल की संस्कृति को 'वैदिक संस्कृति' कहा जाता है।

वेद :

'वेद' शब्द का अर्थ है पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान। वेदों को अचूक माना जाता था क्योंकि इनसे सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञान मिलता था। शुरुआत में, वेदों को मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता था।

'वेद' शब्द संस्कृत के 'विद्' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'जानना'। वेद असल में प्रार्थनाओं और भजनों का संग्रह हैं, जिन्हें कवियों और ऋषियों के अलग–अलग परिवारों ने अलग–अलग देवताओं को समर्पित किया था। ये चार वेद 'संहिता' (एक संग्रह) भी हैं, क्योंकि ये उस समय की मौखिक परंपरा को दर्शाते हैं।

चूंकि इन भजनों को पढ़ा, सीखा और मौखिक रूप से आगे बढ़ाया जाना था, इसलिए रचना के समय इन्हें लिखा नहीं गया था। इसी वजह से, किसी भी संहिता के समय के बारे में पक्के तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। हर संहिता कई सदियों के दौरान हुए संग्रह को दर्शाती है।

इन्हें चार वेदों में संकलित किया गया था :

- **ऋग्वेद :** मंत्रों की पुस्तक।
- **सामवेद :** मंत्र–उच्चारण या गायन की पुस्तक।
- **यजुर्वेद :** अनुष्ठानों की पुस्तक।
- **अथर्ववेद :** मंत्र–तंत्र या जादू–टोने की पुस्तक।

वैदिक ग्रंथ :

वैदिक सामग्री के रूप में केवल 'वेद' ही उपलब्ध हैं। इनकी रचना और मौखिक परंपरा के माध्यम से इनका प्रसार लगभग 15वीं से 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व के बीच, यानी करीब 10 सदियों तक हुआ। वैदिक साहित्य प्राचीन संस्कृत में रचा गया है।

सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ ही सबसे पुराने भी हैं। ये चार संग्रह (संहिताएं) हैं जिन्हें 'वेद' कहा जाता है।

इनमें सबसे पुराना 'ऋग्वेद' (यानी 'श्लोकों का वेद') है। इसमें विभिन्न देवताओं को समर्पित लगभग 1000 सूक्त (भजन) हैं। इन्हें मुख्य रूप से उन पुरोहित परिवारों की जरूरतों को ध्यान में रखकर व्यवस्थित किया गया था, जो इस पवित्र साहित्य के संरक्षक थे।

'सामवेद' (यानी 'गायन का वेद') में श्लोकों का एक संग्रह है– जो लगभग पूरी तरह से ऋग्वेद से लिए गए हैं। इन श्लोकों के साथ संगीत के स्वर–संकेत (नोटेशन) भी दिए गए हैं, ताकि पवित्र गीतों के गायन में सहायता मिल सके।

यजुर्वेद, या 'यज्ञ–मंत्रों का वेद', में अलग–अलग अनुष्ठानों के लिए गद्य–मंत्र और उसी मकसद के लिए श्लोक शामिल हैं।

अथर्ववेद, या 'मंत्रों का वेद', बाद में संकलित किया गया ग्रंथ है जिसमें जादू–टोने और मंत्र शामिल हैं।

हर वेद के साथ बाद के समय की गद्य रचनाएँ जुड़ी हैं जिन्हें ब्राह्मण (लगभग 800–600 ईसा पूर्व) कहा जाता है। ये ग्रंथ वेदों में बताए गए अनुष्ठानों के तरीके और उन यज्ञों के मूल और महत्व को समझाते हैं जिनके लिए वेदों की रचना की गई थी।

इसके बाद के परिशिष्ट, आरण्यक (लगभग 600 ईसा पूर्व) और उपनिषद (लगभग 700–500 ईसा पूर्व), क्रमशः मुश्किल अनुष्ठानों के प्रतीकात्मक अर्थ को समझाते हैं और ब्रह्मांड की प्रकृति तथा उससे इंसान के संबंध पर विचार करते हैं।

जब छठी और दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच वैदिक धर्म धीरे–धीरे हिंदू धर्म में बदला, तो ये सभी ग्रंथ मिलकर हिंदू धर्म का सबसे पवित्र साहित्य बन गए। इन्हें 'श्रुति' (''जो सुना गया'') कहा जाता है, जो हिंदू साहित्य का ईश्वरीय ज्ञान वाला हिस्सा है– इसके विपरीत बाद के धार्मिक साहित्य को 'स्मृति' (''जो याद रखा गया'') कहा जाता है, जो इंसानी लेखकों द्वारा लिखे गए पारंपरिक ग्रंथ हैं। लेकिन आधुनिक हिंदू धर्म में, उपनिषदों और ऋग्वेद के कुछ भजनों को छोड़कर, 'श्रुति' के बारे में बहुत कम जानकारी है, जबकि कुछ 'स्मृति' ग्रंथ अभी भी बहुत प्रभावशाली हैं।

संदर्भ :

1. सामवेद।
2. ऋग्वेद।
3. मैक्समूलर की किताब।
4. यजुर्वेद।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 195-206
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Study of Institutional Inclusivity Perceptions of Secondary School Teachers and their Attitudes toward Inclusive Education

Tejveer Singh, Resrerch Scholar
Dr. Ritu Bala, Supervisor & Professor (Education)
Tantia University, Sri Ganganagar, (Raj)

Introduction :

Education is widely recognized as a fundamental instrument for individual development, social progress, and national advancement. It promotes equality, social justice, democratic participation, and human well-being (Dewey, 1916; Delors et al., 1996). In recent decades, ensuring equitable access to quality education for all learners has emerged as a major global priority. Despite significant expansion in educational opportunities, many learners continue to experience exclusion due to social, economic, cultural, linguistic, geographical, and other barriers (UNESCO, 2020). Addressing such exclusion has become a central concern of contemporary educational systems.

Inclusive education has emerged as a key response to these challenges. Initially associated primarily with the education of learners with disabilities, the concept has gradually evolved into a broader approach that seeks to address the educational needs of all learners who may experience disadvantage, marginalization, or exclusion (Booth & Ainscow, 2011). Contemporary perspectives emphasize that diversity is a natural characteristic of educational communities and that schools should create environments where all learners can participate meaningfully and achieve their full potential (Ainscow, Booth, & Dyson, 2006). International initiatives such as the Salamanca Statement (UNESCO, 1994), the Convention on the Rights of Persons with Disabilities (United Nations, 2006), and the Sustainable Development Goals (UNESCO, 2015) have further reinforced the commitment to inclusive and equitable education.

As understandings of inclusion have broadened, increasing attention has been directed toward the concept of institutional inclusivity. Institutional inclusivity refers to the extent to which educational

institutions create equitable, accessible, participatory, and supportive environments for diverse learners. Inclusive institutions are characterized by welcoming cultures, inclusive policies, responsive teaching-learning practices, adequate support systems, and accessible infrastructure that facilitate the participation and success of all learners (UNESCO, 2009; Florian, 2014). Assessing institutional inclusivity is therefore essential for understanding how effectively schools translate inclusive principles into practice.

Teachers constitute another critical component of successful inclusive education. Their attitudes toward inclusion influence classroom practices, interactions with learners, instructional decisions, and the overall implementation of inclusive policies. Positive attitudes encourage acceptance of learner diversity and support the adoption of inclusive teaching practices, whereas negative attitudes may hinder the realization of inclusive educational goals (Avramidis & Norwich, 2002; Sharma, Forlin, & Loreman, 2008). Consequently, understanding teachers' attitudes toward inclusive education remains an important area of educational research.

Although inclusive education has received considerable scholarly attention, there remains a need for reliable and contextually relevant instruments to assess institutional inclusivity and teachers' attitudes toward inclusive education, particularly in the Indian secondary school context. The availability of valid and reliable assessment tools is essential for generating empirical evidence, monitoring inclusive practices, and informing educational planning and improvement efforts.

The present study addresses this need through the development and standardization of two instruments: the Inclusivity Assessment Scale based on Kolb's Learning Spaces Framework and the Attitudes toward Inclusive Education Scale based on Kerlinger's Educational Attitudes Framework. Using these instruments, the study assesses secondary school teachers' perceptions of institutional inclusivity and their attitudes toward inclusive education across selected demographic variables. The findings are expected to contribute to the advancement of inclusive education research and provide useful insights for educators, administrators, policymakers, and teacher educators.

Importance and Rationale of the Study :

The growing commitment to equitable and quality education for all learners has increased the importance of inclusive education across the world. Contemporary schools serve learners from diverse social, cultural, linguistic, economic, and educational backgrounds, making it essential to create learning environments that promote participation, equity, and success for all. Although inclusive education has become a major educational priority, the effective implementation of inclusive practices remains a challenge in many educational settings.

In recent years, the concept of institutional inclusivity has gained considerable attention. It

emphasizes the capacity of educational institutions to create supportive cultures, policies, practices, and environments that enable all learners to participate meaningfully in education. However, research on institutional inclusivity, particularly in school settings, remains limited. Furthermore, there is a need for valid and reliable instruments that can systematically assess the inclusivity of educational institutions.

Teachers are equally important in the realization of inclusive education. Their attitudes toward inclusion influence classroom practices, learner participation, and the overall success of inclusive initiatives. Although several studies have examined teacher attitudes, there remains a need for assessment tools that reflect broader contemporary understandings of inclusive education and learner diversity.

The present study addresses these needs through the development and standardization of two instruments: the Inclusivity Assessment Scale based on Kolb's Learning Spaces Framework and the Attitudes toward Inclusive Education Scale based on Kerlinger's Educational Attitudes Framework. Using these instruments, the study assesses secondary school teachers' perceptions of institutional inclusivity and their attitudes toward inclusive education across selected demographic variables. The findings are expected to contribute to educational research, policy, teacher education, and efforts aimed at strengthening inclusive practices in secondary schools.

Statement of the Problem

Problem could be stated as :

"Study of Institutional Inclusivity Perceptions of Secondary School Teachers and their Attitudes toward Inclusive Education"

Objectives of the proposed study :

The investigation aimed to achieve the following objectives.

- **O1:** To assess the level of inclusivity of secondary schools as perceive by teachers teaching in secondary schools.
- **O2:** To compare institutional inclusivity perceptions about secondary schools by secondary school teachers in respect of selected demographic variables (Gender, Locale, Academic Stream & Level of Teaching).
- **O3:** To evaluate the attitudes of secondary school teachers towards inclusive education.
- **O4:** To compare the attitudes of secondary school teachers towards inclusive education across some selected demographic variables (Gender, Locale, Academic Stream & Level of Teaching).

Hypotheses for the study :

At this stage only major hypotheses are being mentioned, subsidiary hypotheses unfold after

testing the major hypotheses. The proposed study aims to test following major hypotheses.

- **HA1:** Teachers perceive institutional inclusivity in secondary schools to be at a favourable level.
- **H02:** Teachers do not differ significantly across demographic variables in their perceptions regarding institutional inclusivity.
- **HA3:** Teachers' attitude towards inclusive education to be at favourable level.
- **H04:** Teachers do not differ significantly across demographic variables regarding their attitudes toward inclusive education.

6. Research Methodology Overview :

6.1 Nature of the Study :

The present study is quantitative in nature and employs a descriptive survey approach. It seeks to investigate institutional inclusivity as perceived by secondary school teachers and their attitudes toward inclusive education. Therefore, the investigation combines elements of descriptive an comparative analysis .

6.2 Research Design :

Both instruments are administered to secondary school teachers for assessing institutional inclusivity and attitudes toward inclusive education. The study further employs descriptive and comparative designs to examine differences in institutional inclusivity perceptions and attitudes toward inclusive education across selected demographic variables.

6.3 Variables of the Study :

The present study includes the following variables :

6.3.1 Primary Variables :

- **6.3.1.1 Institutional Inclusivity Perceptions**

Institutional inclusivity perceptions refer to teachers' perceptions regarding the extent to which their institutions provide an inclusive environment characterized by equitable opportunities, participation, accessibility, support, and acceptance for diverse learners. This variable serves as the major criterion variable in the study.

- **6.3.1.2 Attitudes toward Inclusive Education :**

Attitudes toward inclusive education refer to teachers' beliefs, feelings, and predispositions toward the inclusion of diverse learners within regular educational settings. This variable serves as the major predictor variable in the study.

- **6.3.1.3 Demographic Variables :**

The following demographic variables are included for comparative analysis :

- Gender (Male/Female Teachers)
- Locale (Urban/Rural Teachers)
- Academic Stream (Science/Humanities Teachers)
- Level of Teaching (TGT/PGT)

These variables are examined to determine whether significant differences exist in teachers' perceptions of institutional inclusivity and their attitudes toward inclusive education.

6.4 Population and Sample of the Study

6.4.1 Population :

The population of the present study comprised all secondary school teachers working in recognized secondary schools.

6.4.2 Sample :

A representative sample of secondary school teachers was selected from the target population for the purpose of data collection. The sample was collected using Snow-Ball sampling.

6.4.3 Sample Size :

The final sample for the study consisted of 160 secondary school teachers drawn from recognized secondary schools. Eight entries of the sample had to be rejected due to being outliers or incompleteness.

Tools used for Data Collection :

Investigator studied the problems by using self-developed and standardized tools to assess both institutional inclusivity and Inclusive educational attitudes. The tools thus developed are as follows:

- "Teachers' Perceptions of Institutional Inclusivity Scale" (TPIIS)
- Teachers' Attitudes toward Inclusive Education Scale (TAIES)

Personal Information Schedule :

The "Teachers' Perceptions of Institutional Inclusivity Scale" (TPIIS) has been developed based on Kolb's Learning Space framework. The Teachers' Attitudes toward Inclusive Education Scale (TAIES) has been developed Kerlinger's Educational Attitudes framework. Personal information schedule is nothing but schedule for getting information on demographic variables.

8. Findings of the study

8.2 Descriptive Analysis of the Data :

Measures such as mean, standard deviation, Coefficient of variation (CV) were employed for summarizing the characteristics of the sample and the variables under study.

Interpretation :

Central Tendency Analysis (M)

- **Perceptions of Inclusivity :** Across all 8 demographic subgroups, the mean scores hover exceptionally close to each other, ranging from a minimum of 223.45 (Science teachers) to a maximum of 227.61 (Humanities teachers). This shows that regardless of gender, location, subject stream, or grade level taught, teachers uniformly rate their schools' institutional inclusive infrastructure and climate at an elevated, highly favourable level.
- **Attitude Scores :** A matching pattern is visible in the attitude scores, which fit tightly between 181.98 (Science teachers) and 185.02 (Humanities teachers). All demographic groups consistently maintain strong, favourable internal mindsets toward inclusive education.

Absolute Variability Analysis (s) :

- **Stable Score Distributions :** The standard deviations (s) are strikingly consistent across both tables. For institutional perceptions, the values sit between 17.57 and 18.83. For attitudes, they sit between 16.31 and 17.56.

Relative Dispersion & Data Consistency (CV%) :

- **The 10% Benchmark :** In descriptive research, a Coefficient of Variation (CV) under 10% indicates high homogeneity and an exceptionally tight consensus among respondents.
- **Institutional Inclusivity Perceptions (CV: 7.75% to 8.36%) :** Perceptions yield the lowest CV values in the study. Urban teachers (7.77%) and TGT teachers (7.75%) display the highest concentration of agreement, meaning their assessments of school inclusivity parameters are nearly uniform.
- **Attitudes towards Inclusive Education (CV: 8.89% to 9.65%) :** While slightly higher than the perception scores, every single demographic CV for attitudes remains safely below the 10% threshold. The single most tightly converged group is the TGT teachers (8.89%), whereas Science teachers exhibit the highest relative dispersion (9.65%), though it is still well within the highly homogeneous zone.

Overall conclusion :

The descriptive parameters Validates Parametric Assumptions :

- Highly stable and Reliable score s
- Highly unified professional community regarding inclusion irrespective of demographic variations.

8.3 Normality of the data :

- K-S Measure in respect of in respect of Perception of Institutional Inclusivity

| Cpo-Cpe |max has been found to be 0.0410, which is far below the required deviation, means the sample is normal beyond any doubt.

- K-S Measure in respect of Attitude towards Inclusive Education

| Cpo-Cpe |max has been found to be 0.0356, which is far below the required deviation, means the sample is normal beyond any doubt.

8.4 Homogeneity of variance of the Data (Leven' Test) :

a) The p values in respect of Gender (0.924), Locale (0.513), Academic Stream (0.762) and Level of teaching (0.880) have been found to be greater than 0.05, thus hypothesis of equal variances across all the grouping variables is accepted in respect of Institutional Inclusivity Perceptions variable

b) The p values in respect of Gender (0.924), Locale (0.513), Academic Stream (0.762) and Level of teaching (0.880) have been found to be greater than 0.05, thus hypothesis of equal variances across all the grouping variables is accepted in respect of Attitudes toward Inclusive Education variable.

8.5 Testing of Hypotheses

8.5.1 Testing of Hypothesis H1 :

- **Alternative Hypothesis (HA1) :** "Teachers perceive institutional inclusivity in secondary schools to be at a favourable level."

Statistically

HA1? : $\mu > 180$

Global Sample Evaluation :

For the total sample of 152 educators, the observed mean score of 225.72 is substantially higher than the neutral baseline value of 180. This margin creates a very high t-value of 30.90 (df=151, $p < .001$). This confirms that secondary school teachers view their school environments highly incusivee.

Breakdown by Individual Attributes :

- **Gender Cohorts :** Both Male ($t = 20.36$, $p < .001$) and Female ($t = 23.55$, $p < .001$) groups score significantly above the neutral threshold, both rejects the null hypothesis.
- **Locality :** Urban ($t = 22.01$ and Rural ($t = 21.78$) teachers report similarly elevated levels of inclusivity within their institutions, both groups perceive their schools' inclusive setups very favourably. Academic Strem: Humanities educators ($M = 227.61$, $t = 24.16$) and Science teachers ($M = 223.45$, $t = 19.63$) show a shared positive outlook that is not influenced by their subject specialties.
- **Finally, we can say that the hypothesis (HA1) :** "Teachers perceive institutional inclusivity in secondary schools to be at a favourable level" is accepted or the Null Hypothesis (H01): "Teachers do not perceive institutional inclusivity in secondary schools to be significantly favourable" is rejected.

Teachers do possess significantly positive perceptions as far as their institutional inclusivity is concerned.

8.5.2 Testing of Hypothesis H02

- **H02 :** Teachers do not differ significantly across demographic variables in their perceptions regarding institutional inclusivity.
- **H02 (a) :** Male & female teachers do not differ significantly in their perceptions regarding institutional inclusivity.
- **H02 (b) :** Urban & Rural teachers do not differ significantly in their perceptions regarding institutional inclusivity.
- **H02 (c) :** Science & Humanities teachers do not differ significantly in their perceptions regarding institutional inclusivity.
- **H02 (d) :** PGT & TGT teachers do not differ significantly in their perceptions regarding institutional inclusivity.

The t-values in respect of all the demographic variables (Gender, Locale, Academic Stream and Level of Teaching) are lesser than table values (t0.05 = 1.98, df=150). Meaning thereby teacher's perceptions regarding institutional inclusivity are not affected by variation in the demographic groupings. We conclude hypothesis H02: "Teachers do not differ significantly across demographic variables in their perceptions regarding institutional inclusivity". is fully accepted.

6.5.3 Testing of Hypothesis H3 :

- **Alternative Hypothesis (HA3) :** "Teachers' attitude towards inclusive education to be at favourable level."

HA3? : $\mu > 144$

Overall Population Evaluation :

For the entire cohort of 152 secondary school teachers, the calculated mean attitude score is 183.64, outperforming the neutral target value by 39.64 points. This large difference produces an exceptionally strong t-value of 28.88 (df=151, $p < .001$). This provides powerful evidence that the teacher population holds highly positive and welcoming mindsets toward integrating diverse learners into general education classrooms.

Breakdown by Demographic Attributes :

- **Gender Groupings :** Both male ($t = 18.82$, $p < .001$) and female ($t = 22.07$, $p < .001$) educators display highly significant upward shifts away from the test baseline. We reject the null hypothesis in case of both male and female groups.
- **Locality :** Urban teachers ($t = 20.37$) and rural teachers ($t = 20.52$) show remarkably balanced,

parallel t-statistics. This means that geographic environment or regional school placement does not change or hinder a teacher's personal professional willingness to implement inclusive strategies, null hypothesis is rejected both in case of urban as well as rural groups.

- **Subject Disciplines :** Teachers from the Humanities stream (M = 185.02, t = 22.91) and Science stream (M = 181.98, t = 17.97) both score well into the positive range, showing that an teacher's academic field does not alter their supportive attitude toward diverse student populations. We reject null hypothesis in case of both Science and humanities teachers.
- **Professional Grade Tiers :** Graduate teachers (TGT, t = 22.87) and Post Graduate teachers (PGT, t = 17.89) also reject the null hypothesis with very high statistical certainty.
- **Consequently, alternative Hypothesis (HA3) :** "Teachers' attitude towards inclusive education to be at favourable level." is accepted, i.e. Teachers do possess significantly positive perceptions as far as their attitude towards inclusive education is concerned.

8.5.4 Testing of Hypothesis H04 :

- **H04 :** Teachers do not differ significantly across demographic variables regarding their attitudes toward inclusive education.
- **H04 (a) :** Male & female teachers do not differ significantly in their attitude towards inclusive education.
- **H04 (b) :** Urban & Rural teachers do not differ significantly in their attitude towards inclusive education.
- **H04 (c) :** Science & Humanities teachers do not differ significantly in their attitude towards inclusive education.
- **H04 (d) :** PGT & TGT teachers do not differ significantly in their attitude towards inclusive education.

The t-values in respect of all the demographic variables (Gender, Locale, Academic Stream and Level of Teaching) are lesser than table values ($t_{0.05} = 1.98$, df=150). Meaning thereby teacher's attitude towards inclusive education is not influenced by variation in demographic variables. This is good result, we don't even expect it to be different by gender, locale, academic stream and level at which they teach. Reason being they receive same training both in-service as well as pre-service irrespective of their identity and background, then why they would affect their perceptions.

In other words, Hypothesis H04 : "Teachers do not differ significantly across demographic variables regarding their attitudes toward inclusive education" is statistically accepted. In other words, Male & Female, Urban & Rural, Science & Humanities and TGT & PGT Teachers do not differ

significantly as far as their attitudes toward inclusive education is concerned.

Educational Significance of the Study :

The study is significant because it adopts a broad perspective on inclusion that extends beyond disability to encompass all learners who may experience disadvantage, marginalization, or exclusion. This approach is consistent with contemporary understandings of inclusive education and provides a comprehensive framework for examining inclusive practices in schools.

Another important contribution of the study lies in assessing secondary school teachers' perceptions of institutional inclusivity and their attitudes toward inclusive education. The findings provide empirical evidence regarding the inclusiveness of school environments and the extent to which teachers support inclusive educational practices. Such information may be useful for school leaders, educational planners, teacher educators, and policymakers in designing strategies to strengthen inclusive schooling.

The study further examines variations in institutional inclusivity perceptions and teachers' attitudes across demographic variables such as gender, locality, academic stream, and level of teaching. These findings may help identify contextual differences and inform targeted interventions where necessary.

Overall, the study contributes to the field of inclusive education by providing standardized assessment tools and empirical evidence that can support future research, educational planning, teacher education, and the development of more inclusive secondary schools.

10. Conclusions of the Study :

Based on the analysis and interpretation of data, the following conclusions were drawn :

The Inclusivity Assessment Scale based on Kolb's Learning Spaces Framework and the Attitudes toward Inclusive Education Scale based on Kerlinger's Educational Attitudes Framework demonstrated worked very well for addressing the problem.

Secondary school teachers generally perceived their institutions as reasonably inclusive and exhibited favourable attitudes toward inclusive education, indicating growing acceptance of inclusive educational principles.

Teachers' perceptions of institutional inclusivity and their attitudes toward inclusive education were found to be largely similar across demographic groups, suggesting relative consistency in these constructs among secondary school teachers.

The findings support a broad understanding of inclusion that extends beyond disability and encompasses learners from diverse social, cultural, economic, linguistic, and other backgrounds.

Overall, the study highlights the importance of inclusive institutional practices and positive

teacher attitudes in promoting equitable and supportive educational environments for all learners.

References :

- Ainscow, M., Booth, T., & Dyson, A. (2006). *Improving schools, developing inclusion*. Routledge.
- Avramidis, E., & Norwich, B. (2002). Teachers' attitudes towards integration/inclusion: A review of the literature. European Journal of Special Needs Education, 17(2), 129–147. https://doi.org/10.1080/08856250210129056
- Booth, T., & Ainscow, M. (2011). *Index for inclusion: Developing learning and participation in schools* (3rd ed.). Centre for Studies on Inclusive Education.
- Delors, J. (Ed.). (1996). *Learning: The treasure within: Report to UNESCO of the International Commission on Education for the Twenty-first Century*. UNESCO Publishing.
- Dewey, J. (1916). *Democracy and education: An introduction to the philosophy of education*. Macmillan.
- Florian, L. (2014). What counts as evidence of inclusive education? European Journal of Special Needs Education, 29(3), 286–294.
- Kerlinger, F. N. (1956). *The development and structure of attitudes toward education*. Bureau of Educational Research, Teachers College, Columbia University.
- Kerlinger, F. N. (1967). *Attitudes and perception of desirable traits and behavior of teachers* (ERIC Document Reproduction Service No. ED019742).
- Kolb, A. Y., & Kolb, D. A. (2005). Learning styles and learning spaces: Enhancing experiential learning in higher education. *Academy of Management Learning & Education, 4*(2), 193–212. https://doi.org/10.5465/amle.2005.17268566
- Kolb, D. A. (1984). *Experiential learning: Experience as the source of learning and development*. Prentice-Hall.
- Kugelmass, J. W. (2006). Sustaining cultures and leadership for inclusion. Journal of Educational Change, 7(4), 279–293.
- Sharma, U., Forlin, C., & Loreman, T. (2008). Impact of training on pre-service teachers' attitudes and concerns about inclusive education and sentiments about persons with disabilities. Disability & Society, 23(7), 773–785.
- UNESCO. (1994). *The Salamanca statement and framework for action on special needs education*. UNESCO.
- UNESCO. (2009). Policy guidelines on inclusion in education. Paris: UNESCO.

- UNESCO. (2015). *Education 2030: Incheon Declaration and Framework for Action for the implementation of Sustainable Development Goal 4: Ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all*. UNESCO. Education 2030 Framework for Action.
- UNESCO. (2020). *Global Education Monitoring Report 2020: Inclusion and education—All means all*. Paris: UNESCO.
- United Nations. (2006). Convention on the rights of persons with disabilities. United Nations.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha   ISSN : 2395-7115
June 2026   Page No. : 207-212

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुरेश्वर त्रिपाठी कृत 'गीली रेत का घरौंदा' में चित्रित नारी पात्र

बी. श्रीहरि (पीएच.डी, शोधार्थी)

डॉ. बी. संतोषी कुमारी (शोध निर्देशक)

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास चेन्नई–600017

हमारे समाज में नारी को कभी रीति–रिवाज के नाम पर तो कभी पितृसत्तात्मक अधिकार भावना के कारण, कभी पुरुष की अहम भावना के कारण तो कभी शिक्षित पर तो कभी आत्मनिर्भर होने के कारण सदैव कदम–कदम पर शोषण का शिकार होना पडा है। शोषण और उसके विरूद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लंबी एक करूण कहानी है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक की खुद से भी निरंतर संघर्ष करना पडा है। इसी संघर्ष को 'सिमोन द बुआ' ने अपनी पुस्तक 'द सेकण्ड सेक्स' में बताया है कि ''स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बना दिया जाता है।''[1] यह कथन देश विदेश की सभी स्त्रियों के संघर्ष को पूर्णतया बयां करता है। भारतीय समाज में तो नारी बेटी, बहू, पत्नी आदि हर रूप में पुरुष द्वारा शोषित एवं प्रताडित होती रहती है।

प्रत्येक युग का साहित्य नारी की समाज में स्थिति का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करता आया है। कहते हैं कि साहित्य रचनाकार के जीवन जगत की अनुभूतियों और कल्पनाओं के सहज समन्वय का रूपाकार हैं। लेखक जो समाज की सभी परिस्थितियाँ प्रभावित करती है, ठीक वैसे ही जैसे एक कारीगर को कच्चा माल प्रभावित करता है। परिवेश से ली गयी अनुभूतियाँ ही रचनाकार की संवेदनाएँ बनाती है। साहित्य में जीवन के साथ–साथ मानव मन की तथा चरित्र की व्यापक गहराई दिखाई पडती है। समाज में व्याप्त विचारों का प्रभाव साहित्य में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य की प्रत्येक विद्या स्त्री जीवन के सभी संघर्षों को स्वर प्रदान करती है। नारी का संघर्ष पुरुषों से बराबरी करने या उससे आगे निकल जाने का कहीं बल्कि उसका संघर्ष समाज में, परिवार में, स्वयं को स्थापित करने तथा अपनी अस्मिता की तलाक के लिए हैं। सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानियों में नर नारी संबंध प्रायः केन्द्र में रहे है। उनके नारी पात्र कहीं पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा शोषित एवं प्रताडित दिखाई देते हैं तो कहीं वे पुरुष सत्ता का विरोध करते हुए अपने हक के लिए खड़े दिखाई देते हैं। किसी कहानी में नारी स्वाभिमान से परिपूर्ण दिखाई देती है तो कहीं नारी की उदात्त एवं ऊँची भावनाएं उसे महानता के पद पर स्थापित करती है।

प्रताडित एवं शोषित नारी पात्र : भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज हैं। यहाँ नारी को स्वतंत्रता से सोचने, बोलने व करने का संवैधानिक अधिकार तो हैं पर सामाजिक अधिकार नहीं है। सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानियों में नारी समाज में संघर्ष करती हुई शोषित एवं प्रताडित नजर आती है। कहानियों में नारी पात्र कहीं पुरुषों के द्वारा शोषित हुई हैं, कहीं एक नारी ही दूसरी नारी का शोषण करती हुई नजर आती हैं। नारी के शोषण

के लिए उत्तरदायी पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा उसके मूल्य एवं संस्कार हैं। पुरुष अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए हमेशा नारी की इच्छाओं, भावनाओं तथा अस्मिता को दबाने के प्रयास में कार्यरत है। पुरुष के लिए नारी मात्र पशु के समान हैं जो पूरा दिन काम करती है और मार खाती रहती है। पत्नी रूप में नारी का शारीरिक एवं मानसिक शोषण करने का तो पति को मानो जन्मसिद्ध अधिकार है। संयुक्त परिवार में स्त्रियों का जीवन नरकमय होता है। घर की चारदीवारी के अंदर उसका सारा दिन खान बनाने, बर्तन साफ करने आदि घरेलू कार्य तथा सास व ननद के ताने व पति की मार में ही बीत जाता है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वह अपने विचार एवं अपनी राय नहीं रख सकती। उस पर पिता पति और पुत्र नियंत्रण रखते है। संयुक्त परिवार में स्त्रियों के परिस्थिति दासी जैसी होती है। 'बुधिया की माई' कहानी में सुरेश की माँ भी संयुक्त परिवार में शोषण का शिकार होती है। पूरा दिन नौकरानी की तरह घरेलू कार्यों को करने के बाद भी उसका घर में कोई माँ सम्मान व आदर नहीं था। जब वह अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठती है तो बुआ उसे बच्चों समेत घर से निकाल देती है।

नारी के लिए प्रेम मंदिर में रखी भगवान के मूर्त के समान पवित्र एवं पूजा के योग्य होता है जब वह किसी पुरुष से प्रेम करती है तो वह अपना सब कुछ उसके चरणों में अर्पित करती है। नारी अपने प्रेम के लिए जन्म देने वाले माता पिता को छोडकर अपने प्रेमी का हाथ थाम लेती है परंतु कई बार वहीं प्रेम उसके शोषण का कारण बन जाता है। कुछ समय बाद पता चलता है कि वह प्रेमी के रूप में भेडिया है। पिंजरे की बिल्ली तथा गीली रेत का घरौंदा कहानी में ऐसे ही नारी पात्र है जो प्रेमी द्वारा शोषित एवं प्रताडित किये जाते हैं। वे उन नारियों के लिए सबक बन जाती है जो भावनाओं में बहकर बिना सोचे समझे अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है।

'पिंजरे की बिल्ली' में सागरिका माधवानंद के लिए अपने माता पिता को छोडकर उसके साथ बिना शादी किए पति पत्नी के रूप में रहने लगती है। कुछ समय बाद सागरिका को पता चलता है कि माधवानंद अमानवीय एवं घटिया प्रवृत्ति का इंसान है। वह उसका शारीरिक और मानसिक शोषण करने लगता है। सागरिका को मारना पीटना उसे घर में कैद करना एवं मारने की धमकी देना उसकी आदतों में शामिल हो चुका था। यथार्थ के सामने सागरिका का दर्द झलक पडता है –''सागरिका ने कातर नेत्रों से यथार्थ की ओर देखा और फूट पडी, मैं हार गयी हूँ मुझे उस आदमी ने मजबूर कर दिया है कि या तो मैं अपना घर ही छोडकर चली जाऊँ या आत्महत्या कर लूं। वह कहता है कि मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड सकता क्योंकि कई बाहुबलि माफिया लोग उसके परिचित है। यही नहीं वह कहता है कि किसी भी थाने में तुम मेरे खिलाफ रिपोर्ट नहीं लिखवा सकती क्योंकि पुलिस के उच्चाधिकारियों तक मेरी पहुंच हैं अब बताइए मैं क्या करूं?''[2]

'गीली रेत का घरौंदा' कहानी में नंदिनी भी प्रेम में धोखा खाई हुई शोषित नारी है। राजू नंदिनी और अपनी दो मासूम बेटियों को गोवा में घुमाने के बहाने वहाँ लाकर और रात में उन्हें अकेला छोडकर भाग जाता है। अनजान शहर में अपनी दो बेटियों के साथ नंदिनी समुद्र में डूबकर आत्महत्या करना चाहती है। धीरज नंदिनी की दयनीय स्थिति बताता हुआ कहता है –''उसने देखा कि ताड के पेडों के पास की एक चट्टान पर एक औरत घुटनों में मुंह छिपाये फूट फूटकर रो रही है। उसके पास दो बच्चियों भी डरी सहमी बैठी थी। उस औरत की बडी–बडी आंखें रो रोकर थक चुकी थी। उसके चेहरे पर घोर उदासी थी। वह एक सुंदर महिला थी। मेरे अंदर

एक आह सी निकली। इतनी सुंदर औरत को कोई दुख कैसे दे सकता है।''[3] पुरुषों ने नारी को हमेशा खेलने वाला खिलौना ही समझा है। मन बहला लेने के बाद वह उसे फेंककर आगे बढ़ जाता है। पहले मासूम लडकियों को बहला फुसलाकर अपने प्रेम जाल में फंसाना फिर उसका शारीरिक एवं मानसिक शोषण करके उसके मरने के लिए छोड देना, यह कहाँ की मानवीयता हैं। नंदिनी अपनी मानसिक पीडा धीरज से बताती हुई कहती है –''जब सुबह राजू नहीं आया तो मैंने भी एक फैसला कर लिया। मैंने अपनी बेटियों को नाश्ता कराया और सीधे यहाँ समुद्र के किनारे आ गयी। सच पूछिये तो मैं बिल्कुल ठानकर आयी हूं कि हम तीनों अब अपने को समुद्र को सौंप देंगे।''[4]

सरकार के प्रयासों तथा नारी जाति की चेतना से स्त्री ने कुछ हद तक पितृसत्तात्मक रूढ़िवादी पिंजरे से मुक्ति पा ली है। परंतु यह मुक्ति केवल शहरों तथा उनके समीप गांवों तक ही सीमित रह गई है। शहरों से दूर दराज के गांवों में आज भी नारी पुरुषों द्वारा शोषित एवं प्रताड़ित है। आज भी गांवों में नारी का अस्तित्व पुरुषों के पैरों के नीचे दबा है। महुए का पेड कहानी ऐसे ही गांव की कहानी हैं जहाँ नारी पुरुषात्मक रूढ़िवादी विचारधारा के पिंजरे में कैद हैं। अज्ञानता के कारण नारी की स्थिति दयनीय है। हरिजनों में केवल कमला ही पढी लिखी है। पूरे गांव तथा आसपास के गांवों में भी कमला के पिता को पढा लिखा लडका नहीं मिल सकती। अंत में वह नगीना नामक अनपढ़ गुंडे से उसका विवाह कर देता है। नगीना अपने अहं के कारण कमला को नौकरी नहीं करने देता बल्कि उससे मजदूरी करवाता हैं। विशाल के पूछने पर कमला अपनी पीडा बताते हुए कहती है –''क्या बताऊँ बाबूजी औरत के रूप में जन्म लेकर ही मैंने पाप कर दिया है...मैं ही नहीं सभी औरतों ने पाप ही किया होगा, इसलिए भगवान ने उन्हें औरत बना दिया। हो सकता है शहर की औरतों के लिए यह बात लागू न हो, परंतु गांव की हम औरतों के लिए तो यही लगता है कि हम औरतें नहीं गाय हैं, जिन्हें खूंटें से बांध दिया गया है। मालिक की बात मानों तो ठीक नहीं तो पीठ पर सटाक। कमला अपने भीतर से जैसे आग निकाल रही थी।''[5]

गांव में महुए का एक पेड है जो उन औरतों की दयनीय स्थिति का गवाह है जिन्हें उनके पति द्वारा मार पीटकर घर से निकाल दिया जाता था। पेड की जडों में एक गुफा बनी हुई थी जहाँ कोई न कोई स्त्री रहती थी। पेड की गुफा में उन औरतों का आश्रय होता था जो पति या ससुराल के लोगों द्वारा घर से निकाल दी जाती थी। तीन चार दिन के अंदर यदि उसका पति उसे लेकर चला जाता तो ठीक नहीं तो फिर उन औरतों का पता नहीं चलता था वे कहाँ गयी, किसके साथ गयी, बाद में वे औरतें गांव में कभी नहीं देखी जाती थी। कमला विशाल की बातों को मानकर कुछ बच्चों को पढाने लगती हैं। यह बात नगीना तथा उसके मां बाप के अहं के खिलाफ थी अतः नगीना कमला को मार पीटकर घर से निकाल देता हैं। कमला भी अन्य औरतों की तरह अपने पति के इंतजार में महुए के पेड के नीचे बनी गुफा में रहने लगती है। विशाल को एक अन्य गांव की औरत बताती हुई कहती है –''महुए के पेड के नीचे कमला बैठी है, उसे उसके मर्द ने मार पीटकर घर से निकाल दिया है...क्या? विशाल ने महुए के पेड की ओर कदम बढ़ाना ही चाहा कि चमेली ने बिना उसकी ओर देखें ही चेतावनी दी खबरदार कमला का भला चाहते हो तो अभी उधर मत जाइए..।''[6]

गांव की औरतों की दयनीय स्थिति को देखकर विशाल दंग रह जाता है। वह कमला पर हो रहे अत्याचारों को देखकर वह गांव के प्रधान से इस विषय में बातें करता हैं। औरतों के बारे में प्रधान की भी वहीं

सोच थी जो नगीना जैसे घटिया मानसिकता वाले पुरुषों की थी। प्रधान विशाल से कहता है –''आप भी पंडित जी बिना मतलब नगीना की पत्नी को शहरी बनाने में क्यों लग गए थे। क्या जरूरत थी, इस विषय में हाथ डालने की? सबके बडी बात यह है कि आप मर्द हैं, मर्दों के बीच उठिये बैठिये मर्दों की बातें करिए इन औरतों के फेर में पडना आपको शोभा नहीं देता। मेरी मानिए, चुपचाप अपने घर बनारस चले जाइए.....मैं आपके भले के लिए कह रहा हूं।''[7]

'परबतियां के आंसू' कहानी गांव की अविवाहित लडकी के शोषण एवं उत्पीडन की कहानी है। परबतियां को पंडित की लडकी होने की कीमत अपनी आत्महत्या करके चुकानी पडती है। पुरुषों के लिए औरतों की इज्जत उसके परिवार या जाति से बदला लेने का एक साधन है। औरतों की इज्जत पुरुष लूटता है और सजा उन्हें दी जाती है। हमारे समाज में जिन औरतों के साथ बलात्कार किया जाता है उन्हें समाज तुच्छ नजरों से देखता है। उस लडकी को तथा उसके परिवार को कोई मान सम्मान नहीं देता, उस लडकी से विवाह करने की बात तो बहुत दूर है। इस प्रकार की धारणाओं को बनाने व पीढ़ी दर पीढी उसे जीवित रखने का जिम्मेदार केवल पुरुषात्मक समाज ही है। इस प्रकार की घटिया धारणाएं केवल औरतों के लिए ही क्यों बनाई जाती है। पुरुष अपराधी होते हुए भी कैसे बच निकालता है। पुरुष तथा उसके परिवार को सजा क्यों नहीं दी जाती। प्रस्तुत कहानी में परबतियां पंडित की लडकी होते हुए भी हरिजनों की बस्ती में अपनी मां तथा बहन भाइयों के साथ रहती है। परबतियां अपनी मां के साथ छोटे बहन भाइयों का पेट पालने के लिए हरिजन लडकियों के साथ मजदूरी करती है। कैलाश हरिजन जाति का नेता था वह पंडितों की लडकियों की इज्जत लूटकर हिसाब किताब बराबर करना चाहता था। वह जिस दल के साथ जुड़ा हुआ था वहाँ रात दिन सबसे ब्राह्मणों से बदला लेने की बात सिखाई जाती थी। उन्हें बताया गया था कि ब्राह्मणों ने उनकी माँ बेटियों की इज्जत लूटी है तो उन्हें भी पंडितों की बेटियों की इज्जत लूटकर अपना बदला लेना है। परबतियां अपनी हिम्मत तथा सूझबूझ से कैलाश के चंगुल से भागकर अपनी इज्जत वहाँ से तो बचा लेती है परंतु गांव में जातिगत माहौल के कारण अफवाह का शिकार हो जाती है। कैलाश और परबतियां को स्कूल से निकलकर एक दिशा में भागते हुए देखकर लोग अपने आप ही अनुमान लगा लेते है कि एक हरिजन के लडके ने पंडित की लडकी की इज्जत लूट ली। गांवों की गंदी जातिगत राजनीति का शिकार परबतियां आत्महत्या करने का निर्णय ले लेती है।

विद्रोही और स्वाभिमानी नारी पात्र : त्रिपाठी जी की कहानियों में केवल शोषित एवं प्रताडित नारी पात्रों का चित्रण ही नहीं हुआ है बल्कि अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाले विद्रोही और स्वाभिमानी पात्रों का भी चित्रण हुआ है। 'बुधिया की माई' कहानी में सुरेश की माँ शोषित होने के साथ–साथ विद्रोही पात्र भी है। पूरा दिन घर में नौकरानी की तरह काम करने के बाद भी जब उसे कोई मान सम्मान नहीं मिलता तो वह ठान लेती है कि अब वह बुआ के अत्याचारों को सहन नहीं करेगी चाहे उसे इसकी जो कीमत चुकानी पड़े। जब बुआ बुधिया की माई को घर से निकालने के लिए उस पर झूठे आरोप लगाकर झगडने लगती है तो सुरेश की माँ बुधिया की माई की तरफ से मोर्चा संभल लेती है – अंत में वे झल्लाकर बुआ को ललकार कर बोली 'देखती हूँ तुम लोग बुधिया की माई का क्या कर लेते हो। उस दिन मां के तेवर से बुआ जी को पीछे हट जाना पडा।''[8]

सुरेश की मां स्वाभिमानी औरत है। बुआ द्वारा घर से निकाल दिये जाने के बाद न उसके पास छत थी और नहीं खाने के लिए अनाज परंतु वह किसी के आगे हाथ नहीं फैलाना चाहती थी। ''पहले उसकी माँ ने सोचा

कि चलकर सास ससुर से विनती करें कि कुछ राशन आदि की व्यवस्था वे कर दें, परंतु बडी बुआ का चेहरा सामने आते ही वे सहम गयीं। काफी सोच विचार के बाद उसने तय किया कि भूखों मर जायेंगे पर वहां कुछ भी मांगने नहीं जाएंगे।''[9] बुधिया की माई भी कहानी में विद्रोही एवं स्वाभिमानी पात्र है। वह भीख मांगने की बजाए दूसरों के घर झाडू पोंछा करके अपना व अपने परिवार का पेट पालती थी। बुधिया की माई एक सशक्त औरत थी, बुधिया की माई की जीवन शैली देखकर कुछ लोगों को बहुत हैरानी होती थी। वह हमेशा खुश रहती थी। किसी मुसीबत का सामना करने का जो साहस उसमें है वह अच्छे–अच्छे लोगों में नहीं। अभावों के बीच रहकर भी दूसरों की मदद करने को तत्पर बुधिया की माई नौकरानी नहीं होती तो शायद समाज सेविका या किसी राजनीतिक दल की मुखिया होती, पर वह अपने नसीब को कभी कोसती नहीं थी।''[10]

बुधिया की माई को पता नहीं चलता है कि सुरेश की मां के दुखों का कारण बुआ और उसके सास ससुर हैं जो उसे घर से निकाल देते है। सुरेश की मां अपने ससुराल का मान सम्मान बचाने के लिए जब अपने मायके से कोई मदद नहीं लेना चाहती तब बुधिया की माई उसके ससुराल वाले विरोध करती हुई कहती है –''दीदी केवल तुम्हारे बचाने से ससुराल की इज्जत नहीं बचेगी। तुम्हारे सास ससुर व ननद को भी यह बात सोचनी चाहिए। वे तुम्हें इतना दुख दे रहे हैं परंतु तुम उनके मान सम्मान को बचाने की बात कर रही हो। अब ये बातें सोचना छोड दो, अब तुम यह सोचो की अपने बच्चों को सुखी रखने के लिए क्या कर सकती हो...।'[11]

उदात्त एवं ऊँची भावनाओं से प्रेरित नारी पात्र : सुरेश्वर त्रिपाठी की कहानियों के नारी पात्र समाज द्वारा शोषित एवं प्रताडित होते हुए भी अपने मौलिक एवं सात्विक गुण नहीं त्यागते। नारी ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अपनी दया, ममता, मधुरिमा एवं अगाध विश्वास और समर्पण से सींचा है। नारी की उदात्त भावनाएं ही मौलिक व्यक्तित्व हैं। पुरुष द्वारा नारी चाहे कितनी ही शोषित क्यों न हो परंतु उसकी उदात्त भावनाएं कभी मरती नहीं बल्कि एक कोने में पडी रहती है। अनुकूल क्षण मिलते ही फिर से जागृत हो जाती है। सुरेश्वर त्रिपाठी के पात्रों में यथार्थ और आदर्श का समन्वय हैं। उन्होंने एक और नारी की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए यथार्थवादी रूप का उद्घाटन किया है तो दूसरी ओर उसके आदर्शवादी स्वरूप को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है इसलिए उसके पात्र स्थिर न होकर गतिशील है। बुधिया की माई कहानी में बुधिया की माई उदात्त भावनाओं की नारी है। वह स्वयं अभाव में रहते हुए दूसरों की मदद के लिए हमेशा तत्पर रहती थी। वह दूसरों के घर साफ सफाई खाना आदि बनाकर अपना पेट पालती थी। जब वह सुरेश की माँ को अधबने मकान में मुसीबतों से रहते हुए देखती है तो उसका हृदय पीडा से भर जाता हैं। सुरेश की मां से बात करने पर उसे पता चलता है कि उसके पास पेट भरने के लिए न तो खाना है और न ही रहने के लिए छत है। इतने दिनों अपमान व मुसीबत झेल रही सुरेश की मां से किसी ने पहले इतनी सहानुभूति नहीं दिखाई दी। बुधिया की माई जिस बंगाली परिवार के मकान के आगे बनी टंकी में रहती थी उसे सुरेश की मां और बच्चों को रहने के लिए दे देती है और स्वयं कहीं और ठिकाना ढूंढ लेती है। "उसकी मां ने कल्पना भी नहीं की थी कि घर–घर में बर्तन मांजकर गुजारा करनेवाली एक औरत उसके लिए इस तरह मददगार साबित होगी। बुधिया की माई ने अपने लिए कोई और जगह ढूंढ ली थी और अभी जिस जगह वह रह रही थी उसे उन लोगों को रहने के लिए दे रही थी।''[12]

बुधिया की माई ने सुरेश की मां तथा बच्चों को रहने के लिए जगह ही नहीं दी थी बल्कि खाने का

प्रबंध भी वहीं करती थी। पहले तो जो पैसे उसके पास थे उसने वो सुरेश की मां को दे दिए फिर लोगों से उधार लेकर वह सुरेश की मां को खाने के लिए पैसे देती थी। जब खाने का सारा राशन खत्म हो जाता था तो सुरेश की मां के आंखों के सामने देवदूत बुधिया की माई का चेहरा ही सामने आता। ''सारे रास्ते बंद हो जो तो बुधिया की माई से उसकी मां गुहार लगाती। कुछ देर बुधिया की माई झल्लाती कहती 'अब मैं कहां से उधर माँगकर लाऊँ, सब जगह तो पहले से ही उधार पडा हैं कुछ देर बड़बड़ाने के बाद बुधिया की माई कहती, ''अच्छा चिंता न करो मैं देखती हूं, कहीं से कुछ लाती हूं। और बुधिया की माई या तो पैसा या खाने का सामान लेकर लौटती। उसकी मां जान गयी थी कि बाहर से तीखे बोल बोलने वाली बुधिया की माई अंदर से कितनी कोमल है।''[13]

जब उधार मांगने के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं तो वह बच्चों तथा सुरेश की मां का पेट भरने के लिए दूसरा रास्ता अपनाती है। वह सुरेश की मां से कहती है –''नहीं नहीं दीदी मेरे रहते तुम ऐसा मत सोचो। अच्छा मेरे मन में एक बात आयी है। मैं एक जगह खाना बनाती हूं, वे केवल पति पत्नी हैं, बूढे हैं, पैसे वाले हैं उन लोगों को खाने पीने की कोई कमी नहीं है। तुम लोगों के लिए मैं यह चोरी करने को तैयार हूं। मैं जब उनका खाना बनाऊँगी, तो रोटियां कुछ ज्यादा बना लिया करूंगी और घर से आया करूंगी।''[14] अतः कहानियों के नारी पात्र एक तरफ संघर्षशील है दूसरी तरफ दया, प्रेम, क्षमा, त्याग, परोपकार, सेवा, करुणा एवं ममता आदि उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण है।

संदर्भ :

1. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता (भूमिका भाग से)
2. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 127
3. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 149–150
4. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 127
5. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 108
6. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 110–111
7. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 112
8. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 19
9. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 13
10. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 14
11. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 15
12. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 13
13. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 15
14. सुरेश्वर त्रिपाठी, गीली रेत का घरौंदा, पृष्ठ 16

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली,आगरा,गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज,
भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अंजुलि शुक्ला, शोधार्थी

डॉ. एस.पी. शुक्ला, प्राध्यापक,

राजनीति शास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

मध्य प्रदेश में मतदान व्यवहार का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 10-16

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रीतू साकेत

शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. प्रदीप विश्वकर्मा

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह, महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिम्बाले के कथा साहित्य में दलित चेतना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 17-19

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शालिनी श्रीवास्तव, शोधार्थी

डॉ. मनीष शुक्ला, प्राध्यापक

वाणिज्य विभाग, शासकीय टी.आर.एस. महाविद्यालय रीवा (म0 प्र0)

for the paper titled

महिला उद्यमियों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास में योगदान (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 20-28

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Pooja

Ph.D Research Scholar,

Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur, Rajasthan.

for the paper titled

Birsa Munda and the Politics of Land, Identity, and Self-Governance

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 29-37

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ सुजाता फातरपेकर

असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

एम. एम. कला और विज्ञान महाविद्यालय, सिरसी, कर्नाटक–581402

for the paper titled

प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 38-40

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. स्वर्ण मणि

वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
टी.पी. कॉलेज, मधेपुरा।

for the paper titled

महिला इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियाँ : परंपरा से समकालीन विमर्श तक

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 41-49

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Hanuman Raju Gunturi

Librarian, SCERT, Andhra Pradesh.
Research Scholar, Dravidian University, Kuppam A.P.

for the paper titled

School Libraries as Catalysts for Quality Education : Analysing Their Role in Achieving SDG 4

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 50-64

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दिव्या सिंह, शोधार्थीनी
डॉ० मोनिका गुप्ता, शोध निर्देशिका
डॉ० शिखा खरे, सह शोध निर्देशिका
नेहरु ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

for the paper titled

क्रोनिक किडनी डिजीज (CKD) रोगियों में पोषण एवं जीवनशैली प्रबंधन का नैदानिक एवं सामाजिक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 65-75

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कु. प्रगती माणिक बेलखेडे

संशोधक विद्यार्थीनी,

श्रीमती साळुंकाबाई राऊत कला व वाणिज्य महाविद्यालय, वनोजा।

for the paper titled

'मराठी स्त्रीवादी कांदबरीतील मनोदैहिकता' : एक अभ्यास

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 76-80

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Reshma Nath R

Research Scholar, Department of Hindi
Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady KERALA.

for the paper titled

हिन्दी उपन्यासों में ट्रांस जीवन : यमदीप और जिंदगी 50-50 के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 81-84

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Vishal Dhaka, Research Scholar

Dr. Surjeet Singh Kaswan (Professor), Research Supervisor

Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

for the paper titled

Effect of Omkar Chanting on Concentration, Memory Power and Fatigue Level among High School Students

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 85-88

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Ekta Pramod Singh, Research Scholar

Dr. Arun Mathur, Research Supervior

Dean and Director of Sports,

Suresh Gyan Vihar University, Jaipur (Rajasthan)

for the paper titled

COMPARATIVE ANALYSIS OF PHYSICAL CHARACTERISTICS AMONG BATSMEN, PACERS AND SPINNERS IN COMPETITIVE CRICKET

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 89-94

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Manish Kumar Sharma, Research Scholar

Dr. Surjeet Singh Kaswan (Professor), Research Supervisor

Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

for the paper titled

A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 95-99

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. विपुला सिंह

हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

for the paper titled

लोकगीतों में बसे राम

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 100-102

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

के. एम. मोनिका, रिसर्च स्कॉलर
डॉ. सुनीता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर
वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

for the paper titled

उत्तर भारत में हरित क्रांति का उत्कर्ष : हरियाणा राज्य के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 103-108

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रामदेव

for the paper titled

73वें संविधान संशोधन का राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था पर प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 109-1013

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अश्विनी राज

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग,

गंगा देवी महिला महाविद्यालय, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

for the paper titled

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 114-125

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Padma Angmo, PhD Political Science

Department of Political Science, University of Delhi.

Nikhil Kumar Rai, PhD Scholar

Department of Political Science, University of Lucknow.

for the paper titled

Dharma in Indian Thought : A Comparative Study of Hindu and Buddhist Context

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 126-134

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

निधि लोधी, शोध छात्रा,

प्रो. कविराज, आचार्य,

राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226007

for the paper titled

उत्तर प्रदेश के विभिन्न उद्योगों में संलग्न बाल श्रमिक एवं उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 135-140

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Ravi Singh
Department of Political Science,
University of Delhi.

for the paper titled

The Pesrspective of Women Empowerment in India : Measuring the Needs, Issues & Policy

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 141-145

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. विरमा राम देवासी, निर्देशक

कांता भाटी, शोधार्थी,

मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर।

for the paper titled

प्रधानमंत्री पद का नैतिक और लोकतांत्रिक नेतृत्व : अटल बिहारी वाजपेयी के शासनकाल का एक समालोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 146-148

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रामदेव

for the paper titled

राजस्थान पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 149-153

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अमित, शोधार्थी

प्रो. जगदेव कुमार शर्मा, शोध निर्देशक

पीठ प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, मानविकी विभाग (हिंदी)

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

for the paper titled

'आधे-अधूरे' नाटक में पारिवारिक विखंडन : वर्तमान संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 154-159

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

DIVYA KOTHARI

for the paper titled

Marxian Historiography : Historical Materialism, Class Analysis, and the Writing of History

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 160-165

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

श्री जनेंद्र कुमार दीवान, संस्कृत विभाग, सहा. प्रा., शा. वि. या. ता. स्नातकोत्तर स्वशासी महा. दुर्ग, (छ.ग.)

प्रो. सीमा पाण्डेय, इतिहास विभाग, गु.घा.वि.वि., बिलासपुर (छ.ग.)

सुभाष कुमार, इतिहास विभाग, गु.घा.वि.वि., बिलासपुर (छ.ग.)

for the paper titled

दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव–
पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 166-173

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

राजश्री सिंह, शोधार्थी,
डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

for the paper titled

किसान अस्मिता और समकालीन हिंदी गजल

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 174-180

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नीरज कुमार चौधरी, शोधार्थी,
डॉ. राजश्री शुक्ला, शोध निर्देशक, प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

for the paper titled

विनोद कुमार शुक्ल का कथा-साहित्य और वर्तमान चुनौतियाँ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 181-186

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr Navninder Kaur Grewal, Assistant Professor,
Dr. Arvinder Kaur, Associate Professor,
Department of Languages,
Desh Bhagat University, Mandi Gobindgarh

for the paper titled

Fragmented Identity and Female Suffering in Sylvia Plath's Poetry: A Study of *The Colossus* and *Ariel*

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 187-192

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

भूमिका पारीक
लेखिका

for the paper titled

आर्य और वेद

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 193-194

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Tejveer Singh, Resrerch Scholar

Dr. Ritu Bala, Supervisor & Professor (Education)

Tantia University, Sri Ganganagar, (Raj)

for the paper titled

Study of Institutional Inclusivity Perceptions of Secondary School Teachers and their Attitudes toward Inclusive Education

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 195-206

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Tejveer Singh, Resrerch Scholar
Dr. Ritu Bala, Supervisor & Professor (Education)
Tantia University, Sri Ganganagar, (Raj)

for the paper titled

Study of Institutional Inclusivity Perceptions of Secondary School Teachers and their Attitudes toward Inclusive Education

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 195-206

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

बी. श्रीहरि (पीएच.डी, शोधार्थी)

डॉ. बी. संतोषी कुमारी (शोध निर्देशक)

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,
मद्रास चेन्नई–600017

for the paper titled

सुरेश्वर त्रिपाठी कृत 'गीली रेत का घरौंदा' में चित्रित नारी पात्र

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

June 2026, Vol. 23, Issue -6, Part-2, Page No. 207-212

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152